स्व० ब्र० सीतलप्रसादजी स्मारक ग्रन्थमाला ग्रन्थांक—८

श्री परमात्मने नमः ।

श्रीमद् अमितगति आचार्य विरचित-

श्री अमितगति श्रावकाचार

मूल और स्व. पं. भागचन्दजीकृत वचनिका
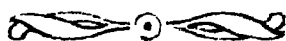
प्रकाशक:—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत ।

द्वितीयावृत्ति] वीर सं० २४८४ [वि० सं० २०१५

'जैनमित्र' के ५९ वें वर्षके ग्राहकोंको स्व० सीतल स्मारक ग्रन्थमालाकी ओरसे भेंट ।

मूल्य—चार रुपये ।

भाषाटीकाकार—पं० भागचन्दजीका परिचय

इस ग्रँथकी हिन्दीभाष टीकाके कर्ता पंडित श्री भागचन्दजी हैं। आप ईसागढ़ जिला ग्वालियरके रहनेवाले ओसवाल जैन थे। परन्तु आप दिगम्बर जैनधर्मके ही कट्टर अनुयायी थे। आप बीसवीं शताब्दीके अच्छे गण्यमान्य जैन विद्वानोंमेंसे हैं।

आप संस्कृत एवं हिन्दीभाषाके प्रतिभाशाली विद्वान् एवं कवि थे। संस्कृतमें आपका बनाया हुआ महावीराष्टक स्तोत्र है, जो सर्वत्र प्रचलित है।

आपने अमितगति श्रावकाचार, उपदेशसिद्धांतरत्नमाला, प्रमाण परीक्षा, नेमिनाथ पुराण और ज्ञानसूर्योदय नाटक इन ग्रँथोंकी भाषा वचनिका की है। और उत्तमोत्तम अनेक भावरसपूर्ण पद भजन भी बनाये हैं, जिनका संग्रह छप भी चुका है। आप प्रतिभाशाली, प्रौढ़, धर्मिष्ट एवं अनुभवी विद्वान् थे।

हिन्दी भाषा

इस ग्रंथकी हिन्दी भाषा जैसी थी वैसी ही रक्खी गई है। नवीन बोलचालकी हिन्दीमें परिवर्तन नहीं की गई है क्योंकि भाषा परिवर्तन कर देनेसे भाषाटीकाकारकी कृतिका ज्योंका त्यों आस्वादन नहीं होता और स्वाध्यायप्रेमी सज्जनोंको यथापूर्व भाषासे ही विशेष आनंद होता है।

—प्रकाशक।
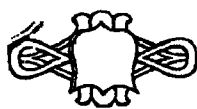
ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद

स्मारक ग्रन्थमाला

दिगम्बर जैन समाजमें अनेक विद्या-संस्थाओंको जन्म दिलानेवाले अनेक धर्म-ग्रन्थोंके अनुवादक, टीकाकार, लेखक व सम्पादक तथा 'जैनमित्र' की ४० वर्षों तक अविरल व अथक् सेवा करनेवाले तथा रात दिन जैन समाजकी अटूट सेवा करनेवाले श्री० जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीका दुःखद स्वर्गवास लखनऊमें जब वीर सं० २४६८ (६६ वर्ष पर) में हुआ तब हमने आपकी जैन धर्म व जाति सेवाके स्मारकके लिये आपके नामकी एक सुलभ ग्रन्थमाला निकालनेके लिये कमसे कम १००००) की अपील जैनमित्र द्वारा की थी लेकिन उसमें करीब ६०००) ही ... तो भी हमने जैसेतैसे प्रबन्ध करके इस ग्रन्थमालाका प्रारम्भ वीर सं० २४७० में किया था जो आज तक चालू है व जिसके द्वारा आज तक ७ ग्रन्थ जैनमित्र' के ग्राहकोंको भेंट दिये जा चुके हैं—

१—स्वतंत्रताका सोपान (ब्र० सीतल कृत) ३) अप्राप्य।

२—श्री आदि पुराण स्व० कवि पं० तुलसीदासजी जैन देहली कृत छन्दोबद्ध ४)

३—श्री चन्द्रप्रभु पुराण (स्व० कविरत्न पं० हीरालालजी जैन बड़ौत रचित छन्दोबद्ध) ५)

४—श्री यशोधर चरित्र (महाकवि पुष्पदन्त रचित ग्रन्थका पं० हजारीलालजी कृत हिन्दी अनुवाद) ४)

५—सुभौम चक्रवर्ति चरित्र (भ० रत्नचन्द्रजी विरचित मूल व पं० लालारामजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका) ३)

६—श्री नेमिनाथ पुराण (ब्र० नेमिदत्त रचित संस्कृत ग्रन्थका स्व० पं० उदयलालजी काशलीवाल कृत हिन्दी अनुवाद) ४)

७—श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार–भ० श्री सकलकीर्ति विरचित मूल ग्रँथकी पं० लालारामजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका ४)

और अब यह आठवां ग्रन्थ–

श्रीमद् अमितगति आचार्य विरचित—

श्री अमितगति श्रावकाचार ग्रन्थ—

मूल श्लोक और स्व० पं० भागचन्दजीकृत हिंदी वचनिका-सहित, जो श्री अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला द्वारा ३६ वर्ष हुये बम्बईसे प्रकट हुआ था व जो करीब २५ वर्षोंसे मिलता ही नहीं है और यह श्रावकाचार ग्रन्थ प्रत्येक श्रावकके लिये अतीव उपयोगी है अतः 'जैनमित्र'के ५९ वें वर्षको भेंटमें दिया जाता है।

'जैनमित्र'की ग्राहक संख्या बहुत है और ६०००)के स्थायी फण्डमें क्या हो सकता है अतः प्रत्येक ग्राहकसे सिर्फ १) अधिक लेकर ही ऐसा महान् ग्रँथराज भेंटमें देनेका हमने साहस किया है।

अभी भी कोई श्रीमान् इस ग्रँथमालाको बड़ी स्थायी रकम दान कर दे तो यह स्थायी फण्ड बढ़ सकता है।

'जैनमित्र'के ग्राहकोंको भेंट देनेके अतिरिक्त इस ग्रँथकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गयी हैं।

वीर सं० २४८४
वैशाख सुदी ३
ता. २२–४–५८

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

ग्रन्थकर्त्ता-श्री अमितगति आचार्य-परिचय

इस 'अमितगति श्रावकाचार' ग्रन्थके मूल कर्त्ता माथुर संघके आचार्य श्री अमितगति हैं। उक्त नामके दो आचार्य हुये हैं, जिनमेंसे एक तो मुंज राजाके शासनकाल विक्रम संवत्की ११ वीं शताब्दीमें हुए। जिन्होंने धर्मपरीक्षा, सुभाषित रत्नसन्दोह, पंचसंग्रह तथा इस श्रावकाचार आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। ये अमितगति माथुर संघके आचार्य माधवसेनके शिष्य थे इस बातका उल्लेख उक्त आचार्य-प्रवरने प्राय: अपने सभी ग्रन्थोंमें किया है। इनका विशेष प्रशंसनका वर्णन सुभाषित-रत्नसन्दोह, आदि प्राय: सभी ग्रन्थोंमें है। इसलिए जिज्ञासु महोदयोंको वहांसे जानना चाहिये।

दूसरे अमितगति आचार्य इन्हीं अमितगतिके गुरुके गुरु आचार्य नेमिषेणके गुरु तथा देवसेनके शिष्य हुये हैं। योगसार नामक जो अमितगति कृत अध्यात्म विषयक ग्रन्थ है उसके कर्त्ता शायद ये ही अमितगति हैं। क्योंकि योगसारकी शब्दार्थ रचना तथा धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंकी रचनामें विभिन्नताके अतिरिक्त एक पुष्ट प्रमाण यह भी है कि धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंमें माधवसेनके शिष्य अमितगतिने अपने नामका उल्लेख प्राय: सभी अध्यायों परिच्छेदोंके अन्तमें अन्य शब्दोंके विशेषण रूपमें किया है। परन्तु योगसारके किसी अधिकारमें ऐसा नहीं है, सिर्फ एक अंतिम श्लोकमें अपना नाम स्पष्ट प्रकट किया है—जैसे—

दृष्ट्वा सर्वं गगननगरस्वप्नमायोपमानं
निःसंगात्मामितगतिरिदं प्राभृतं योगसारम्।
ब्रह्मप्राप्त्या परमकृतस्वेषु चात्मप्रतिष्ठं
नित्यानंदं गलितकलिलं सूक्ष्ममत्यक्षलक्ष्यम्॥

इसके अतिरिक्त धर्मपरीक्षादि सभी ग्रन्थोंमें अमितगतिने अपने गुरुका नाम स्मरण किया है परन्तु योगसारमें नहीं। इसलिये योगसारके कर्ता देवसेनके शिष्य अमितगति ही होने चाहिये।

"विद्वद्-रत्नमाला"

दूसरा परिचय

आचार्य अमितगति संस्कृत साहित्यके उच्चकोटिके विद्वान् थे। आपने अनेक मतोंके ग्रन्थों और पुराणोंका अध्ययन किया था। आपका ज्ञान विशाल और महत्त्वपूर्ण था। आप सुधारक आचार्य थे। प्रचलित मतमतान्तरोंकी मनगढ़न्त बातों पर आपका विश्वास नहीं था। आपने उनका बड़े सुन्दर ढँगसे सुधार किया था। आपकी काव्य रचनाशक्ति विलक्षण थी। धर्म परीक्षा जैसे सुन्दर और सरस ग्रन्थका निर्माण उन्होंने केवल दो महिनोंमें किया था। उनकी असाधारण विद्वत्तासे अनेक विद्वान् प्रभावित थे।

आचार्य अमितगतिका पांडित्य अगाध था। उनकी कवित्व शक्ति उत्कृष्ट थी। वे अपने समयके बड़े भारी विद्वान् और कवि थे। दुर्भाग्यसे आचार्य महोदयके वंश और माता पिताके नामोंका परिचय कहीं भी नहीं मिलता है। आप माथुर संघके श्रेष्ठतम आचार्य थे। आपके गुरुका नाम माधवसेन था, वाक्पतिराज राजा मुंजकी सभाके आप एक अनुपम रत्न थे।

आपका जन्म काल विक्रम सं० १०२० के लगभग माना गया है। आपने सुभाषितरत्नसन्दोहकी रचना वि० सं० १०५० में की है। इस समय आपकी आयु ३० वर्षके लगभग अवश्य होगी। इस दृष्टिसे आपका जन्म विक्रमकी ११ वीं शताब्दी अनुमानित किया

गया है। वाक्पतिराज मंजुकी सभामें आचार्य अमितगतिका स्थान बहुत ऊँचा था। राज्य सभामें उनका बड़ा आदर था।

राजा मंजुकी राजधानी उज्जयिनीमें रहकर आचार्य अमितगतिने कई ग्रन्थोंका निर्माण किया है। आपने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषामें हैं। सभी ग्रन्थोंकी रचना सरल और सुखसाध्य होनेपर भी अत्यन्त गम्भीर और मधुर है। संस्कृत साहित्य पर आपका अच्छा अधिकार था।

आपके रचित ग्रन्थ निम्न दिये जाते हैं—

(१) सुभाषितरत्नसन्दोह, (२) धर्मपरीक्षा, (३) पंचसंग्रह, (४) उपासकाचार, (५) भावनाद्वात्रिंशतिका, (६) सामायिकपाठ, (७) योगसार प्राभृत, (८) अमितगति श्रावकाचार, (९) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, (१०) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (११) व्याख्यान प्रज्ञप्ति।

'सन्मति सन्देश' के सन्त अंकसे उद्धृत।

[पं० लालचन्दजी शास्त्री द्वारा लिखित]

विषय-सूची।

श्री अमितगति आचार्यकृत धर्म परीक्षा, श्रावकाचार, सुभाषित-रत्नसन्दोहके सिवाय भावनाद्वात्रिंशति, पंचसंग्रह, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, ढाईद्वीप प्रज्ञप्ति, व्याख्यान प्रज्ञप्ति व योगसार भी हैं। जिनमेंसे योगसार पंचसंग्रह प्रकट हो चुके हैं व शेष अप्रकट हैं।

श्री अमितगति श्रावकाचार कैसा महान् ग्रंथराज है यह तो पाठकोंको इसके स्वाध्यायसे ही मालूम होगा। —प्रकाशक।

श्रीवीतरागाय नमो नमः ।

श्री अमितगति आचार्य विरचित—

श्री अमितगति श्रावकाचार

(पंडित भागचन्द्रजीकृत वचनिका सहित)

प्रथम परिच्छेद ।

दोहा ।

सिद्धारथ प्रियकारिणी* नंदन वीर जिनेश ।
शिवकर वन्दूं अमितगति, कर्त्ता वृष उपदेश ॥ १ ॥

पंचपरमेष्ठीकी स्तुति

(गीता छन्द)

मनुज नाग सुरेन्द्र जाके उपरि छत्रत्रय धरे,
कल्याणपंचकमोदमाला पाय भवभ्रमतम हरे ।
दर्शन अनन्त अनन्त ज्ञान अनन्त सुख वीरज भरे,
जयवन्त ते अरहन्त शिवतियकन्त मो उर संचरे ॥१॥
जिन परमध्यान कृशानुवान सुतान तुरत जलादये,
युत मान जन्म जरा मरण भव त्रिपुर फेर नहीं भये ।
अविचल शिवालय धाम पायो स्वगुणतैं न चलैं कदा,
ते सिद्धप्रभु अविरुद्ध मेरे शुद्ध ज्ञान करो सदा ॥२॥
जे पंचविध आचार निर्मल पंच अग्नि सु साधते,
पुनि द्वादशांग समुद्र अवगाहन सकल भ्रम बाधते ।

---

* या दोहाके तीन अर्थ हैं ।

वर सूरि सन्त महंत विधिगण हरणको अतिदक्ष हैं,
ते मोक्षलक्ष्मी देहु हमकों जहां नांहि विपक्ष हैं ॥३॥
जो घोर सब कानन कुअटवी पाप पंचानन जहां,
तीक्षण सकलजन दुःखकारी जासको नखगण महा ।
तहं भ्रमत भूले जीवकौं शिवमग बतावैं जे सदा,
तिन उपाध्याय मुनींद्रके चरणारविंद नमूं सदा ॥४॥
विन सङ्ग उग्र अभङ्ग तपतैं अङ्गमें अति खीन हैं,
नहिं हीन ज्ञानानंद ध्यावत धर्मशुक्ल प्रवीन हैं ।
अति तपो कमलाकलित भासुर सिद्धपद साधन करैं,
ते साधु जयवन्तो सदा जे जगतके पातक हरैं ॥ ५ ॥

दोहा ।

जिनवर सिद्धाचार्य पुन उपाध्याय मुनिराज ।
नमस्कार गुरु पंचकौं होउ सदा सुखदाय ॥ १ ॥
जयवन्तो जिनधर्म सो वीतराग परिनाम ।
कुगति पाततैं जीवकौं काढि धरै शिवधाम ॥ २ ॥
वंदूं पुन जिनवचनकौं जाकै स्यातपद केतु ।
स्वपर प्रकासै भ्रम हरैं सब जगकौं सुख हेतु ॥ ३ ॥
भूषन वसन गदादिविन जिनप्रतिमा अभिराम ।
तीन लोकमें है जहां तहं नित करूं प्रनाम ॥ ४ ॥
सुरनर नागसमूह नित पूजित पावन द्वार ।
चैत्यालय जिनचन्द्रके वन्दूं मंगलकार ॥ ५ ॥
इम नव देव प्रणाम करि निजमतके अनुसार ।
ग्रन्थ श्रावकाचारकी रचूँ वचनिका सार ॥ ६ ॥

ऐसें मंगल करि श्री अमितगत्याचार्यकृत श्रावकाचारकी वचनिका

करिये है। तहां जो ज्ञानकी मन्दतातैं हीनाधिक अर्थ होय ताकौं विशेषज्ञानी सुधार लीज्यो, मोकौं मंदबुद्धि जानि हास्य मति कीज्यो, यह विशेषज्ञानीनतैं मेरी परोक्ष प्रार्थना है।

उपजातिछन्द।

नापाकृतानि प्रभवंति भूयस्तमांसि यैर्दृष्टिहराणि सद्यः।
ते शाश्वतीमस्तमयानभिज्ञा, जिनेंदवो वो वितरंतु लक्ष्मीम् ॥ १ ॥

अर्थ—ते श्रीजिनरूप चन्द्रमा तुम्हारे शास्वती जो मोक्षलक्ष्मी ताहि विस्तारहु। कैसे हैं जिनचन्द्र अस्त किये हैं अज्ञानी परवादी जिननैं। बहुरि जिनकरि शीघ्र ही दूरि किये सम्यक्दृष्टिके हरणेवाले मोह अन्धकार ते फेर न होय हैं ॥ १ ॥

विभिद्य कर्माष्टकशृंखलं ये, गुणाष्टकैश्वर्यमुपेत्य पूतम्।
प्राप्तास्त्रिलोकाग्रशिखामणित्वं, भवंतु सिद्धा मम सिद्धये ते ॥ २ ॥

अर्थ—ते श्री भगवान मेरे सिद्धिके अर्थ होऊ। जे सिद्ध भगवान ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप सांकलकूं छेदि करि अर सम्यक्त्वादि अष्ट गुणरूप पवित्र ऐश्वर्यकौं प्राप्त होय तीन लोकके चूडामणिपनेंकौं प्राप्त भये हैं ॥ २ ॥

ये चारयन्ते चरितं विचित्रं, स्वयं चरन्तो जनमर्चनीयाः।
आचार्यवर्या विचरन्तु ते मे, प्रमोदमाने हृदयारविंदे ॥ ३ ॥

अर्थ—ते आचार्यवर्य कहिये आचार्यनिविषैं प्रधान आचार्य आनंदका देनेवाला जो मेरा हृदयकमल ता विषैं विचरहु। कैसे हैं आचार्य, जे नानाप्रकार चारित्रकौं आचरन करते सन्ते लोककौं आचरन करावैं हैं याहीतैं पूजनीक हैं।

भावार्थ—वीतरागरूप धर्मकौं आचरण करैं हैं अर दयाल होय औरनिकौं आचरन करावैं है तेही वीतराग भावनिके वांछकनि करि

पूजनीक हैं अर ते ही ज्ञानानंदके कारन हैं । बहुरि इनतें विपरीत अन्यरागद्वेषभावसहित हैं ते आचार्य नांही ॥ ३ ॥

येषां तपःश्रीरनघा शरीरे, विवेचका चेतसि तत्त्वबुद्धिः ।
सरस्वती तिष्ठति वक्त्रपद्मे, पुनं तु तेऽध्यापकपुंगवा वः ॥ ४ ॥

अर्थ—ते उपाध्यायनिविषें प्रधान उपाध्याय भगवान तुमकौं पवित्र करहु । कैसे हैं उपाध्याय, जिनके शरीरविषें पापरहित तपोलक्ष्मी तिष्ठै है, अर जिनके चित्तविषें भेदविज्ञान करनेवाली तत्वबुद्धि तिष्ठै है, अर मुखकमलविषें सरस्वती कहिये जिनवाणी तिष्ठै है ।

भावार्थ—मन वचन कायरूप तीनौं योग जिनकें निर्मल भये हैं ॥ ४ ॥

कषायसेनां प्रतिबन्धिनीं ये, निहत्य धीराः समशीलशस्त्रैः ।
सिद्धिं विबाधां लघु साधयंते, ते साधवो मे वितरंतु सिद्धिम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ते साधु हमारे अर्थि सिद्धि जो मोक्ष ताहि देहु । कैसे हैं ते साधु, जे धीर समशीलरूप शस्त्रनिकरि सिद्धिकी रोकनेवाली क्रोधादिकषायनकी सेनाकौं शस्त्रनितें नाशकरि अपनी सिद्धिकौं साधें हैं तैसें साधु कषायनिकौं क्षमादिभावनितें नाशकरि परम निराकुल अवस्थाकौं साधें हैं ॥ ५ ॥

विभूषितोऽह्नाय यया शरीरे, विमुक्तिकांतां विदधाति वश्याम् ।
सा दर्शनज्ञानचरित्रभूषा, चित्ते मदीये स्थिरतामुपैतु ॥ ६ ॥

अर्थ—सो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप भूषण मेरे चित्तविषें सदा स्थिरताकौं प्राप्त होहु । जिस आभूषणकरि भूषित जो जीव है सो शीघ्र ही मुक्तिस्त्रीकौं वश करै है ।

भावार्थ—जैसे सुन्दर श्रृङ्गारसहित पुरुषके स्त्री वशी होय है तैसें दर्शन ज्ञानसहित आत्माके ज्ञानानंदस्वरूप अवस्था प्राप्त होय है ॥ ६ ॥

मातेव या शास्ति हितानि पुंसो, रजः क्षिपंती दधती सुखानि ।
समस्तशास्त्रार्थविचारदक्षा, सरस्वती सा तनुतां मतिं मे ॥ ७ ॥

अर्थ—सो सरस्वती मेरी बुद्धिको विस्तारहु । कैसी है सरस्वती, जो पुरुषकौं माताकी ज्यों हित जे कल्याणके कारण तिनहिं सिखावै है, अर रज जो अज्ञान ताहि डरावै है, अर सुखनिकौं पुष्ट करै है, अर समस्त शास्त्रनिके अर्थके विचारविषैं प्रवीण है ।

भावार्थ—अनेकांतमयी जो जिनवाणी ताका नाम सरस्वती है, सो जैसैं चतुर माता पुत्रकौं लौकिक हिताहितके कारण सिखावै है, अर अंगकी धूलि झारै है अर सुख बढावै है । तैसैं जिनवाणी मोक्षमार्गविषैं हिताहित सिखावै है अर अज्ञान दूरि करै है अर ज्ञानानंद पुष्ट करै है ऐसा जानना ॥ ७ ॥

शास्त्रांबुधेः पारमियर्ति येषां, निषेवमाणः पदपद्मयुग्मं ।
गुणैः पवित्रैर्गुरवो गरिष्ठाः, कुर्वंतु निष्ठां मम ते वरिष्ठाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिनके चरनकमलकौं ध्यावता संता पुरुष शास्त्रसमुद्रके पारकौं प्राप्त होय है, ते पवित्र गुणनि करि गुरवे ऐसे श्री गुरु मेरे श्रेष्ठ क्रियाकूं करहु ॥ ८ ॥

उपासकाचारविचारसारं, संक्षेपतः शास्त्रमहं करिष्ये ।
शक्नोति कर्तुं श्रुतकेवलीभ्यो, न व्यासतोऽन्योहि कदाचनापि ॥९॥

अर्थ—मैं जो हूं शास्त्रकार सो श्रावकाचारके विचारका सारभूत शास्त्रकौं संक्षेपतैं करूँगा । जातैं श्रुतकेवलिनतैं अन्य दूजा पुरुष विस्तार कहनेकूं कदाचित् समर्थ नहीं है ।

भावार्थ—विस्तारसहिततो श्रुतकेवलीके सिवाय दूजा कौन कहै, मैं सो संक्षेपरूप श्रावकाचार कहूंगा ॥ ९ ॥

क्षुद्रस्वभावाः कृतिमस्तदोषां, निसर्गतो यद्यपि दूषयंते ।
तथापि कुर्वंति महानुभावास्त्याज्या, न यूकाभयतो हि शाटी ॥१०॥

अर्थ—जो पुनः नीचपुरुष निर्दोष कार्यकों स्वभावहीतें दूषन लगावें हैं तौ भी महान पुरुष कार्यकों करें हैं, जातें यूकानके भयतें साडी त्यागने योग्य नांही ।

भावार्थ—दुष्टनिके भयतें सज्जन उत्तम कार्यकों न त्यागें जैसें लोक यूकानके भयतें वस्त्र न त्यागें ऐसा जानना ॥ १० ॥

संसारकांतारमपास्तसारं, बंभ्रम्यमाणो लभते शरीरी ।
कृच्छ्रेण नृत्वं सुखशस्यबीजं, प्ररूढदुःकर्मशमेन भूतं ॥ ११ ॥

अर्थ—साररहित संसारवनविषे अतिशयकरि भ्रमता यहु जीव है सो कष्टकरि मनुष्यना पावै है । कैसा है मनुष्यपना, नित्यही सुखरूप धान्यका बीजसमान, अर फैर रह्या जो पापकर्म ताके उपशम करि उपज्या ऐसा है ।

भावार्थ—इस असारसंसारविषें मनुष्यपना दुर्लभ है, बड़े पापके उपशम करि होय है, जातें इस ही करि मोक्षका कारन तपश्चरणादि होय सकै है ॥ ११ ॥

नरेषु चक्री त्रिदशेषु वज्री, मृगेषु सिंहः प्रशमो व्रतेषु ।
मतो महीभृत्सु सुवर्णशैलो, भवेषु मानुष्यभवः प्रधानम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे मनुष्यनिविषें चक्रवर्त्ती प्रधान है, अर देवनिविषें इंद्र प्रधान है, अर मृगनिविषें सिंह प्रधान है, अर व्रतनिविषें प्रशमभाव प्रधान है, अर पर्वतनिविषें मेरु प्रधान है; तैसें भवनिविषें मनुष्यभव प्रधान है ॥ १२ ॥

त्रिवर्गसारः सुखरत्नखानिर्धर्मः, प्रधानो भवतीह येन ।
सम्यक्त्वशुद्धाविव धर्मलाभः, प्रधानता तेन मतास्य सद्भिः ॥ १३ ॥

अर्थ—जैसें सम्यक्त्वकी शुद्धिता होतेसंतैं धर्मका लाभ होय है तैसें इस नरभवविषैं त्रिवर्ग जे धर्म अर्थ काम तिनविषैं सार अर सुख-

रत्नकी खानि ऐसा प्रधान धर्म होय है; ता कारण करि इस नरभवकी प्रधानता संतनि करि मानी है ।

भावार्थ—साक्षात् मोक्षका कारण धर्म नरभवविषैं ही होय है तातैं नरभव उत्तम कह्या है ॥ १३ ॥

यथा मणिर्ग्रावगणेष्वनर्घ्यो, यथा कृतज्ञो गुणवत्सु रम्यः ।
न सारवत्त्वेन तथांगिवर्गैः, सुखेन मानुष्यभवो भवेषु ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसैं पथरनिके समूहविषैं अमोलक रत्न सुलभ नांही तथा जैसैं गुनवाननविषैं कृतज्ञ सुलभ नांहीं, तैसैं सारवानपनें करि सुखकरि सहित भवनिविषैं मनुष्यभव सुलभ नांही ।

भावार्थ—सर्व संसारविषैं तपश्चरणादिकके साधनपनें करि सारभूत मनुष्यभव पावना अति कठिन है ॥ १४ ॥

शमेन नीतिर्विनयेन विद्या, शौचेन कीर्तिस्तपसा सपर्या ।
विना नरत्वेन न धर्मसिद्धिः, प्रजायते जातु जनस्य पथ्या ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसैं शमभावविना नीति न होय, अर विनयविना विद्या न होय, अर शौच कहिये निर्लोभपना ताविना कीर्ति न होय, अर तपविना पूजा न होय; तैसैं मनुष्यपनें विना जीवकैं हितरूप धर्मकी सिद्धि कदाचित् न होय है ॥१५ ॥

अन्नेन गात्रं नयनेन वक्त्रं, नयेन राज्यं लवणेन भोज्यम् ।
धर्मेण हीनं वत जीवितव्यं, न राजते चन्द्रमसा निशीथं ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसैं अन्न करि हीन शरीर, अर नेत्रनि करि हीन मुख, अर नीतिकरि हीन राज्य, अर लवण करि हीन भोजन, अर चन्द्रमा करि हीन रात्रि न सोहै; तैसैं धर्मकरि हीन जीवितव्य नहीं सोहै है ॥ १६ ॥

शस्येन देश पयसाब्जखण्डं, शौर्येण शस्त्री विटपी फलेन ।
धर्मेण शोभामुपयाति मर्त्यो, मदेन दन्ती तुरगो जवेन ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसें धान्यकरि देश, अर जलकरि कमलनिका वन, अर शूरवीरपनें करि शस्त्रधारी, अर फलकरि वृक्ष, अर मद करि हस्ती, अर वेगकरि घोडा शोभाकौं प्राप्त होय है तैसें मनुष्य धर्मकरि शोभाकूं प्राप्त होय है ॥ १७ ॥

मानुष्यमासाद्य सुकृच्छ्रलभ्यं, न यो विबुद्धिर्विदधाति धर्मम्।
अनन्यलभ्यं स सुवर्णराशिं, दारिद्र्यदग्धो विजहाति लब्ध्वा ॥ १८ ॥

अर्थ—जो बुद्धिरहित पुरुष कष्टकरि पावने योग्य जो मनुष्यपना ताहि पाय करि धर्मकौं न धारैहै सो दारिद्रय करि पीडित नर अन्य करि न पावने योग्य ऐसी पाई जो सुवर्णकी राशि ताहि तजैहै। भावार्थ—न ग्रहैहै ॥ १८ ॥

अनादरं यो वितनोति धर्मे, कल्याणमालाफलकल्पवृक्षे।
चिन्तामणिं हस्तगतं दुरापं, मन्ये स मुग्धस्तृणवज्जहाति ॥ १९ ॥

अर्थ—जो पुरुष कल्याणनिकी माला जो पंगति सोही भये फल ताके देनेकौं कल्पवृक्षसमान जो धर्म ता विषें अनादरकौं विस्तारैहै, सो मूढ दुःखकारी पावनें योग्य हस्तविषें आया जो चिंतामणि ताहि तृणकी ज्यों तजैहै, ऐसी मैं मानूं हूं ॥ १९ ॥

दुःखानि सर्वाणि निहन्तुकामैर्निःपीडितप्राणिगणानि धर्मः।
उपासनीयो विधिना विधिज्ञैरग्निर्हिमानीव दुरुत्तराणि ॥ २० ॥

अर्थ—पीडित किये हैं जीवनिके समूह जिननैं ऐसे जे समस्त दुःख तिनहि नाश करनेंकी है इच्छा जाकैं ऐसे पुरुषनि करि विधिसहित विधिके जाननेवालेंनि करि धर्म सेवना योग्य है; जैसें दुःख करि उतरे जाय ऐसे जाडेनकौं नाश करनेके वांछिकनि करि अग्नि सेवन योग्य है तैसें।

भावार्थ—जैसें शीत मेटे चाहत हैं तिनकरि अग्नि सेवना योग्य

है, तैसें मिथ्याज्ञानजनित परद्रव्यनिकी तृष्णारूप दुःखकों दूर करे चाहैं हैं तिन करि धर्म सेवना योग्य है ॥ २० ॥

शस्यानि बीजं सलिलानि मेघं, घृतानि दुग्धं कुसुमानि वृक्षं ।
कांक्षत्यहान्येष विना दिनेशं, धर्मं विना कांक्षति यः सुखानि ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष धर्म विना सुखानिकौं चाहै है सो यहु बीज विना धान्यनिकौं चाहै है, अर मेघविना जलनिकौं चाहै है, अर दुग्धविना घृतनिकौं चाहै है, अर वृक्ष विना फूलनिकौं चाहै है, अर सूर्य विना दिनकौं चाहै है।

भावार्थ—जैसें बीजादिक हैं ते धान्यादिकनिके कारण हैं तैसें धर्म सुखनिका कारण है, अर कारण विना कार्यकी उत्पत्ति चाहै है सो होय नांही तातैं पुरुषार्थीनिकरि धर्मका संग्रह करना योग्य है ॥ २१ ॥

आयांति लक्ष्म्यः स्वयमेव भव्यं, धर्मं दधानं पुरुषं पवित्राः ।
प्रसूनगन्धस्थगिताखिलाशां, सरोजिनीखण्डमिवालिमाला ॥ २२ ॥

अर्थ—फूलनिकी सुगन्ध करि व्याप्त करी है समस्त दिशा जानैं ऐसा जो कमलनीनिका वन ता प्रति जस भौरानिकी पंकति स्वयमेव आय प्राप्त होय है तैसें धर्मकों धारन करता जो भव्यपुरुष ता प्रति पवित्र लक्ष्मी स्वयमेव आय प्राप्त होय है ॥ २२ ॥

निषेवते यो विषयं निहीनो, धर्म निराकृत्य सुखाभिलाषी ।
पीयूषमत्यस्य स कालकूटं, सुदुर्जरं खादति जीवितार्थी ॥ २३ ॥

अर्थ—जो नीच पुरुष धर्मका निराकरण करि सुखका अभिलाषी विषयनिकौं सेवैं है सो अमृतकौं त्यागि करि जीवनेका अर्थी प्रबल कालकूट विषकूं खाय है ॥ २३ ॥

भोगोपभोगाय करोति दीनो, दिवानिशं कर्म यथा सयत्नः ।
तथा विधत्ते यदि धर्ममेकं, क्षणं तदानीं किमु नैति सौख्यम् ॥२४॥

अर्थ—जैसैं यह क्षीन भया सन्ता यत्नसहित रातदिन भोगोपभोगके अर्थ कर्म करै तैसें जो क्षणमात्र भी धर्मकौं धारै तो कहा सुखकौं प्राप्त नहीं होय, होय ही हो ॥ २४ ॥

ये योजयन्ते विषयोपभोगे, मानुष्यमासाद्य दुरापमज्ञाः।
निकृत्य कर्पूरवनं स्फुटं ते, कुर्वंति वाटीं विषपादपानां ॥ २५ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी दुःख करि पावनें योग्य जो मनुष्यपना ताहि पाय करि विषयभोगनि विषें लगावे हैं, ते प्रगट कर्पूरके वनकूं काटि करि विषवृक्षनिकी बाडी करें हैं ॥ २५ ॥

गृह्णंति धर्मं विषयाकुला ये, न भंगुरे मंक्षु मनुष्यभावे।
प्रदह्यमाने भवनेऽग्निना ते, निःसारयंते न धनानि नूनं ॥ २६ ॥

अर्थ—जे विषयनि विषें आकुलित जन क्षणभंगुर जो मनुष्यभव ता विषें शीघ्र धर्मका ग्रहण न करैं हैं, ते निश्चयतें अग्नि करि घर जलते सन्तें धननिकों न निकासें हैं ॥ २६ ॥

सर्वेऽपि भावाः सुखकारिणोऽमी, भवंति धर्मेण विना न पुंसः।
तिष्ठंति वृक्षाः फलपुष्पयुक्ताः, कालं कियंतं खलु मूलहीनाः ॥ २७ ॥

अर्थ—पुरुषकैं ये सुखकारी सब ही पदार्थ धर्म विना न होय हैं, जैसैं फल फूलनि करि सहित वृक्ष जड़रहित निश्चयकरि कितनें काल तिष्ठै? किछू भी रहै नांही ॥ २७ ॥

मोक्षावसानस्य सुखस्य पात्रं, भवन्ति भव्या भवभीरवो ये।
भजन्ति भक्त्या जिननाथदृष्टं, धर्मं निरास्वादमदूषणं ते ॥ २८ ॥

अर्थ—जे संसारतैं भयभीत भव्यजीव जिननाथ करि उपदेश्या जो धर्म ताहि भक्तिसहित सेवैं हैं, ते मोक्षपर्यंत सुखके भाजन होय हैं। कैसा है धर्म, नांही है इंद्रियजनित विषयनिका आस्वाद जाविषैं, अर रागादि दूषन करि रहित ऐसे।

भावार्थ—जे पुरुष विषयरहित निर्दोष धर्म सेवै हैं ते चक्रवर्ती इन्द्र अहमिंद्र मोक्षपर्यंत सुख पावैं हैं॥ २८॥

लक्ष्मीं विधातुं सकलां समर्थं, सुदुर्लभं विश्वजनीनमेनं।
परीक्ष्य गृह्णंति विचारदक्षाः, सुवर्णवद्वंचनभीतचित्ताः॥ २९॥

अर्थ—समस्त लक्ष्मीके रचनेकूं समर्थ, अर महादुर्लभ, अर समस्तका हित उपजावनेवाला ऐसा जो धर्म ताहि विचार विषैं प्रवीन अर ठिगायवे करि भयभीत हैं चित्त जिनके ऐसे पुरुष हैं ते सुवर्णकी ज्यों परीक्षा करि ग्रहण करैं हैं।

भावार्थ—धर्म धर्म सब ही कहैं हैं परन्तु परीक्षाप्रधान हैं ते असाधारण लक्षणतैं परखि ग्रहण करैं हैं॥ २९॥

स्वर्गापवर्गामलसौख्यखानिं, धर्मं ग्रहीतुं परमो विवेकः।
सदा विधेयो हृदये प्रविष्टैर्बुधैस्तु तं रत्नमिवापदोषं॥ ३०॥

अर्थ—स्वर्ग मोक्षके निर्मल सुखनिकी खानि जो धर्म ताहि ग्रहण करनेकौं पंडित जन करि हृदयविषैं परम विवेक सदा करने योग्य है। बहुरि ज्ञानवान तिस धर्मकौं निर्दोष रत्नकी ज्यों ग्रहण करैं हैं॥३०॥

तं शब्दमात्रेण वदंति धर्मं, विश्वेपि लोका न विचारयंते।
स शब्दसाम्येऽपि विचित्रभेदैर्विभिद्यते क्षीरमिवार्चनीयं॥ ३१॥

अर्थ—जिस धर्मकौं शब्दमात्र करि सब ही लोक कहैं हैं, अर विचार न करै हैं। बहुरि सो पूजनीक धर्म शब्दकी समानता होतैं भी नाना प्रकारके भेदनि करि भेदरूप कीजिये हैं।

भावार्थ—जैसैं आकका दूध गायका दूध नाममात्र तो समान है, परन्तु गुणनि करि बड़ा भेद है, तैसें धर्म धर्म तो सब कहैं हैं, परन्तु वीतरागभावरूप जिनधर्मविषैं अर अन्य धर्म विषैं बड़ा अन्तर है॥ ३१॥

हिंसानृतस्तेयवरांगसंगग्रंथग्रहा दत्तदुरंतदुःखाः।
धर्मेषु येष्वत्र भवन्ति निंद्यास्ते दूरतो बुद्धिमता विवर्ज्याः॥ ३२॥

अर्थ—इहां जिन धर्मनिविषें निंदनीक अर दिये हैं महादुःख जिननै ऐसे हिंसा झूंठ चोरी मैथुन परिग्रहरूप पिशाच हैं ते धर्म बुद्धिवान् करि दूरितैं त्यागने योग्य हैं॥ ३२॥

निहन्यते यत्र शरीरवर्गो, निपीयते मद्यमुपास्यते स्त्री।
बोभुज्यते मांसमनर्थमूलं, धर्मस्य मात्रापि न तत्र नूनं॥ ३३॥

अर्थ—जिस विषें जीवनिके समूह हनिए हैं, अर मदिरा पीइये है, अर परस्त्री भोगिए है, अर अनर्थका मूल मांस भखिये है, तहां निश्चय करि धर्मका अंश नांही है॥ ३३॥

बधादयः कल्मषहेतवो ये, न सेवितास्ते वितरंति धर्मम्।
न कोद्रवाः क्वापि वसुन्धरायां, निधीयमाना जनयंति शालान्॥३४॥

अर्थ—जे पापके कारण हिंसादिक ते सेये सन्ते धर्मकौं न विस्तरे हैं। जैसें कोदू पृथ्वीविषें धरे सन्ते कहूं भी धान्य न उपजावें हैं तैसें॥ ३४॥

हिंसापरस्त्रीमधुमांससेवां, कुर्वंति धर्माय विबुद्धयो ये।
पीयूषलाभाय विवर्द्धयंते, विषद्रुमांस्ते विविधैरुपायैः॥ ३५॥

अर्थ—जे दुर्बुद्धि धर्मके अर्थ हिंसा परस्त्री मधु मांसका सेवन करे हैं ते अमृतके अर्थि नाना उपायनि करि विषवृक्षनिको बढ़ावें हैं॥ ३५॥

यैर्मद्यमांसांगिवधादयोयैर्निर्माणयुक्ताः कुशलाय शास्त्रैः।
आकर्णनीयानि न तानि दक्षैः, शत्रूदितानीव वचांसि जातु॥३६॥

अर्थ—जिन शास्त्रनि करि यहु मद्य मांस जीवहिंसादिक करि रचेमये मंगलके अर्थ कहे, ते शास्त्र शत्रुके वचननिकी ज्यों पंडितनि करि कदाचित् सुनना योग्य नांही॥ ३६॥

पठंति शृण्वंति वदंति भक्त्या, स्तुवंति रक्षंति नयंति वृद्धिं
ये तानि शास्त्राण्यनुमन्यमानास्ते यांति सर्वेऽपि कुयोनिमग्नाः ॥३७॥

अर्थ—जे पुरुष तीन पापरूप शास्त्रनिकों नमते संते भक्ति करि पढ़ें हैं सुनें हैं स्तुति करें हैं रक्षा करें हैं वृद्धिकों प्राप्त करें हैं, ते सर्व ही अज्ञानी कुगतिकों प्राप्त होय हैं, नरक तिर्यञ्चादि गतिनमें अनंतकाल भ्रमै है ॥ ३७ ॥

धर्मं ददतेऽगिवधादयोऽमी, विधीयमाना यदि नाम तथ्यं ।
सांसारिकाचारविधौ प्रवृत्ता, न पापिनः केऽपि तदा भवंति ॥३८॥

अर्थ—ये जीवहिंसा आदि करि भये जो प्रगटपनें सत्यार्थधर्मकों देय हैं तो लौकिक आचारकी विधि विषें प्रवर्त्तते कोई भी पापी न होय ।

भावार्थ—जो हिंसादिक ही धर्म होय तौ कसाई भील धीवर इत्यादिक सर्व ही धर्मात्मा ठहरें । तातें हिंसादिक हैं ते धर्म नांही ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

रागादिदोषाकुलमानसैर्ये, ग्रंथाः क्रियन्ते विषयेषु लोलैः ।
कार्याः प्रमाणं न विचक्षणैस्ते, जिघृक्षुभिर्धर्ममगर्हणीयम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—रागादि दोषनि करि व्याकुल अर विषयनि विषें चंचल जो पुरुष तिनकरि जे ग्रंथ कहिये है ते ग्रंथ अनिंद्य धर्मकूं ग्रहण करनेके वांछक प्रवीण पुरुषनि करि प्रमाण करना योग्य नाहीं ।

भावार्थ—रागीद्वेषीनि करि रचे शास्त्र हैं ते अप्रमाण हैं ॥३९॥

ये द्वेषरागाश्रयलोभमोहप्रमादनिद्रामदखेदहीनाः ।
विज्ञातनिःशेषपदार्थतत्त्वास्तेषां प्रमाणं वचनं विधेयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जे द्वेष रागके आश्रय लोभ मोह प्रमाद निद्रा मद खेद इनिकरि रहित हैं, अर जाने हैं समस्त पदार्थनिके स्वभाव जिनने तिनके वचन प्रमाण करना योग्य है ।

भावार्थ—सर्वज्ञ वीतरागके वचन प्रमाण करना योग्य है। जातें रागी होय तौ असत्य कहै। अर सर्वज्ञ न होय तौ यथार्थ जानें विना कहा कहै? तातें सर्वज्ञ वीतरागहीके वचन प्रमाण हैं ॥४०॥

रागादिदोषा न भवंति येषां, न संत्यसत्यानि वचांसि तेषां।
हेतुव्यपाये न हि जायमानं, विलोक्यते किंचन कार्यमार्यैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिनके रागद्वेष नहीं हैं तिनके वचन असत्य नहीं हैं, जातें कारणके नाश भये संतें किछू कार्य बडे पुरुषनिकरि न विलोकिए है।

भावार्थ—जैसें माटी आदि कारणके अभाव होतें हैं घटादिक कार्य न देखिए है तैसें रागादिक हैं ते असत्य वचनके कारण हैं। रागादि विना असत्य वचन न होय हैं ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि।
निरीक्षते कुत्र पदार्थजातं, विना प्रकाशं शुभलोचनोऽपि ॥ ४२ ॥

अर्थ—चतुर पुरुष भी गुणनिके समुद्र जे गुरु तिन विना धर्मकौं न जानै है। जैसें शुभ नेत्र सहित पुरुष भी प्रकाश विना पदार्थनके समूहकौं कहूं देखै है? अपितु नांही देखै है ॥ ४२ ॥

ये ज्ञानिनश्चारुचरित्रभाजो, ग्राह्या गुरूणां वचनेन तेषाम्।
सन्देहमत्यस्य बुधेन धर्मो, विकल्पनीयं वचनं परेषाम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जे ज्ञानवान सुन्दर चारित्रके धरनेवाले हैं तिन गुरुनिके वचन करि सन्देह छोड़ि पंडित पुरुषकरि धर्म ग्रहण करना योग्य है। बहुरि ऐसे गुरूनि विना औरनिका वचन विकल्पनीय कहिये सन्देह योग्य है ॥ ४३ ॥

भीतैर्यथा वंचनतः सुवर्णं, प्रताडनच्छेदनतापघर्षैः।
तथा तपःसंयमशीलबोधैः, परीक्षणीयो गुरुशब्दबोधैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसें ठिगायवेतें भयभीत जे पुरुष तिनकरि सुवर्ण जो है सो कूटना छेदना तपावना घिसना इनकरि वा गुरुवे शब्दके देवाकरि परखना योग्य है तैसें तप संयमशील निर्लोभपना इनि करि तथा गुरुके वचननिके ज्ञाननि करि धर्म परखना योग्य है। इहां "गुरुशब्दबाधैः" इस पदका अर्थ सुवर्णपक्षमैं गुरुवे भारी शब्दके ज्ञान करि ऐसा लगाय लेना ॥ ४४ ॥

संसारमुद्भूतकषायदोषं, विलंघयंते गुरुणा विना ये ।
विभीमनक्रादिगणं ध्रुवं ते, वार्धि तितीर्षंति विना तरंडम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—जे पुरुष उपजे हैं कषायरूप दोष जातें ऐसा जो संसार समुद्र ताहि श्रीमेरु विना अतिशयकरि उलंघे चाहै हैं, ते निश्चयकरि महाभयानक है । नक्रादिकके समूह जा विषें ऐसे समुद्रकूं नाव विना तैरना चाहै हैं ॥ ४५ ॥

येषां प्रसादेन मनःकरींद्रः, क्षणेन वश्यो भवतीह दुष्टः ।
भजन्ति ये तान् गुणिनो न भक्त्या, तेभ्यः कृतघ्ना न परे भवंति ॥४६

अर्थ—इहां लोकविषें जिनके प्रसादकरि मनरूप गजेन्द्र क्षण-मात्र करि वश होय है, तिन गुणवान गुरुनिकों जे भक्तिसहित न सेवै हैं तिनतें सिवाय और कृतघ्नी कौन है ? ॥ ४६ ॥

कृतोपकारो गुरुणा मनुष्यः, प्रपद्यते धर्मपरायणत्वम् ।
चामीकरस्येव सुवर्णभावं, सुवर्णकारेण विशारदेन ॥ ४७ ॥

अर्थ—गुरुनें करया है उपकार जापै ऐसा जो मनुष्य है सो धर्मविषें परायणपनांकों प्राप्त होय है । जैसें चतुर सुनार करि सुवर्णकें भले वर्णका भाव होय तैसें ।

भावार्थ—जैसें सुनारकी संगति करि सोना सोलहवानीका होय है तैसें श्रीगुरुके प्रसाद करि जीव धर्मकों प्राप्त होय है ऐसा जानना ॥ ४७ ॥

विवर्त्तमानो व्रततो गुरुभ्यो, न शक्यते वारयितुं परेण ।
अलीकवादी व्यवहारकार्ये, साक्षीकृतैरेव नियम्यते हि ॥ ४८ ॥

अर्थ—व्रततें पराङ्मुख होता जो पुरुष सो गुरु विना और करि रोकनेकूँ समर्थ न हूजिये है। जैसें व्यवहारकार्य विषें झूँठ बोलनेवाला पुरुष जे साक्षी करें हैं तिन करि ही निश्चय करि रोकिए है तैसें ।४८।

दुग्धेन धेनुः कुसुमेन वल्ली, शीलेन भार्या सरसी जलेन ।
न सूरिणा भाति विना व्रतास्था, शमेन विद्या नगरी जनेन ॥४९॥

अर्थ—दुग्धसें गाय सोहै है, अर फूलनिसें बेलि सोहै हैं, अर शीलसें स्त्री सोहै है अर जलसें तलाव सोहै है, आचार्यके विना व्रतकी स्थिति नहीं होय है, शांतिभावसें विद्या सोहै है, मनुष्यनितें नगरी सोहै है ॥ ४९ ॥

विधीयते सूरिवरेण सारो, धर्मो मनुष्ये वचनैरुदारैः ।
मेघेन देशे सलिलैः फलाढ्ये, निरस्ततापैरिव सस्यवर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—जैसें दूर किया है ताप जिननें ऐसे जलनि करि फलसहित देशमें मेघकरि धान्यका समूह उपजाइए है तैसें उदार वचननि द्वारा आचार्यकरि मनुष्यविषें सारभूत धर्म उपजाइए है ॥ ५० ॥

लब्ध्वोपदेशं महनीयवृत्तेर्गुरोरनुष्ठाय विनीतचेताः ।
पापस्य भव्यो विदधाति नाशं, व्याधेरिव व्याधिनिषूदनस्य ॥ ५१ ॥

अर्थ—जैसें रोगी वैद्यका उपदेश ग्रहण करि वाकी बताई औषधिकौं लेकरि व्याधिका नाश करै है तैसे विनययुक्त है चित्त जाका ऐसा भव्य, पूज्य है आचरण जाका ऐसे गुरुके उपदेशको प्राप्त अर वाकूं अनुष्ठान करि पापका नाश करै है।

भावार्थ—जैसें रोगी वैद्यके उपदेशतें रोगकूं नाशै है तैसें भव्य गुरुके उपदेशतें पापकौं नाशै है ॥ ५१ ॥

सर्वोपकारं निरपेक्षचित्तः करोति यो धर्मधिया यतीशः।
स्वकार्यनिष्ठैरुपमीयतेऽसौ कथं महात्मा खलु बंधुलोकैः॥ ५२॥

अर्थ—जो आचार्य विनास्वार्थके धर्मबुद्धिकरि सर्वका उपकार करै है सो यहु महात्मा अपने अपने कार्य साधने विर्षे तत्पर ऐसे बन्धुलोकनि करि कैसैं बराबर हूजिए हैं॥ ५२॥

निषेव्यमाणानि वचांसि येषां, जीवस्य कुर्वंत्यजरामरत्वम्।
नाराधनीया गुरवः कथं ते, विभीरुणा संसृतिराक्षसीतः॥ ५३॥

अर्थ—जिन आचार्यनके वचन सेवन किये भए जीवकै अजरा-मरपना करिए हैं वे गुरु संसाररूप राक्षसीतैं डरे भए पुरुष करि कैसैं आराधना न किए जाय हैं, अपितु आराधना किए ही जाय हैं॥५३॥

माता पिता ज्ञातिनराधिपाद्या, जीवस्य कुर्वंत्युपकारजातम्।
यत्सूरिदत्तामलधर्मनुन्ना, स्तेनैष तेभ्योतिशयेन पूज्यः॥ ५४॥

अर्थ—माता पिता जाति राजा आदिक जे हैं ते आचार्य करि दिये हुए निर्मल धर्मसे प्रेरित हुए थके जीवके उपकारनिके समूहकौं करै हैं अर आचार्य विना प्रेरे हुए ही करै हैं तातैं या अतिशय करि गुरु जो है सो माता पिता जाति राजादिक करि भी पूज्य हैं॥५४॥

निषेवमाणो गुरुपादपद्मं, त्यक्तान्यकर्मा न करोति धर्मम्।
प्ररूढसंसारवनक्षयाग्नि, निरर्थकं जन्म नरस्य तस्य॥ ५५॥

अर्थ—छोड़े हैं अन्य कार्य जानें ऐसा गुरुके चरणकमलको ही सेवन करै ऐसा जो पुरुष, अँकुरित ऐसा जो संसार बन ताके नाश करनेमें अग्नि समान ऐसे धर्मकौं न करै है वा पुरुषका जन्म निरर्थक है॥ ५५॥

ये सूरयो धर्मधिया ददंति, यं बांधवः स्वार्थधिया जनानाम्।
अयं तयोरन्तरमत्र वेद्यं, सताणुमेर्वोरिव जायमानम्॥ ५६॥

अर्थ—जो अर्थको आचार्य तौ धर्मबुद्धिकरि मनुष्यनिकौं देवें हैं अर भाई बन्धु जन स्वार्थबुद्धिकरि देवें हैं सो यहां सत्पुरुषनिकरि इन दोऊनिमें परमाणु अर मेरुमें होय ऐसे अन्तर समान अन्तर जानना योग्य हैं।

भावार्थ—आचार्य अर भाई बन्धुनिमें इतना अन्तर है जितना सुमेरु अर परमाणुमें है ॥ ५६ ॥

लक्ष्मीं करींद्रश्रवण-स्थिरत्वां, तृणाग्रतोयस्थिति जीवितव्यम्।
विसृत्वरीं यौवनिकां च दृष्ट्वा, धर्मं न कुर्वंति कथं महांतः ॥ ५७ ॥

अर्थ—लक्ष्मीकूं हाथीके कानसमान चंचल देखि करि अर तृणनिकी अनीपर लग्या जलकी स्थिति समान जीवितव्य देखकरि अर यौवन अतिशयकरि जानेवाला देखि करि महंत पुरुष धर्म कैसें न करें हैं? करेंही हैं ॥ ५७ ॥

अनश्वरीं यो विदधाति लक्ष्मीं, विधूय सर्वां विपदं क्षणेन।
कथं स धर्मः क्रियते न सद्भिस्त्याज्येन देहेन मलालयेन ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो धर्म क्षणमात्रमें सर्व विपदानिकौं दूरि करि अविनश्वर लक्ष्मीकूं करैहै सो धर्म सत्पुरुषनिकरि मलका घर अर त्यागने योग्य ऐसे देहकरि कैसे न करिये है ॥ ५८ ॥

पिंडं ददाना न नियोजयंते, कलेवरं भृत्यमिवात्मनीने।
कार्ये सदा ये रचितोपकारे, ते वंचयंते स्वयमेव मूढाः ॥ ५९ ॥

अर्थ—जे पुरुष भोजन देते सन्ते अर शरीरको चाकरकी ज्यों सदाकाल करया है उपकार जानें ऐसे अपने हितरूप कार्यविषें न लगावै हैं ते मूढ़ स्वयमेव ठिगावें हैं।

भावार्थ—जैसें कोई चाकरकौं भोजनादि सामग्री तौ देवै अर अपने हितरूप कार्यमें न लगावै तब वो स्वच्छन्द होय है अर मालिक

ठिगाया जाय है तैसें शरीरकों भोजनादि सामग्रीतें तो पोषैं हैं अर हितरूप तपश्चरणादि कार्यमें न लगावें हैं ते ठिगाये जाय हैं ऐसा जानना ॥ ५९ ॥

गृहांगजापुत्रकलत्रमित्रस्वस्वामिभृत्यादिपदार्थवर्गे ।
विहाय धर्मं न शरीरभाजामिहास्ति किंचित्सहगामि पथ्यम् ॥६०॥

अर्थ—इस लोकमें गृह पुत्री पुत्र स्त्री मित्र धन स्वामी चाकर आदि पदार्थनिके समूहविषै धर्मकौं छोड़ और किछु जीवनिके साथ जानेवाला हितकारी नाहीं।

भावार्थ—इस जीवका साथी धर्म ही है और पदार्थ साथी नाहीं ॥ ६० ॥

घातिक्षयोद्भूतविशुद्धबोध, प्रकाशविद्योतितसर्वतत्त्वाः ।
भवंति धर्मेण जिनेन्द्रचन्द्रा, त्रिलोकनाथार्चितपादपद्माः ॥ ६१ ॥

अर्थ—घातिया कर्मनिके क्षयतें उपज्या जो निर्मल केवलज्ञान ताके प्रकाश करि प्रकाशे हैं सर्व पदार्थ जिनने अर तीनलोकके नाथ जे इंद्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती तिन करि पूजित हैं चरणकमल जिनके ऐसे जे जिनेन्द्रचन्द्र तीर्थंकर भगवान हैं ते धर्मकरि होय हैं ॥ ६१ ॥

आराध्यमानस्त्रिदशैरनेकैर्विराजते स्वैः प्रतिबिम्बकैर्वा ।
धर्मप्रसादेन निलिंपराजः, सुरांगनावक्त्रसरोजभृङ्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—धर्मके प्रसादकरि अपने प्रतिबिंब समान अनेक देवनि करि सेव्यमान देवनिका राजेन्द्र सोहै है, कैसा है इन्द्र देवांगनानिके मुख कमलनिविषें भृङ्गसमान है।

भावार्थ—इन्द्रपद धर्म करि मिले है ऐसा जानना ॥ ६२ ॥

द्वात्रिंशदुर्वीशसहस्रमूर्द्ध–प्रसूनमालापिहितांघ्रिपद्मः ।
धर्मेण राज्यं विदधाति चक्री, विलम्बमानत्रिदशेशलीलाम् ॥६३॥

अर्थ—धर्मकरि चक्रवर्ती राज्यकों धारे हैं, कैसा है चक्रवर्ती बत्तीस हजार राजानिके मस्तकनिकी जे पुष्पनिकी माला तिनकर मिले हैं चरणकमल जाके अर इन्द्रकी लीलाको धरे ऐसा चक्रवर्ती धर्म करि होय है ॥ ६३ ॥

मनोभवाक्रांतविदग्धरामा, कटाक्षलक्ष्मीकृतकांतकाय: ।
दिगंगनाव्यापिविशुद्धकीर्तिर्धर्मेण राजा भवति प्रतापी ॥ ६४ ॥

अर्थ—कामकरि भरी अर चतुर जे स्त्री तिनके कटाक्षनि करि निसानारूप किया है दैदीप्यमान शरीर जाका अर दिशारूप स्त्रीनि विषें व्यापी है निर्मल कीर्ति जाकी ऐसा प्रतापी राजा धर्म करि होय है ॥ ६४ ॥

मतंगजा जंगमशैललीलास्तुरंगमा निर्जितवायुवेगा: ।
पदातय: शक्रपदातिकल्पा:, रथा विवस्वद्रथसन्निकाशा: ॥ ६५ ॥
योषा: स्वशोभाजितदेवयोषा:, निलिंपवासप्रतिमा निवासा: ।
अनन्यलभ्या धनधान्यकोशा:, भवंति धर्मेण पुरार्जितेन ॥ ६६ ॥

अर्थ—चालते पर्वतनिकी लीला धरें ऐसे हस्ती, अर जीत्या है पवनका वेग जिननें ऐसे घोड़े, अर इन्द्रके पयादेसमान पयादे, अर सूर्यके रथके तुल्य रथ ॥ ६५ ॥

बहुरि अपनी शोभाकरि जीती हैं देवांगना जिननें ऐसी स्त्री, अर इन्द्रके मंदिरसमान महल, अर औरनिकरि न पावने योग्य ऐसे धन धान्यनिके भण्डार पूर्वोपार्जित धर्मकरि होय हैं ॥ ६६ ॥

परेऽपि भावा भुवने पवित्रा, भवंति पुण्यैर्न विना जनस्य ।
विनामृणालै: क्वचनापि दृष्टा:, संपद्यमाना न पयोजखण्डा: ॥६७॥

अर्थ—लोकविषें और भी जे पदार्थ हैं ते पुण्यविना जीवकें न होय हैं जैसें मृणाल जो कमलकी जड़ तिनविना कमलानिके वन कभी प्राप्त भए न देखे ॥ ६७ ॥

स्वपूर्वलोकानुचितोऽपि धर्मो, प्राह्यः सतां चिंतितवस्तुदायी ।
पप्रार्थयन्ते न किमीश्वरत्वं, स्वजात्ययोग्यं जनता सदापि ॥ ६८ ॥

अर्थ—अपने पूर्वलोक जे पितादिक तिनके अनुचित भी धर्म सत्पुरुषनिकों वांछित वस्तुका देनेवाला ग्रहण करना योग्य है, जैसें अपनी जातिके अयोग्य जो ईश्वरपना ताहि लोक कहा अतिशयकरि सदा न चाहै है ? अपितु चाहैही है ।

भावार्थ—कोऊ कहै हमारे कुलमें जिनधर्म नांही हम कैसें ग्रहण करें ताकूं कहैं हैं–जो अपने कुलमें जिनधर्म नांही तो भी नवीन ग्रहण करना योग्य है। जैसें कोउकों नवीन राज्य मिलै तौ कहा ग्रहण न करै ? ॥ ६८ ॥

त्यजंति वंशानतमप्यवद्यं, संप्राप्य पुण्यं जनतार्चनीयम् ।
कुष्टं कुलायातमपि प्रवीणाः, कल्पत्वमासाद्य परित्यजंति ॥ ६९ ॥

अर्थ—जैसें सुन्दर शरीर निरोगपनांकूं पायकरि प्रवीण पुरुष कुलविषें चल्या आया भी जो कुष्ट रोग ताहि तजैंहैं तैसें लोकपूज्य धर्मकों पायकरि कुलमें चल्या आया भी जो पाप ताहि तजें हैं ॥६९॥

मूर्खापवादत्रसनेन धर्मं, मुंचंति सन्तो न बुधार्चनीयम् ।
ततो हि दोषः परमाणुमात्रो, धर्मव्युदासे गिरिराजतुल्यः ॥ ७० ॥

अर्थ—मूर्खनके अपवादका भयकरि पंडितनिकरि पूज्य जो धर्म ताहि सत्पुरुष न त्यागैहै, जातें तिस मूर्खापवादतें तौ दोष परमाणु-मात्र है अर धर्मनाश भए सुमेरुतुल्य दोष है ऐसा जानना ॥ ७० ॥

निखिलसुखफलानां कल्पने कल्पवृक्षं, कुमतिमतविभीता ये विमुंचंति धर्मम् । विमलमणिनिधानं पावनं दुष्टतुष्ट्यै, स्फुटमपगतबोधाः प्राप्य ते वर्जयन्ति ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे कुबुद्धिनिके मततें भयभीत भये सन्ते समस्तसुखरूप फलनिके देनेविषें कल्पवृक्ष तुल्य जो धर्म ताहि तजें हैं ते अज्ञानी पवित्र निर्मल रत्नका भण्डारकौं प्रगट पायकरि दुष्टनिकी प्रसन्नताके अर्थ त्यागें हैं ॥ ७१ ॥

अमरनरविभूतिं यो विधायार्थनीयां, नयति निरपवादां लीलया मुक्तिलक्ष्मीम् । अमितगतिजिनोक्तः सेव्यतामेष धर्मः, शिवपदमवद्यं लब्धकामैरकामैः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो धर्म, प्रार्थना योग्य जो देवमनुष्यनिकी विभूति ताहि रचि, अर लीलामात्र करि निर्दोष लक्ष्मीकौं प्राप्त करै है सो अमितगति-जिनोक्त कहिए अनन्त है ज्ञान जाका ऐसे जिनदेव करि कह्या अथवा अमितगत्याचार्यकरि कह्या यहु धर्म पापरहित शिवपद लेनेके वांछक अर रहित काम जे जीव तिनकरि सेवना योग्य है ॥ ७२ ॥

छप्पय ।

दुर्लभनरभव पाय अन्य कारज तज दीजे,
होय विषयतें विमुख सुगुरुवचनामृत पीजे।
मिथ्याभाव निवार धार जिनधर्म धार उर,
इन्द्रादि पद पाय धर्मतें होय जगतगुर ॥
कल्याणकार कलिमलहरन, धर्म परम उत्तम सरन ।
जिनराज अमितगति कथित, तसु भागचन्द बंदित चरन ॥

ऐसें श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषें पहला परिच्छेद समाप्त भया ।

द्वितीय परिच्छेद

मिथ्यात्वं सर्वथा हेयं, धर्मं वर्द्धयता सता।
विरोधो हि तयोर्वाढं, मृत्युजीवितयोरिव ॥ १ ॥

अर्थ—धर्मकौं बढावता जो सत्पुरुष ताकरि मिथ्यात्व सर्व प्रकार त्यागना योग्य है, जातें मिथ्यात्व अर धर्म इन दोउनिका मरन अर जीवनकी ज्यों अतिशय करि बड़ा विरोध है ॥ १ ॥

संयमा नियमाः सर्वे, नाश्यंते तेन पावनाः।
क्षयकालानलेनेव, पादपाः फलशालिनः ॥ २ ॥

अर्थ—जैसें प्रलयाग्नि करि फलनि करि शोभित जे वृक्ष हैं ते नाशकूं प्राप्त होय हैं तैसें तिस मिथ्यात्व करि पवित्र संयम नियम सर्व नाशकों प्राप्त होय हैं ॥ २ ॥

अतत्वमपि पश्यंति, तत्वं मिथ्यात्वमोहिताः।
मन्यंते तृषितास्तोयं, मृगा हि मृगतृष्णिकां ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व करि मोहित जीव हैं ते अतत्वकौं तत्व माने हैं, जैसें तिसारा मृग हैं ते मृगतृष्णाकूं निश्चय करि जल मानें हैं ॥ ३ ॥

विभ्रांता क्रियते बुद्धिर्मनोमोहनकारिणा।
मिथ्यात्वेनोपयुक्तेन, मद्येनेव शरीरिणः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनकों अचेन करनेवाला उपयुक्त भया जो मिथ्यात्व ताकरि मदिराकी ज्यों जीवकी बुद्धि विशेष भ्रांतिरूप करिये हैं ॥४॥

पदार्थानां जिनोक्तानां, तदश्रद्धानलक्षणम्।
ऐकांतिकादिभेदेन, सप्तभेदमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिन भाषित जीवादिक पदार्थनिका अश्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा, सो मिथ्यात्व ऐकांतिक आदि भेद करि सात प्रकार कह्या है ॥ ५ ॥

अब एकांत, संशय, विनय, गृहीत, विपरीत, निसर्ग, मूढदृष्टि, ऐसे सात प्रकार मिथ्यात्वका स्वरूप कहैं है,—

क्षणिकोऽक्षणिको जीवः, सर्वथा सगुणोऽगुणः।
इत्यादि भाषमाणस्य, तदैकांतिकमिष्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—जीव एकांत करि सर्व प्रकार क्षणिक ही है, वा नित्य ही है, वा निर्गुण ही है, वा सगुण ही है, इत्यादिक कहनेवाले कैं एकांत मिथ्यात्व कहिए ॥ ६ ॥

सर्वज्ञेन विरागेण, जीवाजीवादि भाषितम्।
तथ्यं न वेति संकल्पे, दृष्टिः सांशयिकी मता ॥ ७ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ वीतराग करि कह्या जो जीव अजीव आदि तत्व सो सत्य हैं अथवा असत्य हैं ऐसें विकल्प होतेसंतें संशयजनित दृष्टि कही है।

भावार्थ—सो संशयमिथ्यात्व कह्या है ॥ ७ ॥

आगमा लिंगिनो देवाः, धर्माः सर्वे सदासमाः।
इत्येषा कथ्यते बुद्धिः, पुंसो वैनयिकी जिनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्व आगम, अर सर्वभेषी, अर सर्व देव अर सर्व धर्म सदा समान हैं ऐसी यहु पुरुषकी बुद्धि, जिनदेवनिकरी विनय-मिथ्यादृष्टि कहिए है ॥ ८ ॥

पूर्णः कुहेतुदृष्टांतैर्न तत्वं प्रतिपद्यते।
मंडलश्चर्मकारस्य, भोज्यं चर्मलवैरिव ॥ ९ ॥

अर्थ—खोटे हेतु दृष्टांतनि करि भरया पुरुष तत्वकौं प्राप्त न होय है जैसे चर्मके टूकडानि करि पूर्ण चमारका कुत्ता भोजनकौं प्राप्त न होय है।

भावार्थ—जैसें 'चमारका कुत्ता चर्मके टूकडे खाय है ताकौं

भोजन न रुचै तैसें खोटे हेतु दृष्टान्तनि करि सहित मिथ्यादृष्टी तत्वकों न पावै है सो गृहीत मिथ्यादृष्टी है ॥ ९ ॥

अतथ्यं मन्यते तथ्यं, विपरीतरुचिर्जनः।
दोषातुरमनास्तिक्तं, ज्वरीव मधुरं रसम् ॥ १० ॥

अर्थ—जैसें वातपित्तादि दोषनि करि आतुर जो ज्वरसहित पुरुष सो मिष्टरसको कटुक मानै है तैसें विपरीत है रुचि जाकै ऐसा जीव सत्यार्थको असत्यार्थ मानै है, यह विपरीत मिथ्यादृष्टी जानना।

दीनो निसर्गमिथ्यात्वात्तत्वातत्वं न बुध्यते।
सुन्दरासुन्दरं रूपं, जात्यंध इव सर्वथा ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसें जनमका अन्धा पुरुष सर्वथा सुन्दर या असुन्दर रूपकों न जानै है तैसें दीन एकेन्द्रियादि अज्ञानी जीव स्वभावजनित मिथ्यात्वतें तत्वकों न जानैं है, ऐसा निसर्ग मिथ्यात्वका स्वरूप कह्या ॥ ११ ॥

देवो रागी यतिः संगी, धर्मः प्राणिनिशुम्भनम्।
मूढदृष्टिरिति ब्रूते, युक्तायुक्ताविवेचकः ॥ १२ ॥

अर्थ—योग्य अयोग्यके विवेकरहित मूढ है दृष्टि जाकी ऐसा पुरुष सो रागी देव अर परिग्रहधारी गुरु, जीवनिकी हिंसारूप धर्म ऐसे कहैं है यह विपरीत मिथ्यादृष्टि लक्षण कह्या है ॥ १२ ॥

सप्तप्रकारमिथ्यात्वमोहितेनेति जन्तुना।
सर्वं विषाकुलेनेव, विपरीतं विलोक्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—ऐसे सातप्रकार मिथ्यात्वकरि मोहित जो जीव ताकरि विषाकुलकी ज्यौं सर्व विपरीत देखिए है ॥ १३ ॥

न तत्वं रोचते जीवः, कथ्यमानमपि–स्फुटम्।
कुधीरुक्तमनुक्तं वा, निसर्गेण पुनः परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—कुबुद्धि जीव प्रगट उपदेश्या तत्वकों भी नहीं श्रद्धान करै है । बहुरि कह्या वा विना कह्या जो अतत्व ताहि स्वभावकरि ही श्रद्धान करै है ॥ १४ ॥

पठन्नपि वचो जैनं, मिथ्यात्वं नैव मुञ्चति ।
कुदृष्टिः पन्नगो दुग्धं, पिबन्नपि महाविषम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसें दुग्धकौं पीवता भी सर्प महाविषकौं न त्यागै है तैसें मिथ्यादृष्टि जीव जिनवचनकौं पढ़ता भी मिथ्यात्वकौं न त्यागै है ॥१५॥

उदये दृष्टिमोहस्य, मिथ्यात्वं दुःखकारणम् ।
घोरस्य सन्निपातस्य, पंचत्वमिव जायते ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसें घोर सन्निपातके उदय होतसंतें मरण होय है तैसें दर्शनमोहका उदय होतसंतें दुःखका कारण मिथ्यात्व होय है ॥१६॥

बहु बध्नाति यः कर्म्म, स्तोकं भुक्ते कुदर्शनं ।
स भवार्णवदुःखेभ्यो, विमोक्षं लक्ष्यते कथं ॥ १७ ॥

अंजलिं वल्भमानस्य, पुरुषस्य दिने दिने ।
धान्यस्य गृह्णतः खारीं, कहा धान्यविमुक्तता ॥ १८ ॥

न वक्तव्यमिति प्राज्ञैः, कदाचन यतो भवी ।
कर्म भुंक्ते बहु स्तोकं, स्वीकरोति विसंशयं ॥ १९ ॥

अन्यथैकेन जीवेन, सर्वेषां कर्मणां ग्रहे ।
सर्वेषां जायतेऽन्येषां, न कथं मुक्तिसंगतिः ॥ २० ॥

समस्तानां तथैकेन, पुद्गलानां ग्रहेंगिना ।
अनंतानन्तकालेन, न बन्धः सांतरः कथम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि बहुत कर्म बांधैहै अर थोड़ा कर्म भोगै है सो संसारवनके दुःखनितें मोक्ष कैसें पावैगा ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसें दिनदिन विषें धान्यकी अञ्जली खाते अर खारी ग्रहण करते कैं धान्यका बीतना कदे हूनो होय ॥ १८ ॥

ऐसें कोऊ कहै तासें आचार्य कहै है—

बुद्धिवाननि करि "न वक्तव्यं" कहिए ऐसा कहना कदाचित् योग्य नाहीं, जातें संसारी जीव निश्चयतें बहुत कर्म भोगै है अर थोड़ा अङ्गीकार करै है ॥ १९ ॥

जो ऐसे नहीं होय तौ एक जीव करि सर्व कर्मनिका ग्रहण होतसन्तें बाकी और सर्व जीवनिकें मुक्तिकी प्राप्ति कैसें न होय ॥ २० ॥

बहुरि तैसें ही एक जीवकरि सर्व पुद्गलनिका ग्रहण न होतें जीवनिकें अनंतानंत कालकरि अन्तरसहित बन्ध कैसें न होय ऐसा उत्तर है ॥ २१ ॥

सस्यानीवोषरे क्षेत्रे, निक्षिप्तानि कदाचन ।
न व्रतानि प्ररोहंति, जीवे मिथ्यात्ववासिते ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसें ऊषर भूमिविषें बोए भए धान्य कदाचित् न उपजें हैं तैसें मिथ्यात्वकरि वासित जो जीव ताविषें व्रत नाहीं होय हैं ॥२२॥

मिथ्यात्वेनानुविद्धस्य, शल्येनेव महीयसा ।
समस्तापन्निधानेन, जायते निर्वृतिः कुतः ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसें महाशल्यकरि अनुविद्ध पुरुषकै सुख कहांतें होय? तैसें समस्त आपदानिका निधान जो मिथ्यात्व ताकरि अनुविद्ध पुरुषकें सुख काहेतें होय है? नांहीं होय है ॥ २३ ॥

षोढानायतनं जन्तोः, सेवमानस्य दुःखदं ।
अपथ्यमिव रोगित्वं, मिथ्यात्वं परिवर्द्धते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसें अपथ्यकौं सेवन करते कैं रोगीपना बढ़े है तैसें दुःखदायक जो छह प्रकार अनायतन ताकूँ सेवता जो पुरुष ताकें मिथ्यात्व बढ़े है ॥ २४ ॥

मिथ्यादर्शनविज्ञान, चारित्रैः सहभाषिताः ।
तदाधारजनाः पापाः, षोढाऽनायतनं जिनैः ॥ २५ ॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र इन तीमनि करि सहित पापरूप तिन मिथ्यादर्शनादिकके आधार मनुष्य ऐसे छह प्रकार अनायतन जिनदेवनि करि कहे हैं ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र ये तीन; अर तिनके धारक पुरुष तीन, ऐसें छह अनायतन जानना। आयतन नाम ठिकानेका है सो ये धर्मके ठिकाने नांहीं तातैं अनायतन कहे हैं ।।२५।।

एकैकं न त्रयो द्वे द्वे, रोचन्ते न परे त्रयः ।
एकत्त्राणीति जायंते, सप्तप्येते कुदर्शनाः ।। २६ ।।

अर्थ—तीन तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषें एककौं न मानें हैं। अर और तीन मिथ्यादृष्टि दोयकौं न मानें हैं । बहुरि एक तीननकौं न जानै है ऐसें ये सात मिथ्यादृष्टि होय हैं ।। २६ ।।

दवीयः कुरुते स्थानं, मिथ्यादृष्टिरभीप्सितम् ।
अन्यत्र गमकारीव, घोरैर्युक्तो व्रतैरपि ।। २७ ।।

अर्थ—घोर व्रतनि करि सहित भी मिथ्यादृष्टि वांछित स्थानकौं अन्य स्थान जानेवालेकी ज्यौं अतिदूर करै है ।

भावार्थ—जैसें मारगतें अन्यत्र चलनेवाला बहुत चालता भी वांछित स्थानकौं उलटा दूर करै है तैसें मिथ्यादृष्टि घोर तप करता भी वांछित मोक्षपदकौं उलटा दूरि करै है कर्म बांधै है, ऐसा जानना ।।२७।।

न मिथ्यात्वसमः शत्रुर्न, मिथ्यात्वसमं विषम् ।
न मिथ्यात्वसमो रोगा, न मिथ्यात्वसमं तमः ।। २८ ।।

अर्थ—मिथ्यात्वसमान वैरी नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान विष नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान रोग नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान अन्धकार नांहीं ।। २८ ।।

द्विषद्विषतमं रोगैर्दुःखमेकत्र दीयते ।
मिथ्यात्वेन दुरन्तेन, जन्तोर्जन्मनि जन्मनि ।। २९ ।।

अर्थ—वैरी, विष, अन्धकार रोग इन करि दुःख एक जन्मविषें दीजिए है । अर दूर है अन्त जाका ऐसा जो मिथ्यात्व ताकरि जीवकौं जन्म जन्मविषें दुःख दीजिए है ॥ २९ ॥

वरं ज्वालाकुले क्षिप्तो, देहिनात्मा हुताशने ।
न तु मिथ्यात्वसंयुक्तं, जीवितव्यं कथंचन ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्वालानि करि आकुल जो अग्नि ताविषें तौ आत्मा खेप्या भला परन्तु मिथ्यात्वसहित जीवना कोई प्रकार भला नाहीं ॥ ३० ॥

पापे प्रवर्त्यते येन, येन धर्मान्निवर्त्यते ।
दुःखे निक्षिप्यते येन, तन्मिथ्यात्वं न शांतये ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिस मिथ्यात्व करि पापविषें प्रवृत्ति कराइये है, अर धर्मतें पराङ्मुख करिए है, अर दुःखविषें पटकिये है सो मिथ्यात्व शांतिके अर्थ नांहीं ।

भावार्थ—मिथ्यात्वसेवन करि कोऊ शांति मानै सो मिथ्यात्वकरि शांति न होय है उलटा विघ्न होय है ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

क्षेत्रस्वभावतो घोरा, निरन्ता दुःसहाश्चिरम् ।
विविधा दुर्वचाः श्वभ्रे, कायमानससंभवाः ॥ ३२ ॥
दाहवाहांकनच्छेदशीतवातादिगोचराः ।
परायत्तेषु तिर्यक्षु, विवेकरहितात्मसु ॥ ३३ ॥
दैनदारिद्रयदौर्भाग्य, रोगशोकपुरःसराः ।
आर्यम्लेच्छप्रकारेषु, मानुषेषु निरन्तराः ॥ ३४ ॥
स्वस्य हानिं परस्पर्द्धिमीक्षमाणेषु मानिषु ।
योज्यमानेषु देवेषु, हठतः प्रेष्यकर्मणि ॥ ३५ ॥
मिथ्यात्वेन दुरन्तेन, विधीयन्ते शरीरिणाम् ।
वेदना दुःसहा भीमा, वैरिणेव दुरात्मना ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्षेत्रके स्वभाव करि भयानक अर अन्तरहित दुःख करि सहे जाय ऐसे नानाप्रकार दुर्वचनतें उपजी वा शरीर मनतें उपजी बहुत कालपर्यन्त नरकविषें जे दुःखवेदना होते, बहुरि विवेकरहित पराधीन तिर्यंचयोनिमें दाहदेना बांधना चिह्न करना शीत वात इत्यादिकतें उपजी पीड़ा, बहुरि आर्यम्लेच्छ है भेद जिनके ऐसे मनुष्यनिविषें निरन्तर दीनपना, दारिद्रयपना, दुर्भाग्यपना, रोग, शोक आदि अनेक वेदना, बहुरि हठतें चाकरके कर्मविषें युक्त भये अर अपनी हानि अर दूसरेनकी वृद्धि देखनेतै ऐसे मानी देवनिविषें दुःख-करि सुनी जाय ऐसी भयानक वेदना दुष्ट वैरीकी ज्यों दूर है अन्त जाका ऐसा जो मिथ्यात्व ता करि जीवनिकें करिये है।

भावार्थ—चारगति सम्बन्धी दुःखनिका मूल कारण एक मिथ्यात्व है ऐसा जानना ॥ ३६ ॥

यान्यन्यान्यपि दुःखानि, संसारांभोधिवर्त्तिनाम् ।
न जातु यच्छता तानि, मिथ्यात्वेन विरम्यते ॥ ३७ ॥

अर्थ—संसारसमुद्रवर्त्ती प्राणीनिकौं और भी जो दुःख है तिनहिं देता जो मिथ्यात्व ताकरि अंतकौं प्राप्त न हूजिये है।

भावार्थ—और भी अनेक दुःखनिकौं देता मिथ्यात्व गमन न पाय है, निरंतर दुःख देय है ॥ ३७ ॥

विवेको हन्यते येन, मूढता येन जन्यते ।
मिथ्यात्वतः परं तस्मात्, दुःखदं किमु विद्यते ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिस करि विवेक हनिये है अर अचेतपना उपजाइये है, ता मिथ्यात्व सिवाय कहा और दुःख देनेवाला है? अपि तु नाहि है ॥ ३८ ॥

लब्धं जन्मफलं तेन, सार्थकं तस्य जीवितम् ।
मिथ्यात्वविषमुत्सृज्य, सम्यक्त्वं येन गृह्यते ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिस जीव करि मिथ्यात्वविषकौं त्यागिकें सम्यक्त्वकौं ग्रहण करिये है, तिस जीव करि जन्मका फल पाया, अर ताका जीवना सार्थक है प्रयोजन सहित है ॥ ३९ ॥

भव्यः पंचेन्द्रियः पूर्णो, लब्धकालादिलब्धिकः।
पुद्गलार्द्धपरावर्त्ते काले, शेषे स्थिते सति ॥ ४० ॥
अंतर्मुहूर्त्तकालेन, निर्मलीकृतमानसः।
आद्यं गृह्णाति सम्यक्त्वं, कर्मणां प्रशमे सति ॥ ४१ ॥

अर्थ—भव्यजीव पंचेन्द्रिय पर्याप्तक अर पाई है कालादिलब्धि जानें अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल बाकी रहे संतें अंतर्मुहूर्त्त काल करि निर्मल किया है मन जानें ऐसो जीव कर्मनिका उपशम होतेसंतें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकौं ग्रहण करै है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

निशीथं वासरस्येव, निर्मलस्य मलीमसम्।
पश्चादायाति मिथ्यात्वं, सम्यक्त्वस्यास्य निश्चितम् ॥४२॥

अर्थ—जैसें निर्मल दिनके पाछें अवश्य मलिन रात्रि आवै है तैसें इस प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्त्त पाछें अवश्य मिथ्यात्व आवै है ॥ ४२ ॥

तस्य प्रपद्यते पश्चान्महात्मा कोऽपि वेदकम्।
तस्यापि क्षायिकं कश्चिदासन्नीभूतनिर्वृतिः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ताके पीछै महात्मा पुरुष वेदकसम्यक्त्वकौं प्राप्त होय है, अर कोई महात्मा पुरुष जाकें मुक्ति आसन्न है सो क्षायिक-सम्यक्त्वकौं प्राप्त होय है ॥ ४३ ॥

आगें सम्यक्त्व होनेका विशेष स्वरूप कहैं हैं;—

लब्धशुद्धपरीणामः, कल्मषस्थितिहानिकृत्।
अनंतगुणया शुद्धया, वर्द्धमानः क्षणे क्षणे ॥ ४४ ॥

प्रकृतीनामशस्तानामनुभागस्य खर्वकः ।
वर्द्धकः पुनरन्यासां, युक्तायुक्तविवेचकः ॥ ४५ ॥
स्थितेऽतःकोटिकोटिकस्थितिके सति कर्मणि ।
अथाप्रवृत्तिकं नाम, करणं कुरुते पुरा ॥ ४६ ॥
अपूर्वं करणं तस्मात्तस्मादप्यनिवृत्तिकम् ।
विदधाति परीणामः, शुद्धकारी क्षणे क्षणे ॥ ४७ ॥

अर्थ—पाया है विशुद्ध परिणाम जानें, बहुरि पापप्रकृतिनिकी स्थितिकी हानि करनेवाला समय समय अनन्तगुणशुद्धि करि बर्द्धमान होता सन्ता ॥ ४४ ॥

अप्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागका घटावनेवाला बहुरि अन्य प्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागकौं बढ़ावनेवाला योग्य अयोग्यका विवेकवान् ॥ ४५ ॥

ऐसा जीव अन्तः कोटाकोटी सागर प्रमाण है स्थिति जाकी ऐसे कर्मको स्थिति होतेसंतें प्रथम अधःप्रवृत्तिनाम करणकौं करै है ॥४६॥

बहुरि ता पीछें समय समय परिणामनिकी शुद्धि करता अपूर्वकरण करै है ता पीछें अनिवृत्तिकरणकौं करै है ॥ ४७ ॥

भावार्थ—उपशमसम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त्त पहले अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन करण होय हैं। इनका विशेष स्वरूप श्रीमद्गोमट्टसारविषें कह्या है तहांतें जानना ॥

तत्राधकरणे नास्ति, छेदः स्थित्यनुभागयोः ।
अनन्तगुणया शुद्धया, कर्म बध्नाति केवलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तहां आदिके अधःकरणविषें स्थिति अनुभागका छेद नाहीं है अनन्तगुण विशुद्धिताकरि केवल पुण्य-कर्मकौं बांधै है ॥४८॥

द्वितीयं कुरुते तत्र, किंचित्स्थितिरसक्षयम् ।
शुभानामशुभानां च, वर्द्धयन् ह्रासयन् रसम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—बहुरि तहां दूजा जो अपूर्वकरण है सो किछू स्थिति-कांडक घात वा अनुभागकांडक घातकौं करै है। कैसा है सो अपूर्व-करण अतिशयकरि समय समय प्रति शुभ प्रकृतिनकौं बढ़ावै है अर अशुभ प्रकृतिनकूं घटावै है ॥ ४९ ॥

अन्तर्मुहूर्त्तकः कालस्तेषां प्रत्येकमिष्यते।
आदिमे कुरुते तस्मिन्नांतरं करणं परम् ॥ ५० ॥

अर्थ—उनमें प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त्तकाल जानना, जामें आदिके प्रथममें आन्तर करणकौं करै है ॥ ५० ॥

आन्तरे करणे तत्र, सहानन्तानुबंधिभिः।
अन्तर्मुहूर्त्तकालेन, मिथ्यात्वमपवर्तते ॥ ५१ ॥

अर्थ—तिस अन्तर करणविषैं अन्तर्मुहूर्त्तकालकरि अनंतानुबंधी सहित मिथ्यात्वका अपवर्तन करै है ॥ ५१ ॥

मिथ्यात्वं भिद्यते भेदैः, शुद्धाशुद्धविमिश्रकैः।
ततः सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वनामभिः ॥ ५२ ॥

अर्थ—ताके अन्तर शुद्ध अशुद्ध करि मिले जे सम्यक्त्व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व हैं नाम जिनके ऐसे भेदनि करि मिथ्यात्व भेदरूप कीजिए है।

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्व करि मिथ्यात्वका द्रव्य मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृतिरूप परिणमवै है ॥ ५२ ॥

प्रशमय्य ततो भव्यः, कर्मप्रकृतिसप्तकम्।
आन्तर्मौहूर्तिकं पूर्वं, सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते ॥ ५३ ॥

अर्थ—ताके अनंतर भव्यजीव सात कर्मप्रकृतिनिकौं उपशमाय-करि अन्तर्मुहूर्त्त है स्थिति जाकी ऐसा प्रथमसम्यक्त्वकौं प्राप्त होय है।

भावार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टितौ मिथ्यात्व अर अनंतानुबन्धी

चतुष्क ऐसे पांच प्रकृतिनको अर मिथ्यादृष्टि अनंतानुबन्धी सहित तीन प्रकृतिनकौं उपशमाय सम्यक्त्वी होय है यह विशेष है ॥५३॥

आगैं क्षायिकसम्यक्त्वकौं कहै हैं:—

क्षपयित्वा परः कश्चित्कर्मप्रकृतिसप्तकम् ।
आदत्ते क्षायिकं पूर्वं, सम्यक्त्वं मुक्तिकारणम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—बहुरि दूजो कोई जीव कर्मप्रकृतिनिका सप्तक जो अनंतानुबन्धी च्यार कषाय अर मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृतिनिकौं खिपाय करि प्रथम मुक्तिका कारण जो क्षायिकसम्यक्त्व ताहि ग्रहण करै है ॥ ५४ ॥

प्रशमे कर्मणां षण्णामुदयस्य क्षये सति ।
आदत्ते वेदकं वंद्यं, सम्यक्त्वस्योदये सति ॥ ५५ ॥

अर्थ—अनंतानुबन्धी कषाय च्यारि अर मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व इन छह कर्मनिका उपशम होतसंतै अर उदयका क्षय होतसंतै अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होतसन्तैं वंदनेयोग्य जो वेदक सम्यक्त्व ताहि ग्रहण करै है ।

भावार्थ—वर्त्तमानमें उदय आवनेयोग्य निषेकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा तो क्षय हो, तैं सन्तैं अर ता पीछैं उदय आवने योग्य निषेकते उदीरणारूप होय वर्तमानमें उदय न आवैं ऐसैं तिनकी सत्ता है लक्षण जाका ऐसा उपशम अर सम्यक्त्वप्रकृति देशघाती है ताका उदय होतैं वेदकसम्यक्त्व होय है जातैं जाके उदयसैं मल उपजै अर गुणका अंश भी बन्या रहै ऐसा देशघातीका लक्षण सर्वत्र कह्या है ॥ ५५ ॥

आदिमं त्रितयं हित्वा, गुणेषु सकलेष्वपि ।
सम्यक्त्वं क्षायिकं ज्ञेयं, मोक्षलक्ष्मीसमर्पकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—आदिके मिथ्यात्व सासादन मिश्र ए तीन गुणस्थाननिकौं छोड़करि सर्व ही गुणस्थाननिविषैं मोक्षलक्ष्मीका देनेवाला क्षायिक सम्यक्त्व जानना ॥ ५६ ॥

तुर्यादारभ्य विज्ञेयमुपशांतांतमादिमम् ।
चतुर्थे पंचमे षष्ठे, सप्तमे वेदकं पुनः ॥ ५७ ॥

अर्थ—चौथे गुणस्थानतैं लगाय उपशांतकषाय पर्यंत आदिका उपशमसम्यक्त्व जानना । बहुरि चौथे पांचवें छठे सातवें गुणस्थान विष वेदकसम्यक्त्व जानना ॥ ५७ ॥

साध्यसाधनभेदेन, द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते ।
कथ्यते क्षायिकं साध्यं, साधनं, द्वितयं परम् ॥ ५८ ॥
प्रथमायां त्रयं पृथ्व्यामन्यासु क्षायिकं विना ।
सम्यक्त्वमुच्यते सद्भिर्भवभ्रमणसूदनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—साध्य साधनके भेद करि दोय प्रकार सम्यक्त्व कहिये है, क्षायिक साधने योग्य है अर उपशम वेदक ये दोष साधन हैं ॥ ५८ ॥

प्रथम पृथ्वीविषें संसारभ्रमणके नाशक तीनों सम्यक्त्व हैं अर छह पृथ्वीनविषैं क्षायिक विना दोय सम्यक्त्व पंडितनि करि कहिए हैं ॥५९॥

तिर्यङ्मानवदेवानां, सम्यक्त्वं त्रितयं मतम् ।
न नीलिंपीतिरश्चीनां, क्षायिकं विद्यते परम् ॥ ६० ॥

अर्थ—तिर्यंच मनुष्य देवनिकैं तीनों ही सम्यक्त्व कहे हैं, अर देवांगना तिर्यंचनीनिकै एक क्षायिक सम्यक्त्व नाहीं है ॥ ६० ॥

क्षायोपशमिकस्योक्ताः, षट्षष्टिर्जलराशयः ।
आंतर्मौहूर्त्तिकी ज्ञेया, प्रथमस्य परा स्थितिः ॥ ६१ ॥

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छयासठि सागरकी कहीं, अर उपशम सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी जाननी ॥ ६१ ॥

पूर्वकोटिद्वयोपेतास्त्रयस्त्रिंशन्नदीशिनः ।
ईषदूनास्थितिर्ज्ञेया, क्षायिकस्योत्तमा बुधैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—किंचित् ऊन दोय कोटि पूर्वसहित तेतीस सागरकी क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति पंडितनि करि जाननी योग्य है ॥ ६२ ॥

अधस्तात् श्वभ्रभूषट्के, सर्वत्र प्रमदाजने ।
निकायत्रितयेऽपूर्णे, जायते न सुदर्शनः ॥ ६३ ॥

अर्थ—नीचैं तैं लेकरि छह नरकनिविषैं, सर्वत्र स्त्रीन विषैं अर ज्योतिषी भवनवासी व्यन्तर इन तीन निकाय देवनिविषैं अपर्याप्तमें सम्यग्दर्शन न होय है ॥ ६३ ॥

पंचाक्षं संज्ञिनं हित्वा, परेषु द्वादशस्वपि ।
उत्पद्यते न सद्दृष्टिर्मिथ्यात्वबलभाविषु ॥ ६४ ॥

अर्थ—पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त, इनि दोय जीवसमासनिकों वार्जिकरि और मिथ्यात्वके बलकरि उपजनेवाले जे बादर एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय वे इंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय अर असंज्ञी पंचेंद्रिय तिनके पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसैं बारह जीवसमासनि विषैं सम्यग्दृष्टि न उपजे है ॥ ६४ ॥

वीतरागं सरागं च सम्यक्त्वं कथितं द्विधा ।
विरागं क्षायिकं तत्र, सरागमपरं द्वयम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—वीतराग अर सराग ऐसैं सम्यक्त्व दोय प्रकार कह्या है। तहां क्षायिक सम्यक्त्व वीतराग है, अर क्षयोपशम, उपशम ए दोय सम्यक्त्व सराग हैं ॥ ६५ ॥

संवेगप्रशमास्तिक्यकारुण्यव्यक्तलक्षणम् ।
सरागं पटुभिर्ज्ञेयमुपेक्षालक्षणं परम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—संवेग कहिये धर्मतैं अनुराग, प्रशम कहिये कषायनिकी

मंदता, आस्तिक्य कहिये आप्त आगम पदार्थनिविषैं 'है ऐसे ही है' ऐसा भाव, कारुण्य कहिये दयाभाव, ए हैं प्रगट लक्षण जाका सो सराग सम्यक्त्व पंडितनिकरि जानना। बहुरि उपेक्षा जो वीतरागता, सो है लक्षण जाका ऐसा दूसरा वीतराग सम्यक्त्व जानना ॥ ६६ ॥

निसर्गाधिगमौ हेतू, तस्य बाह्यावुदाहृतौ।
लब्धिः कर्मशमादीनामंतरंगो विधीयते ॥ ६७ ॥

अर्थ—ता सम्यक्त्वके निसर्ग कहिए स्वभाव, अधिगम कहिए उपदेश पावना ये दोऊ बाह्य कारण कहे हैं, अर कर्मनिके उपशमादिकनिकी जो प्राप्ति सो अंतरंग कारण कहिये हैं ॥ ६७ ॥

सम्यक्त्वाध्युषिते जीवे, नाज्ञानं व्यवतिष्ठते।
भास्वता भासिते देशे, तमसः कीदृशी स्थितिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वकरि सहित जीव विषैं अज्ञान न तिष्ठै है, जैसैं सूर्यकरि प्रकाशित्त क्षेत्रविषैं अंधकार स्थिति कैसी ?।

भावार्थ—जैसैं सूर्यके प्रकाश होते अंधकार न होय तैसैं सम्यक्त्व होत अज्ञान न होय है ॥ ३८ ॥

न दुःखबीजं शुभदर्शनक्षितौ, कदाचन क्षिप्तमपि प्ररोहति।
सदाप्यनुप्तं सुखबीजमुत्तमं, कुदर्शने तद्विपरीतमिष्यते ॥ ६९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनरूप पृथ्वीविषैं दुःखका बीज बोया भी कदाचित न उगै है बहुरि विना बोया भी उत्तम सुखका बीज सदा उगै है। बहुरि मिथ्यादर्शनविषैं सो विपरीत देखिये है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिकैं कोई दुःखका कारण पाप कर्म बंध्या होय तो सोभी सुखका कारण होय परिणमै है ऐसा जानना ॥६९॥

सम्यक्त्वमेघः कुशलांबुनंदितं, निरंतरं वर्षति धौतकल्मषः।
मिथ्यात्वमेघो व्यसनांबुनिंदितं, जनावनौ क्षालितपुण्यसंचयः ॥७०॥

अर्थ—धोये हैं पापरूप मल जाने ऐसा सम्यक्त्वरूप मेघ है सो निरन्तर जनरूप भूमिविषैं पूजनिक कल्याणरूप जलकौं बरसै है। बहुरि मिथ्यात्वरूप मेघ, धोया है दूरि किया है पुण्यका संचय जानैं सो जनरूप भूमिविषै निंदनीक कष्टरूप जलकौं बरसै है॥ ७० ॥

न भीषणो दोषगणः सुदर्शने, विगर्हणीयः स्थिरतां प्रपद्यते।
भुजंगमानां निवहोऽवतिष्ठते, कदा निवासेऽध्युषिते गरुत्मता ॥७१॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनके होतसन्तैं भयानक निन्दने योग्य जो दोषनिका समूह सो स्थिरताकौं न प्राप्त होय है। जैसैं गरुडकरि सहित जो स्थान ताविषैं सर्पनका समूह कब तिष्ठै?

भावार्थ—सम्यग्दर्शन होतैं मिथ्यात्वादि दोष न रहै हैं, ऐसा जानना ॥ ७१ ॥

विवर्द्धमाना यमसंयमादयः, पवित्रसम्यक्त्वगुणेन सर्वदा।
फलन्ति हृद्यानि फलानि पादपाः, घनोदकेनेव मलापहारिणा ॥७२॥

अर्थ—जैसैं मलका हरणेवाला जो मेघका जल ताकरि वृक्ष हैं ते मनोहर फलनिकौं फलैं हैं, तैसैं विशेषपने वर्द्धमान जे यमसंयमादिक ते पवित्र सम्यक्त्वगुण करि सदा फलैं हैं ॥ ७२ ॥

निषेवते यो विषयाभिलाषुको, निरस्य सम्यक्त्वमधीः कुदर्शनम्।
स राज्यमत्यस्य भुजिष्यतां स्फुटं, बृहत्त्वकांक्षी वृणुते दुराशयः ॥७३॥

अर्थ—जो विषयाभिलाषी अज्ञानी सम्यक्त्वकौं त्यागि करि मिथ्यादर्शनकौं सेवै है सो दुष्टचित्त बड़प्पनका वांछक प्रगट राज्यकौं छोडि करि चाकरीकौं अंगीकार करै है ॥ ७३ ॥

आगैं संवेगादिक सम्यक्त्वके आठ गुण कहै हैं—

तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रपंचे, देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते।
साधौ सर्वग्रंथसंदर्भहीने, संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ ७४ ॥

अर्थ—नष्ट भया है हिंसाका विस्तार जा विषैं ऐसा जो सांचा-धर्म ताविषैं तथा रागद्वेषमोहादि करि रहित देवविषैं तथा सर्व परिग्रहसमूह करि रहित साधुविषैं जो निश्चल अनुराग सो संवेग कह्या है ॥ ७४ ॥

देहे भोगे निंदिते जन्मवासे, कृष्टेष्वाशुक्षिप्तवाणास्थिरत्वे।
यद्वैराग्यं जायते निःप्रकंपं, निर्वेदोऽसौ कथ्यते मुक्तिहेतुः ॥ ७५ ॥

अर्थ—निंदित शरीरविषैं तथा भोगविष बहुरि शीघ्र चाल्या जो वाण ता समान है अस्थिरपना जा विषैं ऐसे क्लेशरूप संसारवासविषैं जो निश्चल वैराग्य उपजै है सो यहु मुक्तिका कारण निर्वेद कहिये है ॥ ७५ ॥

कांतापुत्रभ्रातृमित्रादिहेतोः, शिष्टद्विष्टे निर्मिते कार्यजाते।
पश्चात्तापो यो विरक्तस्य पुंसो, निंदा सोक्ताऽवद्यवृक्षस्य हंत्री ॥७६॥

अर्थ—स्त्री पुत्र भाई मित्र आदिके कारणतैं रागद्वेषरूप कार्यनिके समूहकौं रचे संतैं जो विरक्त पुरुषके पश्चात्ताप होय सो पापवृक्षकी नाश करनेवाली निन्दा कही है ॥ ७६ ॥

जाते द्वेषे द्वेषरागादिदोषे-रग्रे भक्त्या लोचना या गुरूणां।
पंचाचाराचारकाणामदोषा, सोक्ता गर्हा गर्हणीयस्य हंत्री ॥ ७७ ॥

अर्थ—द्वेष राग आदि दोषनिकरि दोष उपजते संतैं पंचाचारके आचरण करावनेवाले जे गुरु तिनके आगैं भक्ति सहित जो आलोचना करिये अपने दोष कहिये सो निंदनीक पापके हरनेवाली दोष रहित गर्हा कही है ॥ ७७ ॥

रागद्वेषक्रोधलोभप्रपंचाः, सर्वानर्थाधारभूता दुरंताः।
यस्य स्वांते कुर्वते न स्थिरत्वं, शांतात्मासौ शस्यते मत्र्यसिंहः ॥७८॥

अर्थ—सर्व अनर्थनिका धरस्थान, दूर है अन्त जिनका ऐसे

जे राग द्वेष क्रोध लोभादिकनिके प्रपंच हैं ते जाके चित्तविषैं स्थिरताकौं न करैं हैं सो यहु भव्य प्रधान, शांत है आत्मा जाका ऐसा प्रशंसा रूप कीजिए हैं।

भावार्थ—तीव्र रागद्वेष जाके मनमें न होय सो उपशम गुण कहिये ॥ ७८ ॥

लोकाधीशाभ्यर्चनीयांघ्रिपद्मे, तीर्थाधीशे साधुवर्गे सपर्या।
या निर्व्याजाऽऽरभ्यते भव्यलोकैर्भक्तिः सेष्टा जन्मकांतारशस्त्री॥७९॥

अर्थ—लोकनिके अधीश जे नरेन्द्र नागेन्द्र देवेन्द्र तिनकरि पूजनीक हैं चरण कमल जाके, ऐसे तीर्थनाथ भए भगवान तिन विषैं तथा साधुनिके समूहविषैं भव्य जीवनकरि जो कपटरहित पूजा आरंभिये है सो संसारवनके छेदनेवाली भक्ति इष्टरूप कही है॥७९॥

कर्मारण्यं छेत्तुकामैरकामैर्धर्माधारे, व्यापृतिः प्राणिवर्गे।
भैषज्याद्यैः प्रासुकैर्वर्द्ध्यते या, तद्वात्सल्यं कथ्यते तथ्यबोधैः॥८०॥

अर्थ—कर्मवनके छेदनेके वांछक, वांछकारहित ऐसे पुरुषनि करि धर्मके आधारभूत जीवनिके समूहविषैं जो प्रासुक औषधि आदिकनिकरि वैयावृत्य बढ़ाइये, करिए सो सत्यार्थज्ञानीनि करि वात्सल्यगुण कहिये हैं॥ ८० ॥

जन्मांभोधौ कर्मणा भ्रम्यमाणे, जीवग्रामे दुःखिते नैकभेदे।
चित्तार्द्रत्वं यद्विधत्ते महात्मा, तत्कारुण्यं दर्श्यते दर्शनीयैः॥ ८१ ॥

अर्थ—संसारसमुद्रविषैं कर्मकरि भ्रमता अर दुःखित ऐसा अनेक प्रकार जो जीवनिका समूह ताविषैं जो महापुरुष दयाभावकौं धारै है सो कारुण्यभाव दर्शन करने योग्य जे आचार्यादिक तिन करि दिखाइये है।

भावार्थ—संसारी जीवनिकौं देखि जो करुणा करना सो करुणा-नाम सम्यक्त्व गुण कहिये हैं॥ ८१ ॥

ऐसैं सम्यक्त्वके आठ गुणनिका वर्णन किया, अब तिनका फल दिखावैं हैं—

प्रवर्द्धयते दर्शनमष्टभिर्गुणैः, शरीरिणोऽमीभिरपास्तदूषणैः।
गुरुपदेशैरिव धर्मवेदनं, विधीयमानैर्हृदये निरन्तरम् ॥ ८२ ॥

अर्थ—जैसे निरन्तर हृदयविषैं रचेभये जे श्रीगुरुनके उपदेश तिनकरि धर्मका जानपणा बढ़ै है तैसैं जीवकैं दूषणरहित ये संवेगादि आठ गुण तिनकरि सम्यग्दर्शन बढ़ै है ॥ ८२ ॥

अपारसंसारसमुद्रतारकं, वशीकृतं येन सुदर्शनं परम्।
वशीकृतास्तेन जनेन संपदः, परैरलभ्या विपदामनास्पदम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—अपार संसार समुद्रका तारनेवाला अर विपदानिका अनास्पद कहिये ठिकाना नाहीं ऐसा एक सम्यग्दर्शन जानैं वश किया, अङ्गीकार किया ता पुरुषकरि औरनि करि न पावने योग्य ऐसी संपदा वश करी ॥ ८३ ॥

सुदर्शने लब्धमहोदये गुणाः, श्रियो निवासा विकसंति देहिनि।
निरस्तदोषोपचये सरोवरे, हिमेतरांशाविव पंकजाकराः ॥ ८४ ॥

अर्थ—पाया है महाउदय जानैं ऐसे सम्यग्दर्शनके होतसंतैं जीवविषैं लक्ष्मीके निवास जे गुण ते विकासमान होय हैं, कैसा है सम्यग्दर्शन, निरस्तदोषोपचये कहिये दूरि किया है शोकादि दोषनिका समूह जानैं। जैसैं सरोवरविष दूरि किया है दोषा जो रात्रि ताका समूह जानैं अर पाया है महा उदय जानैं अर भला है दर्शन जाका ऐसा सूर्यके होतसंतैं कमलनिके वन लक्ष्मीके निवास हैं ते विकसैं हैं।

भावार्थ—लोक कहै हैं लक्ष्मी कमलनिविषैं वसै है ऐसा अलँकार वाक्य है। इहां एक एक सूर्यपक्षविषैं अर दर्शनपक्षविषैं समान अर्थ होय है ॥ ८४ ॥

दर्शनबन्धोर्नपरो बन्धुर्दर्शनलाभान्न परो लाभः।
दर्शनमित्रान्न परं मित्रं, दर्शनसौख्यान्न परं सौख्यं ॥ ८५ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनरूप बांधवतैं सिवाय और दूसरा बांधव नाहीं अर दर्शनके लाभतैं सिवाय और दूसरा लाभ नाहीं, अर दर्शनतैं सिवाय दूसरा मित्र नाहीं, अर दर्शनके सुखतैं सिवाय और दूसरा सुख नाहीं ॥ ८५ ॥

लब्धा मुहूर्तमपि ये परिवर्जयंते, सम्यक्त्वरत्नमनवद्यपदप्रदायि।
भ्राम्यंति तेऽपि न चिरं भववारिराशौ,
तद्बिभ्रतां चिरतरं किमिहास्ति वाच्यम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—पापरहित पदका देनेवाला जो सम्यक्त्वरत्न ताहि एक मुहूर्त भी पायकरि जो त्यागे है ते पुरुष भी संसार-समुद्रविषैं बहुत काल नहीं भ्रमै है तो इहां तौ सम्यग्दर्शनकौं धारते पुरुषनिके कहा अतिशयकरि बहुत भ्रमण कहना योग्य है ?

भावार्थ—एक मुहूर्त भी सम्यग्दर्शन ग्रहण हो जाय तो संसार उत्कृष्ट किंचिदून अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनमात्र रहि जाय सो अनंतानंतकाल अपेक्षा थोड़ा ही कहिये। बहुरि जो सम्यग्दर्शनतैं नहीं छूटै क्षायिक सम्यग्दृष्टि होय सो बहुत कैसैं भ्रमै ? याकैं तौ अतिनिकट संसार है ऐसा इहां आशय जानना ॥ ८६ ॥

पापं यदर्जितमनेकभवैर्दुरन्तैः, सम्यक्त्वमेतदखिलं सहसा हिनस्ति।
भस्मीकरोति सहसा तृणकाष्ठराशिं, किं नोर्जितोज्वलशिखो दहनः समृद्धम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—जो पाप दूर है अन्त जिनका ऐसे अनेक भवनिकरि उपार्ज्या सो इस समस्त पापकौं सम्यक्त्व शीघ्र ही नाश करै है। इहां दृष्टांत कहैं हैं—बड़ी उज्ज्वल है शिखा जाकी ऐसा जो अग्नि सो

वृद्धिकों प्राप्त होता जो तृण अर काष्ठनका समूह ताहि शीघ्र ही कहा भस्म न करै है ? करै ही है ॥ ८७ ॥

नैवं भवस्थितिवेदिनि जीवे, दर्शनशालिनि तिष्ठति दुःखम् ।
कुत्र हिमस्थितिरस्ति हि देशे, ग्रीष्मदिवाकरदीधितिदीप्ते ॥ ८८ ॥

अर्थ—संसारकी स्थितिका जाननेवाला अर सम्यग्दर्शनकरि शोभित ऐसा जो जीव ताविषैं दुःख नहीं तिष्ठै है । जैसैं ग्रीष्मके सूर्यकी किरणकरि तप्त जो क्षेत्र ता विषैं शीतकी स्थिति कहांतैं होय ? अपितु नाहीं होय है ॥ ८८ ॥

भुवनजनताजन्मोत्पत्ति[1]प्रबंधनिषूदनी, जिनमतरुचिश्चिंतामण्या यकैरुपमीयते । त्रिदशसरणिं ते भाषंते समां परमाणुना, प्रभवति मतिर्मिथ्या मिथ्यादशामथ वा सदा ॥ ८९ ॥

अर्थ—लोकके जीवनिकैं संसारकी उत्पत्तिके प्रबंधकी नाश करनेवाली ऐसी जो जिनमतकी रुचि श्रद्धा सो जिनिकरि चिंतामणिकरि उपमा दीजिये (जिनमतकी श्रद्धाकों चिंतामणिकी उपमा देय हैं) ते आकाशकों परमाणुके समान कहै हैं । अथवा मिथ्यादृष्टिकी बुद्धि सदा मिथ्यारूप होय ही है ताका कहा आश्चर्य है ? ॥ ८९ ॥

अवहितनाः सद्मोत्संगं निधानमिवोत्तमं, नयति हृदयं यः सम्यक्त्वं शशांककरोज्वलम् । अमितगयः क्षिप्रं लक्ष्म्यः श्रयंति तमादता, निरुपमगुणाः कांतं कांतं स्वयं प्रमदा इव ॥ ९० ॥

अर्थ—जैसें एकाग्र है मन जाका ऐसा पुरुष घरके मध्यभाग प्रति निधानकों प्राप्त करै तैसें जो हृदय प्रति चन्द्रमाकी किरण समान उज्ज्वल सम्यक्त्वकों प्राप्त करै है, ता पुरुषकों जैसे सुन्दर पतिकों

१—' जन्मोत्पत्ति ' के स्थान पर नष्टोत्पत्ति, पाठ ठीक है ।

आदर सहित स्त्री हैं ते स्वयमेव शीघ्र ही सेवै है तैसैं उपमा रहित हैं गुण जिनके अर प्रमाण है ज्ञानदर्शन जिन विषैं ऐसी आदर सहित इंद्रादिपदकी लक्ष्मी स्वयमेव सेवै है ॥ ९० ॥

विपरीताभिनिवेश तजि, भजि निर्मल श्रद्धान ।
याके धारक अमितगति, लहत सकल कल्यान ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
द्वितीय परिच्छेद समाप्त भया।
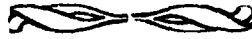
तृतीय परिच्छेद ।

आगैं सम्यग्दर्शनके विषय जे जीवादिक पदार्थ तिनिका वर्णन करैं हैं,—

जीवाजीवादितत्वानि, ज्ञातव्यानि मनीषिणा ।
श्रद्धानं कुर्वता तेषु, सम्यग्दर्शनधारिणा ॥ १ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनका धारनेवाला अर तीन जीवादिकनिविषैं श्रद्धानकौं करता ऐसा जो पंडितपुरुष ताकरि जीव अजीव आदि तत्व हैं ते जानने योग्य हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकी निर्मलताके अर्थ जीवादि पदार्थ विस्तार-सहित जानने योग्य हैं ॥ १ ॥

तत्र जीवा द्विधा ज्ञेया, मुक्तसंसारिभेदतः ।
अनादिनिधनाः सर्वे, ज्ञानदर्शनलक्षणाः ॥ २ ॥

अर्थ—तहां जीव हैं ते मुक्त अर संसारी भेदकरि दोय प्रकार जानना । कैसे हैं जीव आदि, अंत रहित हैं अर सर्व ही ज्ञानदर्शन लक्षण जिनके ऐसे हैं ।

भावार्थ—द्रव्यार्थिक नय करि जीव अनादिनिधन है अर एकेंद्रियतैं लगाय सिद्ध भगवानपर्यंत सामान्य ज्ञानदर्शन विना कोई भी जीव नाहीं । ऐसा जानना ॥ २ ॥

तत्र क्षताष्टकर्माणः, प्राप्ताष्टगुणसंपदः ।
त्रिलोकवेदिनो मुक्ता, स्त्रिलोकाग्रनिवासिनः ॥ ३ ॥

अनंतरेषदूनांगसमानाकृतयः स्थिराः ।
आत्मनीनजनाभ्यर्च्या, भाविनं कालमासते ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां नष्ट भए हैं अष्ट कर्म जिनके अर प्राप्त भई है अष्टगुण रूप संपदा जिनके, बहुरि तीन लोकके जाननेवाले अर द्रव्यभावकर्मनिनैं मुक्त भए, बहुरि तीन लोकके ऊपरि बसनेवाले ॥३॥

बहुरि अंतका किंचित् ऊन अंग प्रमाण है प्रदेशनिकी आकृति जिनकी, अर स्थिर हैं कंपरहित हैं, बहुरि आत्मज्ञानी जननि करि पूजनीक, ऐसे श्री सिद्धभगवान आगामी अनंतकाल तिष्ठें हैं ॥ ४ ॥

संसारिणो द्विधा जीवाः, स्थावराः कथितास्त्रसाः ।
द्वितीयेऽपि प्रजायंते, पूर्णापूर्णतया द्विधा ॥ ५ ॥

अर्थ—संसारी जीव स्थावरअर त्रस ऐसैं दोय प्रकार कहे हैं, तिन स्थावर अर त्रसनि विषैं भी पर्याप्त अपर्याप्तनें करि दोयप्रकार हैं ॥५॥

आहारविग्रहाक्षाऽऽनवचोमानसलक्षणम् ।
पर्याप्तीनां मतं षट्कं, पूर्णापूर्णत्वकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, वचन और मन ये हैं लक्षण जाके ऐसा जो पर्याप्तिनिका षट्क सो पर्याप्त अपर्याप्तपनेंका कारण कह्या है ।

भावार्थ—अपने योग्य पर्याप्तिकी जाकै पूर्णता है सो पर्याप्त जीव कहिये, जाकैं पूर्णता नाहीं सो अपर्याप्त कहिये ॥ ६ ॥

चतस्रः पंच षट् ज्ञेयास्तेषां, पर्याप्तयोऽङ्गिनाम्।
एकाक्षविकलाक्षाणां, पंचाक्षाणां यथाक्रमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—तिन पर्याप्ति सहित एकेंद्रिय विकलेंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिकैं चार, पांच, छह पर्याप्ति यथाक्रम जाननी।

भावार्थ—एकेन्द्रियकैं मन, वचन विना च्यार पर्याप्ति है, विकलत्रय असैनीके पांच पर्याप्ति है, पंचेन्द्रिय सैनीके वचन मन सहित छह हैं, ऐसा जानना ॥ ७ ॥

एकाक्षाः स्थावरा जीवाः, पंचधा परिकीर्तिताः।
पृथिवी सलिलं तेजो, मारुतं च वनस्पतिः ॥ ८ ॥

अथ—पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ पवन ४ अर वनस्पति ५ ऐसे पंचेन्द्रिय स्थावर जीव पांच प्रकार कहे हैं ॥ ८ ॥

भेदास्तत्र त्रयः पृथ्व्याः, कायकायिकतद्भवाः।
निर्मुक्तस्वीकृतागामि, स्वा एव परेष्वपि ॥ ९ ॥

अर्थ—तहां पृथ्वीके भेद तीन हैं—पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक, पृथ्वीजीव, ऐसें। तहां जीवनें शरीर त्यागि दिया सो तो पृथ्वीकाय है, अर जो शरीर जीवनै ग्रहण किया सो पृथ्वीकायिक है, अर जो जीव पृथ्वीकायिक होनेवाला है सो अन्तरालमें पृथ्वी जीव है याही प्रकार जलादिविषें भी जानना ॥ ९ ॥

मता द्वित्रिचतुःपंचहृषीकास्त्रसकायिकाः।
पंचाक्षा द्विविधास्तत्र, संज्ञ्यसंज्ञिविकल्पतः ॥ १० ॥

अर्थ—द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेन्द्रिय जीव हैं ते त्रसकायिक कहे हैं। तहां पंचेंद्रिय हैं ते संज्ञी असंज्ञी भेद करि दोय प्रकार हैं ॥ १० ॥

शिक्षोपदेशनालापग्राहिणः संज्ञिनो मताः ।
प्रवृत्तमानसप्राणा, विपरीतास्त्वसंज्ञिनः ॥ ११ ॥

अर्थ—शिक्षा उपदेश आलाप इनके ग्रहण करनेवाले, प्रवर्त्या है मन जिनकैं, ऐसे जीव हैं ते संज्ञी कहे हैं। बहुरि विपरीत हैं ते असंज्ञी हैं ऐसा जानना ॥ ११ ॥

स्पर्शनं रसनं घ्राणं, चक्षुः श्रोत्रमितींद्रियम् ।
तस्य स्पर्शो रसो गन्धो, रूपं शब्दश्च गोचरः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्पर्शन, रसन, घ्राण, नेत्र, श्रोत्र, ऐसैं पांच इन्द्रिय हैं। बहुरि तिनिका स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द, विषय है ॥ १२ ॥

गन्डूपदजलूकाक्षकृमिशंखेंद्रगोपकाः ।
गदिता विविधाकारा, द्विहृषीकाः शरीरिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—गिंडोला, जौंक, कौडी, कृमि, शंख, इन्द्रगोप ये नाना प्रकार हैं आकार जिनके ऐसे द्वींद्रिय जीव कहे हैं ॥ १३ ॥

यूकापिपीलिकालिक्षाकुन्थुमत्कुणवृश्चिकम् ।
त्रिहृषीकं मतं प्राज्ञै, र्विचित्राकारसंयुतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जूवां, कीड़ी, लीख, कुन्थुवा, खटमल, विच्छू ये बुद्धिवाननि करि नानाप्रकार संयुक्त त्रींद्रिय कहे हैं ॥ १४ ॥

पतंगमक्षिकादंशमशभ्रमरादयः ।
चतुरक्षा विबोद्धव्या, विबुद्धजिनशासनैः ॥ १५ ॥

अर्थ—विशेषपणैं जाण्या है जिन शासन जिननैं ऐसे पुरुषनि करि पतंग, माखी, दंश, मच्छर, भ्रमर आदि जीव हैं ते चतुरिंद्रिय जाननें ॥ १५ ॥

तिर्यग्योनिभवाः शेषाः, श्वाभ्रमानवनाकिनः ।
विभिन्ना विविधैर्भेदैः, स्वीकृतेंद्रियपंचकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—बाकी तिर्यंचयोनिविषैं उपजे तिर्यंच बहुरि नारकी मनुष्य देव हैं ते नानाभेदनि करि भिन्न ग्रहण किये हैं पंच इंद्रिय जिननैं ऐसैं जानना।

भावार्थ—एकेंद्रिय विकलेंद्रियविना और सर्व ही तिर्यंच अर नारकी मनुष्य देव ये सब पंचेंद्रिय जानना ॥ १६ ॥

हृषीकपंचकं भाषा, कायस्वांतबलत्रिकम्।
आयुरुच्छ्वासनिश्वास, द्वंद्वं प्राणादशोदिताः ॥ १७ ॥

अर्थ—इंद्रियप्राण पंच अर भाषा मन काय ऐसैं बल प्राण तीन बहुरि आयु अर उच्छ्वासनिश्वास ये दोय ऐसैं प्राण दश कहे हैं ॥ १७॥

शरीराक्षायुरुच्छ्वासा, भाषिता निखिलेष्वपि।
विकलासंज्ञिनां वाणी, पूर्णानां संज्ञिनां मनः ॥ १८ ॥

अर्थ—शरीर इन्द्रिय आयु उच्छ्वास ये च्यार प्राण सर्व ही पर्याप्तनिविषैं कहे हैं, अर विकलेन्द्रिय अर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तनिक भाषा प्राण है, अर संज्ञो पर्याप्तनिविषैं मनप्राण है ॥ १८ ॥

एकद्वित्रिचतुः पंचहृषीकाणां विभाजिताः।
तेऽन्येषां त्रिचतुष्कं च, षट्सप्तांगायुरिंद्रियैः ॥ १९ ॥

अर्थ—एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रीय पंचेंद्रिय जीवनिके भेदरूप प्राण हैं। एकेंद्रियकैं स्पर्शनइंद्रिय शरीर आयु उच्छ्वास ऐसैं च्यार, द्वीन्द्रियकैं रसनाइन्द्रिय अर वचन मिले छह, त्रींद्रियकै घ्राण अधिक सात, चतुरिंद्रियकै नेत्र अधिक आठ, असैनी पंचेन्द्रियकै श्रवण अधिक नौ, संज्ञी पंचेन्द्रियकैं मन अधिक दश; ऐसैं पर्याप्तनिकैं कहे। बहुरि ते प्राण अपर्याप्तनिविषैं एकेन्द्रियकैं स्पर्शनइंद्रिय काय आयु ऐसै तीन हैं, द्वींद्रियकै रसनासहित च्यार हैं, त्रींद्रियकै घ्राण सहित पांच हैं, चतुरिंद्रियकैं चक्षुसहित छह हैं, पंचेन्द्रियकैं श्रोत्रसहित सात हैं ऐसा जानना ॥ १९ ॥

जरायुजाण्डजा: पोता, गर्भजा देवनारका: ।
उपपादभवा: शेषा:, सर्वे सम्मूर्च्छना मता: ॥ २० ॥

अर्थ—जरायुज कहिए जालवत् प्राणीनिकै शरीर ऊपरि आवरण मांस लोहू जामें विस्ताररूप पाइए ता सहित उपजै ते जरायुज, अर अण्डाविषै उपजैं ते अण्डज, अर योनितैं निकालताही चालना आदि सामर्थ्ययुक्त उपजैं ते पोतज ये तीन प्रकार तौ गर्भज हैं, अर देव नारकी हैं ते उपपादशय्या सो है जन्म जिनका ऐसे हैं, बहुरि इनि सिवाय सर्व जीव सम्मूर्च्छनतैं है जन्म जिनका ऐसे कहे हैं ॥२०॥

श्वाभ्रसम्मूर्छिनो जीवा, भूरिपापा नपुंसका: ।
स्त्रीपुंवेदा मता देवा:, सत्रिवेदितया परे ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुत है पाप जिनके ऐसे नारकी अर सम्मूर्च्छन जीव हैं ते नपुंसक हैं; अर देव हैं ते स्त्रीवेदी, अर पुरुषवेदी हैं; अर बाकी और जीव तीनौं वेद सहित हैं ऐसा जानना ॥ २१ ॥

सचित्त: संवृत: शीत:, सेतरो वा विमिश्रक: ।
विभेदैरांतरैर्भिन्ना, नवधा योनिरंगिनाम् ॥ २२ ॥

अर्थ—सचित अर संवृत अर शीत, इनितैं इतर जो अचित्त विवृत, उष्ण, बहुरि इनकरि मिश्र कहिये सचित्ताचित्तमिश्र संवृतविवृत-मिश्र अर शीतोष्णमिश्र ऐसैं अंतर भेदनि करि, भेदरूप जीवनिकैं नव प्रकार योनि कही है । जीव जहां उपजे ऐसे पुद्गल स्कंधनिका नाम योनि है, तहां जीव सहित होय ते सचित्त है, जीव रहित अचित्त है, गुप्तरूप होय ते संवृत है, प्रगट होय ते विवृत, शीतल होय ते शीत, उष्ण होय ते उष्ण है, अर मिले होय ते मिश्र है ऐसा जानना ॥२२॥

भूरुहेषु दश ज्ञेया:, सप्त नित्यान्यधातुषु । नारकामरतिर्यक्षु, चत्वारो विकलेषु षट् ॥ २३ ॥ चतुर्दश मनुष्येषु, योनय: संति पिंडिता: । सर्वे शतसहस्राणामशीतिश्चतुरुत्तरा: ॥ २४ ॥

अर्थ—वृक्षनिके विषैं दश लक्ष योनि जाननी, अर नित्यनिगोद इतरनिगोद अर धातु कहिए पृथ्वीकाय अपकाय अग्निकाय वातकाय ये च्यारि ऐसैं छह स्थाननिविषैं सात लक्ष योनि जाननी, अर नारकी देव तिर्यंच इनि विषैं च्यारि च्यारि लक्ष योनि जाननी, विकलत्रयविषैं छह लक्ष योनि है, अर मनुष्यनि विषैं चौदह लक्ष योनि है। ऐसैं सर्व एकठी करी भई चौरासी लक्ष योनि हैं ये पूर्वोक्त सचित्तादि योनिनके विशेष भेद जानने ॥ २५ ॥

गतींद्रियवपुर्योगज्ञानवेदक्रुधादयः ।
संयमाहारभव्येक्षालेश्यासम्यक्त्वसंज्ञिनः ॥ २५ ॥

अर्थ—गति च्यारि, इंद्रिय पांच, काय छह, योग पंद्रह, ज्ञान आठ, वेद तीन, क्रोधादिक कषाय च्यार, संयम सात, आहार दोय, भव्य दोय, दर्शन च्यार, लेश्या छह, सम्यक्त्व छह, संज्ञी दोय, ऐसैं चौदह मार्गणा कही हैं ॥ २५ ॥

मार्ग्यंते सर्वदा जीवा, यासु मार्गणकोविदैः ।
सम्यक्त्वशुद्धये मार्ग्या, स्ताश्चतुर्दश मार्गणाः ॥ २६ ॥

अर्थ—विचारविषैं प्रवीण जे पुरुष तिन करि जिनविषैं जीव हैं ते सदा विचारिये हैं ते चतुर्दश मार्गणा सम्यक्त्वकी शुद्धिके अर्थ सदा विचारनी योग्य हैं ॥ २६ ॥

मिथ्यादृष्टिः सासनो मिश्रदृष्टिः, सम्यग्दृष्टिः संयतासंयताख्यः ।
ज्ञेयावन्यौ द्वौ प्रमत्ताप्रमत्तौ, सत्रापूर्वेणानिवृत्त्यल्पलोभौ ॥ २७ ॥
शांतक्षीणौ योग्ययोग्यौ जिनेन्द्रौ, द्विः सप्तैवं ते गुणस्थानभेदाः ।
त्रैलोक्याग्रारूढिसोपानमार्गा, स्तथ्यं येषु ज्ञायते जीवतत्त्वम् ॥२८॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्रदृष्टि, सम्यग्दृष्टि बहुरि संयतासंयत है नाम जाका, प्रमत्त, अप्रमत्त दोय ये जानने योग्य हैं; अर

अपूर्वकरणसहित अनिवृत्तिकरण अर सूक्ष्म लोभ अर उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोगीजिन, अयोगीजिन ऐसे गुणस्थाननिके चौदह भेद हैं, ते त्रैलोक्यका अग्र जो सिद्धपद ताके चढ़नेकूँ सोपान मार्ग हैं। जिनविषैं सांचा जीवतत्व जानिये है।

भावार्थ—मोहनीय आदि कर्मनिका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम परिणाम रूप जे अवस्था विशेष तिनकौं होत संतैं उत्पन्न भये जे भाव कहिए जीवके मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनकरि जीव हैं ते "गुण्यंते" कहिए लखिए वा देखिए व लक्षित कहिए; ते जीवके परिणाम गुणस्थान संज्ञाके धारक हैं। तहां मिथ्या कहिये अतत्त्वमें है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकैं सो मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आसादन जो विराधन ता सहित वर्त्त सो सासादन है सम्यग्दृष्टि जाकैं सो सासादन सम्यग्दृष्टि है अथवा आसादन कहिए सम्यक्त्वका विराधन ता सहित जो वर्तमान सो सासादन सम्यग्दृष्टि है, बहुरि पूर्वै भया था सम्यक्त्व तिस न्याय करि इहां सम्यग्दृष्टिपना जानना। बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वका मिलाप भाव सो मिश्र है। बहुरि सम्यक् कहिये समीचीन है दृष्टि कहिए तत्त्वार्थ श्रद्धान जाकैं सोई सम्यग्दृष्टि, अर सोही अविरत कहिये असंयमी सो अविरत सम्यग्दृष्टि है। बहुरि देशतः कहिए एक देशतैं है विरत कहिए संयमी सो देश विरत है संयम असंयम करि मिल्या भाव है। इहांतैं ऊपरि सर्व गुणस्थानवर्त्ती संयमी ही हैं, बहुरि प्रमाद्यति कहिए प्रमाद करै सो प्रमत्त है, बहुरि प्रमाद न करै सो अप्रमत्त है, बहुरि अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाके सो अपूर्वकरण है, बहुरि न पाइये है निवृत्ति कहिये, विशेष रूप करण कहिए परिणाम जाके सो अनिवृत्तिकरण है, बहुरि सूक्ष्म है सांपराय कहिए लोभ कषाय जाकैं सो सूक्ष्मसांपराय है; बहुरि

उपशांत भया है मोह जाका सो उपशांतमोह है; बहुरि क्षीण भया है मोह जाका सो क्षीणमोह है; बहुरि घातिकर्मनिकों जीतता भया सो जिन, बहुरि केवलज्ञान है जाके सो केवली, सोई केवली सोही जिन, बहुरि योग करि सहित सो सयोग सोही सयोगकेवली जिन है; बहुरि योग जाकैं न होय सो योगी नांही सो अयोगी सोही केवली जिन सो अयोग केवली जिन हैं। ऐसैं मिथ्यादृष्टि आदि अयोगी केवलि जिन पर्यंत चौदह गुणस्थान जानना। इहां ग्रन्थ बढ़नेके भयतैं नामका अर्थ मात्र स्वरूप कह्या विशेष अन्य आगमतैं जानना।

ऐसैं जीवतत्वका वर्णन किया, आगैं अजीवतत्वका वर्णन करैं हैं—

धर्माधर्मनभः कालपुद्गलाः परिकीर्त्तिताः।
अजीवाः पंच सूत्रज्ञैरुपयोगविवर्जिताः॥ २९॥

अर्थ—सूत्रके जाननेवाले नर धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य ये पांच, उपयोग जो दर्शन ज्ञान ताकरि रहित अजीव कहे हैं॥ २९॥

अमूर्त्ता निष्क्रिया नित्याश्चत्वारो गदिता जिनैः।
रूपगन्धरसस्पर्शशब्दवन्तोऽत्र पुद्गलाः॥ ३०॥

अर्थ—धर्म अधर्म काल आकाश ये च्यार द्रव्य अमूर्त्त कहिये वर्ण गंध रस स्पर्श रहित अर निःक्रिय कहिए प्रदेशनिके चलिवेकरि रहित जिनदेवनि करि कहे हैं। बहुरि इहां रूप गन्ध रस स्पर्श शब्द-वान हैं ते पुद्गल हैं, रूप गन्ध रस स्पर्श है जातैं सदा अनुयायी है अर शब्द है सो पर्याय है जातैं पुद्गलस्कंधनितैं कदाचित उपजै है। इहां शब्द कहनें करि बंध, सूक्ष्म, स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत ए सर्व पुद्गलके पर्याय जान लेना॥ ३०॥

लोकालोकौ स्थितं व्याप्य, व्योमानंतप्रदेशकम्।
लोकाकाशं स्थितौ व्याप्य, धर्माधर्मौ समं ततः॥ ३१॥

अर्थ—लोक अलोक दोउनिकौं व्याप्त करि अनंत हैं प्रदेश जाकै ऐसा आकाश अवस्थित है। बहुरि लोकाकाशकौं सर्व तरफतैं व्याप्त करि धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य तिष्ठैं है॥ ३२॥

धर्माधर्मैकजीवानामसंख्येयाः प्रदेशकाः।
अनंतानंतमानास्ते, पुद्गलानामुदाहृताः॥ ३२॥

अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य अर एकजीवद्रव्य इनके असंख्याते प्रदेश हैं। बहुरि पुद्गलनिके प्रदेश अनंतानंत प्रमाण कहे हैं॥३२॥

जीवानां पुद्गलानां च, गतिस्थितिविधायिनौ।
धर्माधर्मौ मतौ प्राज्ञैराकाशमवकाशकृत्॥ ३३॥

अर्थ—जीवनिकौं तथा पुद्गलनिकौं गति अर स्थितिके करावनेवाले धर्म अधर्मद्रव्य बुद्धिवाननि करि कहे हैं, अर आकाश है सो अवकाशका करनेवाला कहिए देनेवाला है।

भावार्थ—जैसें स्वयं चालते मच्छनकौं जल गमन सहकारी है, अर जैसे आप ही तिष्ठते पथिकनिकौं छाया तिष्ठनेमें सहकारी है तैसें गमन करते वा तिष्ठते जीव पुद्गलनिकौं धर्म अधर्म सहकारी है, कछु प्रेरणाकरि चलावते बैठावते नाहीं उदासीन कारण हैं। अर यद्यपि सर्वद्रव्य अपने अपने स्वरूपमें तिष्ठै हैं तथापि सर्व द्रव्यनिकौं अवकाश देना ये आकाशका गुण है ऐसा जानना॥ ३३॥

असंख्या भुवनाकाशे, कालस्य परमाणवः।
एकैका वर्त्तनाकार्या, मुक्ता इव व्यवस्थिताः॥ ३४॥

अर्थ—लोकाकाशविषैं वर्त्तना है कार्यलक्षण जिनका ऐसे असंख्याते कालके परमाणु एक एक न्यारे न्यारे मुक्ताफलनिकी ज्यों तिष्ठै हैं।

भावार्थ—वर्तना है लक्षण जिनका ऐसे असंख्याते कालाणू भिन्न लोकविषैं तिष्ठे हैं सो तो निश्चयकाल है। अर अन्य द्रव्यनिके पर्यायकरि समयादिभेद करिए सो व्यवहारकाल है ऐसा जानना ॥३४॥

जीवितं मरणं सौख्यं, दुखं कुर्वंति पुद्गलाः।
अणुस्कंधविभेदेन, विकल्पद्वयभागिनः ॥ ३५ ॥

अर्थ—पुद्गल जे हैं ते जीना मरण सुख दुःखकौं करै हैं, कैसे हैं पुद्गल अणु स्कन्धके भेदकरि दोय भेदके भजनेवाले हैं। इहां संसारीनिके प्राणनका संयोग सो जीवन अर तिनका वियोग सो मरण अर इन्द्रियजनित सुख दुःख इनके कारण पुद्गल करै है ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

विश्वंभरा जलं छाया, चतुरिंद्रियगोचराः। कर्माणि परमाणुश्च, षड्विधः पुद्गलो मतः ॥ ३६ ॥ स्थूलस्थूलमिदं स्थूलं, स्थूलसूक्ष्मं जिनेश्वरैः। सूक्ष्मस्थूलं मतं सूक्ष्मं, सूक्ष्मसूक्ष्मं यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पृथ्वी जल, छाया, च्यार इंद्रियनिके विषय अर कर्म, अर परमाणु ऐसैं छह प्रकार पुद्गल द्रव्य कह्या है ॥ ३६ ॥

बहुरि जिनेश्वरनिकरि यथाक्रम कहिए पृथ्वी तो स्थूलस्थूल, अर जल स्थूल, अर छाया स्थूलसूक्ष्म, अर नेत्र विना चतुरिंद्रियके विषय सूक्ष्मस्थूल, अर कार्माण वर्गणा सूक्ष्म, अर परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म कह्या है। ॥ ३७ ॥

ऐसैं अजीव तत्वका वर्णन किया; आगैं आस्रवतत्वकौं कहै हैं—

यद्वाक्कायमनः कर्म, योगोसावास्रवः स्मृतः।
कर्मास्रवत्यनेनेति, शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जो वचन काय मन इनका कर्म कहिये चलना सो योग है यहु आस्रव है। शब्दशास्त्रविषैं निपुण पुरुषकरि जाकरि कर्म आस्रवै सो आस्रव है ऐसा कह्या है ॥ ३८ ॥

शुभाशुभस्य विशेयस्तत्रान्योन्यस्य कर्मणः।
कारणस्यानुरूपं हि, कार्यं जगति जायते ॥ ३९ ॥

अर्थ—तहां शुभयोग शुभकर्मका कारण जानना अर अशुभयोग अशुभ कर्मका; जातैं लोकविषैं कारणके अनुरूप कार्य होय है ॥३९॥

संसारकारणं कर्म, सकषायेण गृह्यते।
येनान्यथा कषायेण, कषायस्तेन वर्ज्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—जा कारणकरि कषायसहित जो जीव ताकरि संसारका कारण कर्म ग्रहण करिये है अर कषायरहितकरि संसारका कारण कर्म ग्रहण न करिये है ता कारण कषाय त्यागिए है।

भावार्थ—सांपरायिक आस्रव तौ सकषाय जीवकै होय है अर ईर्यापथिक आस्रव कषायरहित एकादशमादि गुनस्थाननिविषै होय है सो केवल योगकृत है तातैं संसारका कारण नाहीं ऐसा जानना॥४०॥

ज्ञाताज्ञातामन्दमन्दादिभावैश्चित्रैश्चित्रं बन्ध्यते कर्मजालं।
नाचित्रत्वे कारणस्येह कार्यं, किंचिच्चित्रं दृश्यते जायमानं ॥ ४१ ॥

अथ—ज्ञातभाव अज्ञातभाव तीव्रभाव मन्दभाव आदिशब्दकरि अधिकरण अर वीर्य इन प्रकारनि करि नानाप्रकार कर्मजाल उपजाइए है लोकविषैं कारणके नानाप्रकारपना न होतैं नानाप्रकार कार्य किछू उपज्या न देखिए है।

भावार्थ—यह प्राणी हिंसनायोग्य है ऐसा जानकरि हिंसामें प्रवर्त्तना इत्यादिक ज्ञातभाव है, बहुरि प्रमादतैं वा मदतैं विना जानैं हिंसादिकमें प्रवर्त्तना सो अज्ञातभाव है, तीव्र क्रोधादिकके उदयतैं होय सो तीव्रभाव है, मंदक्रोधादिकके उदयतैं होय सो मंदभाव है, बहुरि जाकै विषैं हिंसादिक आधाररूप कीजिए सो अधिकरण कहिए बहुरि द्रव्यकी

ज्यो निजसामर्थ्य सो वीर्य कहिए, इनिके नानाप्रकार तीव्रमंदादि भेद-करि आस्रवविर्षै भी भेद है ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

तिरस्कारमात्सर्यपैशून्यविघ्नप्रघातप्रलापादिदोषैरनेकैः ।
चिबोधावरोधस्तथेक्षावरोधो, दुरन्तैः कृतैर्गृह्यते गर्हणीयः ॥४२॥

अर्थ—ज्ञान दर्शनके धारकनिका वा ज्ञानदर्शनका तिरस्कार करना वा मात्सर्य मद करना वा पैशून्य चुगली खाना, वा अन्तराय करना वा घात करना वा झूठे दोष कहना इत्यादि अनेक दूर है, अन्त जिनका ऐसे करे भये दोषनि करि निंदने योग्य ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण ग्रहण कीजिए है ॥ ४२ ॥

बधाक्रन्ददैन्यप्रलापप्रपंचैर्निकृष्टेन तापेन शोकेन सद्यः ।
परात्मोभयस्थेन कर्मांगिवर्गैरसातं सदा गृह्यते दुःखपाकम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—प्राणनिका वियोग करना सो बध, अर अश्रुपातसहित खड़ा विलाप करना सो आक्रन्दन, अर दीनपना कहिए जाहि देखे दया उपजे, तथा प्रलाप कहिये बकवाद इनिके विस्तारनि करि, तथा परके वचन सुनि मनमे कलुषता सो ताप ता करि, तथा ताकी चिंता करता इष्टवियोग भये संतैं निकृष्ट दुःख जो पीडारूप परिणाम ताकरि, तथा खेदरूप परिणाम जो निकृष्ट शोक ताकरि दुःखरूप है उदय जाका ऐसा जो असाता वेदनीय कर्म ताकूं जीवनके समूहनि करि सदा शीघ्र ग्रहण कहिए है। कैसे कहैं पूर्वोक्त कारण, परविषै वा आपविषैं वा पर आप दोऊनिविषैं स्थित कहिए वर्त्तै है।

भावार्थ—आपविष वा परविषैं वा पर आप दोऊनिविषैं करे भये बन्धादिक कारण करि असाता वेदनीयका आस्रव होय है ॥४३॥

साधूपास्त्या प्राणिरक्षा तितिक्षा, सर्वज्ञार्चा दानशौचादियोगैः ।
सातं कर्मोपचते शर्मपाकं, शिष्टाभिष्टैः पोषितैः सज्जनैर्वा ॥ ४४ ॥

अर्थ—साधूनकी सेवा अर जीवनकी रक्षा अर क्षमा अर सर्वज्ञकी पूजा अर दान अर निर्लोभ परिणामादिक अर शुभध्यान इन पापरहित क्रियाका आचरण करि सातावेदनीय कर्म उपजै है, जैसैं उत्तम है, मनोरथ जिनके ऐसे पोषे भए सज्जननि करि सुखका परिपाक उदय होय है तैसैं, यह दृष्टांत हैं ॥ ४४ ॥

मोक्षःयेनावर्णवादेन देवे, धर्मे संघे वीतरागे श्रुते च ।
मद्यैनेवाऽऽस्वाद्यमानेन सद्यो, घोराकारो जन्यते दृष्टिमोहः ॥४५॥

अर्थ—देवविषैं तथा धर्मविषैं तथा संघविषैं तथा वीतराग केवली विषैं तथा शास्त्रविषैं त्यागनेयोग्य जो अवर्णवाद ताकरि स्वाद्य भया जो मदिरा ताकरि जैसे घोर है आकार जाका ऐसा देखनेमें गहल-भाव उपजाइए है तैसैं दर्शनमोह करि उपजाइए हैं ।

भावार्थ—अन्तरङ्ग कलुषताके दोषतैं न होते दोषनिका प्रगट करना सो अवर्णवाद है, तथा च्यारप्रकार देव है, तिनमें व्यंतर मांसका सेवन करै है इत्यादिक कहना सो देवावर्णवाद है, बहुरि जिनभाषित दश प्रकार धर्म गुणरहित है ताके सेवनवाले असुर होय है इत्यादिक कहना सो धर्मका अवर्णवाद है, बहुरि जे मुनि है ते स्नानरहित मलकरि लिप्त्या है अंग जिनका ऐसे अपवित्र शूद्र हैं इत्यादिक कहना सो संघका अवर्णवाद है बहुरि केवली कवलाहारतैं जीवैं वा क्रमप्रवृत्त ज्ञानदर्शन सहित हैं इत्यादि कहना सो केवलीका अवर्णवाद है, बहुरि मांस मच्छीका खाना, मदिरा पान सेवना, स्त्री भोगना, रात्रिभोजन इत्यादि पाप रहित हैं ऐसा कहना सो श्रुतका अवर्णवाद है; ऐसैं देवादिकके अवर्णवादतैं दर्शनमोहका बंध होय है, जाकरि संसार विषैं अनंत परिभ्रमण होय है ऐसा जानना ॥ ४५ ॥

सौख्यध्वंसी जन्यते निंदनीयो, रौद्रो भावो यः कषायोदयेन ।
दत्ते जन्तोरेष चारित्रमोहं, विद्वेषी वा राध्यमानो निकृष्टः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो कषायके उदयकरि निंदने योग्य अर सुखका नाश करनेवाला रौद्रभाव उपजाइये है सो जीवकौं चारित्रमोह देय है, जैसैं द्वेषभाव सहित आराध्या भया नीच पुरुष आचरणमें प्रचेतपना उपजावै तैसैं।

भावार्थ—क्रोधादिक कषायनके उदयतैं जो तीव्रपरिणाम होय ताकरि जीवकैं चारित्र मोहका आस्रव होय है ऐसैं जानना ॥ ४६ ॥

बह्वारंभग्रंथसंदर्भदर्पैः, रौद्राकारस्तीव्रकोपादिजन्यैः।
श्वभ्रावासे प्राप्यते जीवितव्यं, किंवा दुःखं दीयते नाघचेष्टैः ॥४७॥

अर्थ—बहुत आरम्भ कहिए हिंसा-कर्म, अर यह मेरी वस्तु, मैं याका स्वामी हूँ ऐसा आत्मीय भाव सो परिग्रह, इनकी ऐसा रचनाके मदनि करि तथा भयानक है आकार जिनके ऐसे तीव्रक्रोधादिके उपजावनेवाले भावनि करि नरक निवास विष जीवितपना पाइये है, अथवा पापरूप चेष्टानि करि कहा दुःख न दीजिये है? दीजिये ही है।

भावार्थ—बहुआरंभ बहुपरिग्रहतैं नरकायुका आस्रव होय है ॥४७॥

नानाभेदा कूटमानादिभेदै, र्मायाऽनिष्टाऽऽराध्यमाना जनानाम्।
तैर्यग्योन जीवितव्यं विधत्ते, किं वा दत्ते वंचना न प्रयुक्ता ॥ ४८ ॥

अर्थ—कूट कहिये झूँठ मान आदि भेदनिकरि नाना भेदस्वरूप आराध्यमान जो अनिष्ट माया सो तिर्यंच योनिप्रति जीवितपनाकौं धारै है, जस प्रयोगकरि ठिगवेकी जो बुद्धिक्रिया सो कहा दुःख न देय है?

भावार्थ—कुटिलपनेका नाम माया है सो मायाचारतैं तिर्यंच आयुका आस्रव होय है ॥ ४८ ॥

अल्पारंभग्रंथसंदर्भदर्पैः सौम्याकारैः मंदकोपादिजन्यैः।
सद्यो जीवो नीयते मानुषत्वं, किं नो सौख्यं दीयते शांतरूपैः ॥४९॥

अर्थ—मंदक्रोधादिक कषायनिकरि उपजे अर सौम्य है आकार जिनके, ऐसे अल्पारंभ परिग्रहकी रचना अल्पमान इन करि जीव जो है सो शीघ्र मनुष्यपणकौं प्राप्त करिए है जैसें शांत है रूप जिनके ऐसे पुरुषनिकरि कहा सुख न दीजिए है ?, दीजिए ही है ।

भावार्थ—अल्प आरंभ अल्पपरिग्रहपनेंतैं मनुष्यआयुका आस्रव होय है ॥ ४९ ॥

सम्यग्दृष्टिः श्रावकीयं चरित्रं, चित्राकामानिर्जरा रागवृत्तम् ।
आयुर्दैवं प्राणाभाजां ददंते, शांता भावाः किं न कुर्वंति सौख्यम् ॥५०॥

अर्थ—सम्यक्त्व अर श्रावक सम्बन्धी चारित्र अर नानाप्रकार अकामनिर्जरा अर सराग चारित्र ये जीवनकौं देव सम्बन्धी आयु देय हैं, जातैं शांतभाव कहा सुख न करै है ?, करै ही है ।

भावार्थ—पूर्वोक्त भावनि करि देवायुका आस्रव होय है । इहां कोऊ कहै सम्यक्त्व चारित्र तौ मोक्षमार्ग है इनितैं आस्रव कैसें होय ? ताका उत्तर—एक आधार आत्माविषैं सम्यक्त्व चारित्र अर रागभाव दोऊ आधेय होतैं सम्यक्त्वचारित्रत तौ निर्जरा होय है, अर रागतैं बंध होय है ताका साहचर्य देखि उपचारतैं कहिए है । सम्यक्त्व चारित्रतैं देवायु बंधै है, निश्चयतैं सम्यक्त्व चारित्रतैं निर्जरा है रागतैं बंध है, जैसें रूढ़तैं कहिये कि यह घृत जलावै है तहां घृत जलावनेका कारण नाहीं घृतमें अग्नि मिल्या है तातैं जलै है ऐसा जानना ॥५०॥

संवादित्वं प्रांजला योगवृत्तिर्नाम्नो ज्ञेयं कारणं पूजितस्य ।
वक्रो योगोऽवादि संवादहान्या, सार्द्धं हेतुर्निन्दनीयस्य तस्य ॥५१॥

अर्थ—संवादिपना कहिये यथार्थ प्रवर्त्तावना, कहना अर सरळ मन वचनकायरूप योगनिकी परिणति सो पूजित जो शुभ नामकर्म ताका कारण जानना, अर यथार्थ कहनेकी हानि जो संवादहानि

ताकरि सहित कुटिल मन वचन कायका योग सो निंदनीक जो अशुभ नामकर्म ताका कारण है; ऐसा जानना ।

भावार्थ—इहां नामकर्मका विशेष जो अचिंत्य शक्तिसहित तीर्थंकर नामकर्म ताके कारण आगम अनुसार कहिए हैं,—जिन-भाषित निर्ग्रंथ मोक्षमार्गविषैं रुचि निःशंकितादि अष्ट अंग सहित दर्शनविशुद्धि कहिए, बहुरि ज्ञानादिकनिविषैं जो परम आदर, कषा-यनका अभाव सो विनयसम्पन्नता कहिए, बहुरि अहिंसादिक व्रत अर तिनके पालनेके अर्थि जे जे क्रोधादिक कषायनके त्यागरूप शील तिनविषैं निर्दोष प्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतीचार कहिये, बहुरि ज्ञान भावना विषैं नित्य उपयुक्तपना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग कहिये, बहुरि संसारके दुःखनितैं भयभीतपना सो संवेग कहिए, बहुरि आपके वा परके अर्थ देना सो त्याग है, बहुरि नाहीं छिपाया है वीर्य जानैं ऐसे पुरुषकैं मार्गतैं अविरुद्ध कायक्लेश करना सो तप है, बहुरि जैसैं भांडा-गारमैं अग्नि उठते संतैं ताका शमन करिए तैसैं अनेक व्रत शील करि सहित मुनिनके समूहके तपकौं कहूंनैं विघ्न उठते संतैं ताका उपशम करि तपकी स्थिरता करिये सो साधुसमाधि कहिए, बहुरि गुणवानकैं दुःख आए संतैं निर्दोष विधि करि दुःख दूर करना सो वैयावृत्य कहिए, बहुरि अरहंतनिविषैं तथा आचार्यनिविषैं तथा बहुश्रुतनिविषैं तथा प्रवचन जो जिनवाणी ताविषैं भावकी शुद्धतासहित जो अनुराग सो *अर्हद्भक्ति आचार्यभक्ति बहुश्रुतभक्ति प्रवचनभक्ति* कहिये, बहुरि सामायिकादि छह आवश्यक क्रियानिका यथाकाल करना सो आवश्य-कापरिहाणि कहिए, बहुरि ज्ञान तप जिनपूजाकी विधि इन करि धर्मका प्रकाशना सो मार्गप्रभावना कहिए, बहुरि वच्छाविषैं गौकी ज्यों साधर्मी विषैं जो प्रीति सो प्रवचनवात्सल्य कहिए । ऐसैं यह

षोडशकारण सम्यग्दर्शनसहित तीर्थंकर नामकर्मके आस्रवके कारण जानना ॥ ५१ ॥

नीचैर्गोत्रं स्वप्रशंसान्यनिंदे, कुर्वाणोऽसत्सद्गुणोच्छादने च ।
प्राप्नोत्यंगी प्रार्थनीयं महिष्ठैः, रुच्चैर्गोत्रं मंक्षु तद्वैपरीत्ये ॥५२॥

अर्थ—आपकी प्रशंसा वा अन्यकी निंदा अर आपके न होते गुण प्रगट करना अर दूसरेके होते गुण ढांकना इनकौं करता सन्ता नीच गोत्रकौं प्राप्त होय है, बहुरि तिनके विपरीतपना होतसंतैं बड़े पुरुषनिकरि प्रार्थने योग्य उच्च गोत्रकूं शीघ्र ही पावै है ॥ ५२ ॥

दानं लाभो वीर्यभोगोपभोगा, नो लभ्यंते प्राणिना विघ्नभाजा ।
विज्ञायेत्थं विघ्नभीतेन विघ्नो, नो कर्त्तव्यः पंडितेन त्रिधाऽपि ॥५३॥

अर्थ—विघ्न जो अन्तराय ताका करनेवाला जो जीव ताकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य न पाइए है ऐसा जानि विघ्नतैं भयभीत पंडितनकरि मन वचन कायनैं विघ्न करना योग्य नाहीं ।

भावार्थ—परके दानादिकमें विघ्न करनेतैं अन्तरायका आस्रव होय है ॥ ५३ ॥

इहां कोऊ कहै ये ज्ञानावरणादिकके नियमरूप कारण कहे ते सब ही कर्मनके आस्रवके कारण होय हैं । जाका जातैं आगमनविषैं ज्ञानावरणका बन्ध होता युगपत औरनका भी बन्ध कहिए है तातैं आस्रवके नियमका अभाव आया ताकौं कहिए है—यद्यपि पूर्वोक्त-कारणकरि ज्ञानावरणादिक सर्व कर्मनिका प्रदेशादि बन्धका नियम नाहीं तथापि अनुभाग विशेषके नियमके हेतुपने करि न्यारे कारण कहिए हैं ऐसा जानना ।

आगे बन्ध तत्त्वका वर्णन करै हैं—

ये गृह्यंते पुद्गलाः कर्मयोग्याः, क्रोधाद्यैश्चेतनैरेष बन्धः ।
मिथ्यादृष्टिर्निव्रतत्वं कषायो, योगो ज्ञेयस्तस्य बन्धस्य हेतुः ॥ ५४ ॥

अर्थ—क्रोधादिक कषायनिकरि सहित जीवनिकरि कर्म योग्य पुद्गल ग्रहण करियेहै सो यहु बंधहै, बहुरि ता बंधके बीजभूत कारण मिथ्यादर्शन, अविरत, कषाय, योग जानना योग्य है।

भावार्थ—जैसैं भूखसहित जीव मुखद्वार करि आहार ग्रहण करै है तैसैं मोक्षसहित जीव योगद्वारतैं कार्माण वर्गणा ग्रहण करै सो बंध कह्या ॥ ५४ ॥

बंध: स मतः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन ।
पटुभिश्चतु:प्रकारो, येन भवे भ्रम्यते जीव: ॥ ५५ ॥

अर्थ—प्रकृत्ति स्थिति अनुभाग प्रदेश इन भेदनिकरि सो बंध प्रवीण पुरुषनिनैं च्यार प्रकार कह्या है, जिस बंध करि जीव संसारविषैं भ्रमाइए है ॥ ५५ ॥

स्वभाव: प्रकृति: प्रोक्ता, स्थिति: कालावधारणम् ।
अनुभागो विपाकस्तु, प्रदेशोंऽशप्रकल्पनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वभाव तौ प्रकृति कही है जैसैं निंबका कटुक स्वभाव है मिश्रीका मिष्ट स्वभाव है ऐसैं ज्ञानावरणादिकनिका ज्ञान घातनादिक स्वभाव है सो तो प्रकृतिबन्ध जानना, बहुरि काल जो अवधारण मर्यादा सो स्थितिबन्ध है,

भावार्थ—तिस स्वभावका न छूटना सो स्थिति है। बहुरि विपाक जो रस सो अनुभागबन्ध है,

भावार्थ—तिस प्रकृतिके रसविशेषका नाम अनुभव है जैसैं अजा गौ महिषी आदिके दुग्धनिके तीव्र मंदादि भावकरि विशेषता है तैसैं बहु अंश जे परमाणु तिनकी संख्याका कल्पना सो प्रदेशबंध है,

भावार्थ—जघन्य तौ अभव्यनितैं अनंतगुणा उत्कृष्ट सिद्धनके अनंतवें भाग जो समयप्रबद्ध ताका ज्ञानावरणादि रूप यथायोग्य

हीनाधिक परमाणूनका बटवारा हो जाय सो प्रदेशबन्ध है ऐसा जानना ।। ५६ ।।

करोति योगात्प्रकृतिप्रदेशौ, कषायतः स्थित्यनुभागसंज्ञौ ।
स्थिति न बंधः कुरुते कषाये, क्षीणे प्रशांते स ततोऽस्ति हेयः ।।५७।।

अर्थ—योगतैं प्रकृति अर प्रदेशबंधकौं करै है, बहुरि स्थिति अर अनुभागपना बंधकौं कषायतैं करै है, बहुरि कषायकौं क्षय होतसंतै वा उपशम होतसंतैं बंध स्थितिकौं न करै हैं तातैं सो कषाय त्यागना योग्य है।

भावार्थ—कषाय विना केवल योगनत बंध होय है सो एक सातावेदनीयका स्थिति बंध है सो अनंतर समयमें खिर जाय है सो संसारका कारण नाहीं। बहुरि कषाय सहितके बंध होय है, सो स्थिति अनुभाग सहित होय है सो संसारका कारण है। तातैं कषाय त्यागना योग्य है ऐसा जानना ।। ५७ ।।

स्वीकरोति स कषायमानसो, मुंचते च विकषायमानसः ।
कर्म जन्तुरिति सूचितो, विधिर्बंधमोक्षविषयो विबंधनैः ।। ५८ ।।

अर्थ—कषाय सहित है मन जाका ऐसा पुरुष है सो कर्मकौं अंगीकार करै है। बहुरि कषाय रहित है मन जाका ऐसा जीव है सो कर्मकौं त्यागे है; ऐसें बन्ध मोक्षकी विधि बन्धन रहित जे सर्वज्ञदेव तिनकरि कही है।

भावार्थ—रागभावतैं तो बंध है अर वीतराग भावतैं मोक्ष है ऐसा सर्वज्ञका उपदेश है तातैं राग त्यागि वीतराग होना योग्य है ।। ५८।।

ऐसैं बन्धतत्वका वर्णन किया; आगैं संवरतत्वका वर्णन करै हैं—

आस्रवस्य निरोधो यः, संवरः स निगद्यते ।
भावद्रव्यविकल्पेन, द्विविधः कृतसंवरैः ।। ५९ ।।

अर्थ—करया है संवर जिननैं ऐसे मुनिश्वरनिकरि आस्रवका रोकना सो संवर द्रव्य भावके भेदकरि दोयप्रकार कहिए है ॥ ५९ ॥

क्रोधलोभभयमोहरोधनं, भावसंवरमुशन्ति देहिनाम् ।
भाविकल्मषनिवेशरोधनं, द्रव्यसंवरमपास्तकल्मषाः ॥६०॥

अर्थ—नाश किए है पाप जिननै ऐसे आचार्य है ते क्रोधलोभ भय मोह इनिका जो रोकना ताहि भाव संवर कहै हैं, बहुरि आगामी कर्मके प्रवेशका रोकना ताहि द्रव्य संवर कहै हैं ।

भावार्थ—रागादिभाव रोकना सो भावसंवर कहिए ऐसा जानना अर ताके निमित्त करि बद्ध जे कर्मपुद्गल तिनका रोकना सो द्रव्यसंवर कहिए, ऐसा जानना ॥ ६० ॥

धार्मिकः समिति गुप्तो विनिर्जितपरीषहः ।
अनुप्रेक्षापरः कर्म, संवृणोतिससंयमः ॥ ६१ ॥

अर्थ—धर्मसहित अर समितिसहित अर गुप्तिसहित अर जीते हैं परीषह जानैं, ऐसा बहुरि अनुप्रेक्षामें तत्पर अर संयमसहित ऐसा जीव है सो कर्मकौं संवरै है-रोकै है ।

भावार्थ—कषायनिके अभावरूप उत्तमक्षमादि दशधर्म अर प्रमादरहित प्रकृतिरूप पंचसमिति अर भलेप्रकार मन, वचन, कायके योगनिका निग्रह रूप तीन गुप्ति, अर मार्गतैं न छूटनेके अर्थि तथा निर्जराके अर्थि सहने योग्य क्षुधादि बाईस परीषह, बहुरि स्वभावका वारम्वार चिन्तनरूप अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षा, बहुरि प्राणीनिकी हिंसा अर इन्द्रियनके विषय इनिके त्यागरूप सामायिकादि पंचप्रकार संयम ये भाव संवरके विशेष हैं, जातैं इनिकरि रागादि आस्रव रुकै है ऐसा जानना ॥ ६१ ॥

मिथ्यात्वाव्रतकोपादियोगैः कर्म यदर्ज्यते ।
तन्निरस्यंति सम्यक्त्वव्रतनिग्रहरोधनैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अर अव्रत अर क्रोधादि कषाय अर योग इनकरि जो कर्म उपार्जन करिये है सो कर्म सम्यक्त्व व्रत क्रोधादिकका निग्रह योगनिका रोकना इनि करि दूरि करिए है। मिथ्यात्वादि भावकरि द्रव्यकर्मका आस्रव होय है ताहि सम्यक्त्वादि भाव करि रोके द्रव्यसंवर होय है ॥ ६२ ॥

ऐसा द्रव्यसंवरका स्वरूप जानना, आगैं निर्जरा तत्वका वर्णन करैं हैं;—

पूर्वोपार्जितकर्मैकदेशसंक्षयलक्षणा ।
सविपाकाऽविपाका च, द्विविधा निर्जराऽकथि ॥ ६३ ॥

अर्थ—पूर्वोपार्जित कर्मनिकी एकदेश क्षय है लक्षण जाका ऐसी नाना प्रकार (दोय प्रकार) सविपाका अर अविपाका निर्जरा कही ॥ ६३ ॥

तिनका स्वरूप कहैं हैं;—

यथा फलानि पच्यंते, कालेनोपक्रमेण च ।
कर्माण्यपि तथा जन्तोरुपात्तानि विसंशयम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसैं फल हैं ते अपने कालकरि तथा पाल आदि उपक्रम करि पकैं हैं तैसैं जीवके ग्रहण करे कर्म हैं ते भी अपनी स्थितिरूप कालकरि तथा तपश्चरणादिककरि निःसंदेह पकैं-खिरैं हैं ॥ ६४ ॥

अनेहसा या दुरितस्य निर्जरा, साधारणा सा परकर्मकारिणी ।
विधीयते या तपसा महीयसा, विशेषणी सा परकर्मवारिणी ॥६५॥

अर्थ—ज्यो कालकरि कर्मकी निर्जरा है सो साधारण है सर्व जीवनक है अर और कर्मनके करनेवाली है।

भावार्थ—सविपाक निर्जरा तौ अपनी स्थिति पूरि करि समय-प्रबद्ध मात्र कर्म सबहीकैं खिरैं हैं तातैं साधारण है, अर ताके उदयतैं

जीवकैं राग द्वेष होय है ताकरि आगामी कर्मबन्ध होय है। अर जो सम्यग्दर्शनादिकके प्रयोग करि विना स्थिति पूरी भए ही अनेक समय-प्रबद्ध एकैं काल खिरैं सो अविपाक निर्जरा है, इहां जीवकैं रागादिकके अभावतैं आगामी कर्म न बन्धै है तातैं मोक्षहीकी करनेवाली है ऐसा जानना ॥ ६५ ॥

वितप्यमानस्तपसा शरीरी, पुराकृतानामुपयाति शुद्धिम्।
निधायमानः कनकोपलः किं, सप्तार्चिषा शुद्ध्यति कश्मलेभ्यः ॥६६॥

अर्थ—तप करि तप्तायमान जीव है सो पूर्वकृत कर्मनकी शुद्धिताकौं प्राप्त होय है, जैसैं अग्नि करि धम्या भया सुवर्णका पाषाण सो मलनितैं कहा शुद्ध न होय है? होय ही है ॥ ६६ ॥

घातिकर्म विनिहत्य केवलं, स्वीकरोति भुवनावभासकम्।
चेतनः सकललोकसम्मतं, ध्वांतराशिमिव भास्करो दिनम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—चेतन आत्मा है सो घातिकर्मनिकौं नाशकरि लोकका प्रकाशक अर समस्त लोककरि मान्या ऐसा जो केवलज्ञान, ताहि अङ्गीकार करै है। जैसैं अन्धकारके समूहकौं नाशकरि सूर्य दिनकौं अङ्गीकार करै तैसैं ॥ ६७ ॥

निर्मूलकाषं स निकृष्य कल्मषं, प्रयाति सिद्धिं कृतकर्मनिर्जरः।
विनिर्मलध्यानसमृद्धपावके, निवेश्य दग्ध्वाऽखिलबन्धकारणम् ॥६८॥

अर्थ—विशेषकरि निर्मल ध्यान जो शुक्लध्यान सो ही भया वृद्धिकौं प्राप्त अग्नि, ताविषैं प्रवेश कराय समस्त बन्धके कारणनिकौं जलायकरि करी है कर्मकी निर्जरा जानै ऐसा जो आत्मा सो कल्मष ज्यो समस्त कर्म ताहि निर्मूल जैसैं होय तैसैं उखाडकरि मोक्ष अवस्थाकौं प्राप्त होय है। ६८ ॥

निसर्गतो गच्छति लोकमस्तकं, कर्मक्षयानन्तरमेव चेतनः।
धर्मास्तिकायेन समीरतोऽनघं, समीरणेनैव रजश्चयः क्षणात् ॥ ६९ ॥

अर्थ—कर्मक्षयके अनन्तर ही धर्मास्तिकाय करि प्रेरया आत्मा क्षणमात्रमें निर्मल होय लोकके मस्तक परि गमन करै है। जैसैं पवन करि उडाया रजका समूह ऊपरकौं जाय तैसैं।

भावार्थ—आत्माका उर्द्धगमन स्वभाव है, कर्म नष्ट भये निज स्वभाव प्रगटै है ताकरि धर्मास्तिकायके सहायतैं लोकके शिखर तांई धर्मास्तिकाय है तहां तांई जाय तिष्ठै है ताके प्रभावतैं न जाय है। इहां धर्मास्तिकाय करि प्रेरणा गमनका सहकारीपना ही जानना जातैं धर्मद्रव्य किछू जबरीसौं न चलावै है, स्वयमेव चलतेनकौं सहकारी कारण है ऐसा जानना ॥ ६९ ॥

निरस्तदेहो गुरुदुःखपीडितां, विलोकमानो निखिलां जगत्त्रयीम् ।
स भाविनं तिष्ठति कालमुज्ज्वलो, निराकुलानंतसुखाब्धिमध्यगः ॥७०॥

अर्थ—त्याग किया है शरीर जानैं ऐसा सो सिद्धात्मा महादुःख करि पीड़ित जो जगतकी त्रयी कहिये तीन लोक ताहि विलोकता सन्ता आगामी काल तिष्ठै है, कैसा है। सो आत्मा, द्रव्य भावकर्मरहित उज्ज्वल है अर निराकुल अनंत सुखसमुद्रके मध्य प्राप्त है ॥७०॥

यदस्ति सौख्यं भुवनत्रये परं, सुरेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रभोगिनाम् ।
अनन्तभागोऽपि न तन्निगद्यते, निरेनसः सिद्धिसुखस्य सूरिभिः ॥७१॥

अर्थ—तीन लोकविषै सुरेन्द्र नागेंद्र नरेन्द्र अर अन्य जे विषय-भोगसहित हैं तिनका जो उत्कृष्ट सुख है सो सुख कर्मरहित जो सिद्धात्मा ताके मुक्तिसुखके अनतवें भाग भी आचार्यनिकरि नहीं कहिए है।

भावार्थ—तीन लोकके भोगनिका सुख एकठा करिये सो सिद्ध सुखके अनंतवें भाग नांही ऐसा जानना, भोगनिका सुख तौ आकुलतामय है अर सिद्धसुख है सो निराकुल है, तातैं इन सुखनिकी एक जाति नाहीं, परन्तु निराकुल सुख तौ संसारकी दृष्टिमें आवै नाहीं

अर ताकै सिद्धपद उत्कृष्ट बताया जाइए तातैं उपचारतैं भोगनका सुख सिद्धनका सुखतैं अनंतवें भाग भी नाहीं ऐसा जानना ॥ ७१ ॥

ऐसैं मोक्षतत्वका वर्णन किया। इहां प्रयोजन ऐसा है कि चैतन्य लक्षण आपकौं जानै चेतनारहित समस्त देहादि परद्रव्यनिमें अहंकार ममकार त्यागना योग्य है, अर रागादिक आस्रव है तिनतें दुःख अवस्था स्वरूप बंध होय है सो तिनकौं अहित जानि जैसैं आस्रव बंध न होय तैसैं प्रवर्त्तना योग्य है, अर वैराग्य भावना संवर है, तापूर्वक कर्मनका एकदेश नाश होना सो निर्जरा है इनकौं हितरूप जानि संवर निर्जराके कारणनिमें प्रवृत्ति करना योग्य है, अर सकल कर्मनितैं रहित ज्ञानानंदमयी जो आत्माकी अवस्था सो मोक्ष है आत्माका परमहित है ताहिके अर्थि अन्य समस्त वांछा त्यागि यत्न करना यह ही सर्व तत्व कथनका प्रयोजन है ऐसा निश्चय करना॥

इमे पदार्थाः कथिता महर्षिभिर्यथायथं, सप्त निवेशिताः हृदि ।
विनिर्मलां तत्वरुचिं वितन्वते, जिनोपदेशा इव पापहारिणीं ॥७२॥

अर्थ—महाऋषीनकरि कहे जे सप्त पदार्थ ते यथायोग्य हृदयविषै प्रवेशरूप किये संते निर्मल पापकी हरनेवाली रुचि-प्रतीतिकौं विस्तारैं हैं। जैसैं जिनेंद्रके उपदेश रुचि विस्तारैं तैसैं।

भावार्थ—तत्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शनकी शुद्धिता इन तत्वनिके विशेष जाने अधिक अधिक होय है ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

आगैं सम्यक्त्वके निःशंकितादि अष्ट अंगनिका वर्णन करैं हैं;—

विरागिणा सर्वपदार्थवेदिना, जिनेशिनैते कथिता न वेति यः ।
करोति शंकां न कदापि मानसे, निःशंकितोऽसौ गदितो महामनाः ॥७३॥

अर्थ—वीतराग अर सर्वपदार्थनिका ज्ञाता जिनेन्द्र देवता करि ये सर्व पदार्थ कहे हैं ते हैं? वा नांही हैं? ऐसी शंकाकौं जो कदाचित्

मनविषैं नहीं करै सो यह महामुनि (महामना) निःशंकित कह्यो है ।

भावार्थ—जिन वचनमें वा आत्म स्वरूपमें संदेह न होना सो निःशंकित अंग है ऐसा जानना ॥ ७३ ॥

विधीयमानाः शमशीलसंयमाः, श्रियं ममेमे वितरंतु चिंतिताम् ।
सांसारिकानेकसुखप्रवर्द्धिनीं, निःकांक्षितो नेति करोति कांक्षणाम् ॥७४॥

अर्थ—ये उपशम शील संयम हैं ते करे भये संसारीक अनेक सुखनिकी बढावनेवाली वांछित लक्ष्मीकों मेरैं विस्तारहु ऐसी वांछा, निःकांक्षित पुरुष है सो न करै है ।

भावार्थ—कर्मके फलकी वांछा त्यागिये सो निःकांक्षित अंग जानना ॥ ७४ ॥

तपस्विनां यत्तनुमस्तसंस्कृतिं, जिनेन्द्रधर्मं सुतरां सुदुष्करम् ।
निरीक्षमाणो न तनोति निंदनं, स भण्यते धन्यतमोऽचिकित्सकः ॥७५॥

अर्थ—जो तपस्वीनके मलिन शरीरकूं देख तथा अति कठिन जिनेन्द्रभाषित धर्मकों देखि निंदाको नाहीं विस्तारै है सो जीव विचिकित्सारहित अतिशयकरि धन्य कहिए है ।

भावार्थ—तपस्वीनके मलिन शरीरकूं देखिकैं तथा अनशनादि घोर तप देख करि ग्लानि नहीं करनी सो निर्विचिकित्सानाम सम्यक्त्वका अंग जानना ॥ ७५ ॥

देवधर्मसमयेषु मूढता, यस्य नास्ति हृदये कदाचन ।
चित्रदोषकलितेषु सन्मतेः, सोच्यते स्फुटममूढदृष्टिकः ॥ ७६ ॥

अर्थ—नाना प्रकार दोषन करि व्याप्त जे देव अर धर्म अर समय कहिए सर्व मत इन विषैं सुबुद्धिके हृदय विषैं कदाचित् मूढता कहिये मूर्खता नहीं है सो अमूढदृष्टि कहिए हैं ।

भावार्थ—देवपनेकी आभास धरें ऐसे हरिहरादिक अर धर्मा-

भाव यज्ञादिक अर समयाभाव वैष्णवमत आदिक इन विषैं ये भी देवादिक हैं ऐसी मूढ़ताका अभाव सो अमूढ़दृष्टि जानना ॥ ७६ ॥

यो निरीक्ष्य यतिलोकदूषणं, कर्मपाकजनितं विशुद्धधीः ।
सर्वथाप्यवति धर्मबुद्धितः, कोविदास्तमुपगूहकं विदुः ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो निर्मल बुद्धि पुरुष कर्मके उदय करि उपज्या ज्यो यतिजननिका दूषण ताहि देख करि धर्मबुद्धितैं सर्व प्रकार गोपै है ताहि पंडितजन उपगूहन कहैं हैं।

भावार्थ—जो परके दोष वा अपने गुण ढांकना सो उपगूहन अंग जानना तथा इस ही अंगका नाम उपबृंहण भी कह्या है तहां 'आत्मशक्तिका पुष्ट करना' अर्थ ग्रहण किया है ॥ ७७ ॥

निवर्त्तमानं जिननाथवर्त्मनो, निपीड्यमानं विविधैः परीषहैः ।
विलोक्य यस्तत्र करोति निश्चलं, निरुच्यतेऽसौ स्थितिकारकोत्तमः ॥७८॥

अर्थ—जो नानाप्रकार परीषहनि करि पीडित भया संता जिननाथके मार्गतैं चिगते पुरुषकौं देख करि तिस जिनमार्ग विषैं निश्चल करै सो यहु स्थिति करनेवाला उत्तम कहिए है।

भावार्थ—जिन धर्मतैं वा आत्मस्वरूपतैं आपकौं वा परकौं चिगतेकौं स्थिर करना स्थितिकरण अंग कह्या है ॥ ७८ ॥

करोति संघे बहुधोपसर्गैं, रुपद्रुते धर्मधियाऽनपेक्षः ।
चतुर्विधे व्यापृतिमुज्ज्वलां यो, वात्सल्यकारी स मतः सुदृष्टिः ॥७९॥

अर्थ—मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका ऐसे च्यार प्रकार संघकौं बहुत प्रकार उपसर्ग करि पीड़ित भए संते जो वांछारहित धर्म-बुद्धि करि निर्मल वैयावृत्याचार करै है सो सम्यग्दृष्टि वात्सल्य करने-वाला कह्या है।

भावार्थ—जिन धर्मीन विषैं वा आत्मस्वरूप विषैं अति प्रीति करना सो वात्सल्य अंग जानना ॥ ७९ ॥

निरस्तदोषे जिननाथशासने, प्रभावनां यो विदधाति शक्तितः ।
तपोदयाज्ञानमहोत्सवादिभिः, प्रभावकोऽसौ गदितः सुदर्शनः ॥८०॥

अर्थ—दूरि भये हैं रागादिक दोष जाके ऐसा जो जिननाथका शासन ताविषैं जो शक्तिसारू तप, दया, ज्ञान, महोत्सव इत्यादिकनि करि प्रभावनाकौं करै है उद्योग करै है सो यहु सम्यग्दृष्टि प्रभावना करनेवाला कह्या है । सर्व जीव मानैं कि जिनमत धन्य है तामे ऐसे तपश्चरणादि पाइए है, ऐसे तपश्चरणादिक करि जिनमतका उद्योत करना तथा निश्चयतैं आत्माकूँ रत्नत्रयतैं आभूषित करना सो प्रभावना अङ्ग जानना ॥ ८० ॥

गुणैरमीभिः शुभदृष्टिकंठिकां, दधाति बद्धां हृदि योऽष्टभिः सदा ।
करोति वश्याः सकलाः स संपदो, बधूरिवेष्टाः सुभगो वशंवदः ॥८१॥

अर्थ—जो पुरुष इन निःशंकितादि अष्टगुण कहिए सूत्रनि करि बन्धी सम्यग्दृष्टिरूप मालाकौं हृदयविषैं सदा धारै है सो समस्त सम्पदानकौं वश करै है । जैसे भले वचननिका बोलनेवाला सुन्दर पुरुष वांछित बधूनिनैं वश करै तैसैं ।

भावार्थ—जैसैं माला पहरे सुन्दर पुरुष भलेवचननिका बोलनेवाला स्त्रीनिकौं वशि करै है तैसैं निःशंकितादि सूत्रनि करि बन्धी सम्यग्दृष्टिरूप माला पहरनेवाला जीव इंद्रादि सम्पदाकौं वशि करै है ऐसा जानना ॥ ८१ ॥

सुदर्शनं यस्य स ना सुभाजनः, सुदर्शनं यस्य स सिद्धिभाजनः ।
सुदर्शनं यस्य स धीविभूषितः, सुदर्शनं यस्य स शीलभूषितः ॥८२॥

अर्थ—जाकैं सम्यग्दर्शन है सो पुरुष भला पात्र है, अर जाके सम्यग्दर्शन है सो सिद्धिका भजनेवाला है, अर जाके सम्यग्दर्शन है सो शीलकरि भूषित है ॥ ८२ ॥

नो जायते पावने ज्ञानवृत्ते, सम्यक्त्वेन प्राणिनो वर्जितस्य ।
शर्माधारे कोषराज्ये न दृष्टे, नूनं कापि न्यायहीनस्य राज्ञः ॥ ८३ ॥

अर्थ—जैसें सुखके आधार जे भण्डार अर राज्य ते न्यायरहित राजाकैं निश्चयकरि कहूं भी न देखिए तैसें सम्यक्त्व करि वर्जित जीवकैं पवित्र ज्ञान अर चारित्र न होय हैं।

भावार्थ—सम्यक्त्व विना ज्ञानचारित्र सम्यक्पनेकौं न पावैं तातैं सम्यक्त्व सबनिमें प्रधान है ऐसा जानना ॥ ८३ ॥

सुदर्शनेनेह विना तपस्या, मिच्छंति ये सिद्धिकरीं विमूढाः ।
कांक्षंति बीजेन विनापि मन्ये, कृषिं समृद्धां फलशालिनीं ते ॥ ८४ ॥

अर्थ—जो लोग इहां सम्यग्दर्शन विना सिद्धि करनेवाली तपस्याकूं वांछे हैं सो मैं मानूं हूं कि ते पुरुष बीजविना फल करि शोभित वृद्धिकौं प्राप्त ऐसी खेतीकूं चाहै हैं।

भावार्थ—सम्यक्दर्शन विना अनशनादि क्रिया ताका विना शून्यवत्, शून्य ही है तातैं सम्यग्दर्शन सहित क्रिया करनी योग्य है ॥ ८४ ॥

लोकालोकविलोकिनीमकलिलां गीर्वाणवर्गार्चितां,
दत्ते केवलसम्पदं शमवतामानीय या लीलया ।
सम्यग्दृष्टिरपास्तदोषनिवहा यस्यास्ति सा निश्चला,
तेन प्रापि न किं सुखं बुधजनैरभ्यर्थ्यमानं चिरम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—नाश भये है शंकादिक दोषनिके समूह जाके ऐसी निर्दोष निश्चल सम्यग्दृष्टि जाकैं है ता पुरुष करि पंडित जननि करि बहुत काल तांई प्रार्थना किया ऐसा जो सुख सो कहा न पाया? अपि तु पाया ही। कैसी है सम्यग्दृष्टि जो लीलामात्र करि मुनिराजनिकौं केवलज्ञानकी जो सम्पदा ताहि ल्याय करि देय है, कैसी है केवलज्ञान

सम्पदा लोकालोककी देखनेवाली अर पापमल रहित अर देवनिके समूहनि करि पूजित ऐसी है।

भावार्थ—सम्यक्त्व भए केवलज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र ही होय है ऐसा जनाया है ॥ ८५ ॥

सम्यक्त्वोत्तमभूषणोऽमितगतिर्धत्ते व्रतं यस्त्रिधा, भुक्त्वा भोगपरम्परामनुपमां गच्छत्यसौ निर्वृतिम् । सर्वापायनिदूषिणीमपमलां चिंतामणिं सेवते, यः पुण्याभरणार्चितः स लभते पूतां न कां संपदम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—सम्यक्त्व है उत्तम आभूषण जाकै अर अमितगति कहिए न जानी जाय है महिमा जाकी ऐसा जो जीव मन वचन काय करि व्रतकौं धारण करै है सो उपमारहित भोगनिकी परंपराकौं भोग करि मोक्षकौं प्राप्त होय है, जो पुण्य आभरण करि अर्जित पुण्योदय सहित पुरुष सर्व दरिद्रकी नाश करनेवाली चिंतामणिकौं सेवै है सो कौन पवित्र संपदाकौं न पावै है ? पावै ही है ॥ ८६ ॥

ऐसैं सम्यग्दर्शनके विषय सप्ततत्त्व सम्यक्त्वके अंगका इहां तांई निरूपण किया।

छप्पय।

वीतराग सर्वज्ञ कहे जीवादि तत्व इम,
करि प्रतीति वसु अंगसहित अति होय अचल जिम।
यह कारण व्यवहार कार्य आतम लखि लीजे,
षट् द्रव्यनितैं भिन्न नियति सम्यक रस पीजे ॥
इस विना विफल अवगम चरण, अंक विना विंदी यथा।
ता सहित सार सुख भोग फिर, होय अमितगति सर्वथा ॥

इत्युपासकाचारे तृतीयः परिच्छेदः ।

ऐसें श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं तृतीय परिच्छेद समाप्त भया।

चतुर्थ परिच्छेद ।

आगैं अन्यमतिनके एकांत पक्षका निराकरण करि जीवादिकका वर्णन हेतुवाद सहित करैंगे। तहां हेतुके स्वरूप जाननेकूं प्रथम प्रमाणका वर्णन संक्षेप मात्र करिए है। तहां आप वा अपूर्व अर्थ कहिए अनिश्चित पदार्थ इनिका निश्चय स्वरूप जो सम्यक् ज्ञान सो प्रमाण है, सो प्रत्यक्ष परोक्षके भेदकरि दोय प्रकार है। सामान्य विशेषनि सहित वस्तुका स्पष्ट जानना सो प्रत्यक्षका लक्षण है, अर सामान्य विशेष सहित वस्तुकौं अस्पष्ट व्यवधान सहित जानना परोक्षका लक्षण है। तहां सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अर पारमार्थिक प्रत्यक्ष ऐसैं प्रत्यक्ष दोय प्रकार है, तहां इंद्रिय मनसैं उत्पन्न भए तीनसै छत्तीस भेदरूप मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जातैं इनिमें दोय प्रकार विशदता पाइए है, अर परमार्थ प्रत्यक्षमें अवधि, मनःपर्यय देशप्रत्यक्ष हैं जातैं इनमें एकदेश विशदता पाइए है अर केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है जातैं सर्वकौं विशद जानै है। बहुरि परोक्ष प्रमाणके भेद पांच हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम। तहां पूर्वे अनुभवमें आया वस्तुका स्मरण हो आदि भावना सो स्मृति है; अर दोऊनितैं एकपना अर सदृशपना आदि कोऊ रूपज्ञान होना सो प्रत्यभिज्ञान है; बहुरि साध्य साधनकी व्याप्ति जो अविनाभाव ताकौं जानैं सो तर्क है; बहुरि साधनतैं साध्य पदार्थका ज्ञान होना सो अनुमान है, ताके भेद स्वार्थानुमान, परार्थानुमान; तहां साधनतैं साध्यकौं आप ही निश्चयकरि जानै सो स्वार्थानुमान है। बहुरि परके उपदेशतैं निश्चयकरि जानै सो परार्थानुमान है। ताके पांच अवयव हैं; प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, तहां साध्य अर साधनका आश्रय दोऊकौं पक्ष कहिये ऐसैं पक्षके वचनकौं प्रतिज्ञा कहिए

है तहां साध्यका स्वरूप शक्य अभिप्रेत अप्रसिद्ध ऐसैं तीनरूप है। अर साध्यका आश्रय प्रत्यक्षादिक करि प्रसिद्ध होय है। बहुरि साध्यतैं अविनाभाव प्राप्ति जाकै होय ऐसा साधनका स्वरूप है ताका वचनकौं हेतु कहिए। बहुरि पक्ष सरीखा तथा विलक्षण अन्य ठिकाणा होय ताकूं दृष्टांत कहिए ताका वचनकूं उदाहरण कहिए सो पक्ष सारिखेकूं अन्वयी कहिए विपरीतकूं व्यतिरेक कहिये। बहुरि हेतु-पूर्वक पक्षका नियम करि कहना निगमन है। इनका उदाहरण ऐसा है—यह पर्वत अग्निमान् है यह तो प्रतिज्ञा है; जातैं यह धूमवान हैं यह हेतु है; बहुरि जो धूमवान नाहीं सो अग्निमान नाहीं। जैसैं जलका निवास, यह व्यतिरेक दृष्टांत है; ऐसा वचन यह उदाहरण है। बहुरि यहु पर्वत भी वैसा ही धूमवान है यहु उपनय है; बहुरि तातैं यह अग्निमान है यहु निगमन है। ऐसैं पांच प्रयोगका परार्थानुमान है सो अव्युत्पन्नके अर्थि है अर व्युत्पन्नके अर्थि प्रतिज्ञा अर हेतु ऐसैं दोय अवयवस्वरूप ही हैं। बहुरि आप्त जो सर्वज्ञ ताके वचनतैं वस्तुका निश्चय करना सो आगम प्रमाण है। ऐसैं प्रमाणकी संख्या कही। बहुरि प्रमाणका विषय सामान्य विशेष स्वरूप पदार्थ है। बहुरि वीतरागता वा ग्रहण त्याग बुद्धि वा अपने विषयमें अज्ञानका नाश यहु कथंचित् अभिन्न कथंचित् भिन्न प्रमाण फल है।

ऐसैं प्रमाणका संक्षेप स्वरूप कह्या, विशेष आक्षेप समाधान खण्डन मंडनादि प्रमाण निर्णय परीक्षामुखादि ग्रन्थनितैं जानना, यहां हेतु आदि आवैंगे तिनिकौं यथार्थ जान लेना।

आगैं चार्वाक मतवाले अपना पक्ष स्थापे हैं;—

केचिद्वदंति नास्त्यात्मा, परलोकगमोद्यतः। तस्याभावे विचारोऽयं, तत्वानां घटते कुतः ॥१॥ विद्यते परलोकोऽपि, नाभावे परलोकिनः।

अभावे परलोकस्य, धर्माधर्मक्रिया वृथा ॥ २ ॥ इह लोकसुखं हित्वा, ये तपस्यंति दुर्धियः। हित्वा हस्तगतं ग्रासं, ते लिहंति पदांगुलिम् ॥ ३ ॥ विहाय कलिलां शंकां, यथेष्टं चेष्टतां जनः। चेतनस्य हि नष्टस्य, विद्यते न पुनर्भवः ॥ ४ ॥ नान्यलोके मतिः कार्या, मुक्त्वा शर्मैहलौकिकम्। दृष्टं विहाय नादृष्टे कुर्वते धिषणां बुधाः ॥ ५ ॥ पृथिव्यंभोऽग्निवातेभ्यो, जायते यंत्रवाहकः। पिष्टोदकगुडादिभ्यो, मदशक्तिरिव स्फुटम् ॥ ६ ॥ जन्मपंचत्वयोरस्ति, पूर्वापरयोरियम्। सदा विचार्यमाणस्य, सर्वथानुपपत्तितः ॥ ७ ॥

अर्थ—कोई कहै है परलोकका आगम जो जाना ताविषैं उद्यमी ऐसा जो आत्मा सो नाहीं है, अर ता आत्माके अभाव होतसंतैं यहु कह्या जो तत्वनिका विचार सो काहेतैं बनै ? ॥ १ ॥

बहुरि परलोकवाले आत्माके अभाव होतसंतैं परलोक भी नाहीं है, अर परलोकके अभाव होतसंतैं धर्म अधर्मकी क्रिया वृथा है ॥२॥

अब इस लोकके सुखकौं त्याग करि जे दुर्बुद्धी तपस्या करैं हैं ते हस्तमैं आए ग्रासकौं छोडि अंगुलीकौं चाटैं है ॥ ३ ॥

तातैं पापकी शंकाकूं छोडकरि मनुष्य हैं ते जैसैं होय तैसैं चेष्टा करो, नष्ट भया जो चेतन ताका फेर जन्म नाहीं ॥ ४ ॥

इस लोकके सुखकौं छोड़ि अन्य लोक विषै बुद्धि करनी योग्य नाहीं जातैं पंडित हैं ते प्रत्यक्षकौं छोड़ करि अप्रत्यक्ष विषैं बुद्धि न करै हैं ॥ ५ ॥

जैसैं पीठी जल गुड़ इत्यादिकतैं प्रगटपनैं मदशक्ति उपजै है तैसैं पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन इनितैं चैतन्य जीव उपजै है ॥ ६ ६

जन्मके अर मरणके पहलै अर पीछैं जीव सदा नहीं है, जातैं विचारते भए जीवकी सर्वथा अनुपपत्ति है ॥ ७ ॥

नास्तिक कहै है कि जैसें चून गुड़ आदितैं मदशक्ति उपजै है पृथ्वी आदितैं चेतना उपजै है। अनादिनिधन जीव नाहीं ताका परलोक नाहीं तातैं पापकी शँका छोड़ि यथेष्ट विषयनिमें प्रवर्त्तौं। ऐसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति पोषी। अब आचार्य ताके वचनका खण्डन करैं हैं—

परात्मवैरिणां नैतन्नास्तिकानां कदाचन ।
जायते वचनं तथ्यं, विचारानुपपत्तितः ॥ ८ ॥

अर्थ—यहु परके वा आपके वैरी जे नास्तिक तिनका पूर्वैं कह्या जो यहु वचन सो कदाचित् सांचा न सोय है, जातैं विचार विषैं अनुपपत्ति है ॥ ८ ॥

भावार्थ—पूर्वैं कह्या नास्तिकका वचन विचार किये झूँठा भासै है।

आगैं जीवका अस्तित्व साधैं हैं—

विद्यते सर्वथा जीवः, स्वसंवेदनगोचरः ।
सर्वेषां प्राणिनां तत्र, बाधकानुपपत्तितः ॥ ९ ॥

अर्थ—स्वसंवेदनके गोचर कहिए जाननेमें आवे ऐसा जीव है सो सर्वथा विद्यमान है, जातैं तहां सर्व जीवनिकौं बाधक प्रमाणकी अनुपपत्ति है।

भावार्थ—स्वसंवेदन विषैं कोई प्रकार बाधा नहीं आवै है।

आगैं ताही अर्थकौं पुष्ट करैं हैं—

शक्यते न निराकर्तुं, केनाप्यात्मा कथंचन ।
स्वसंवेदनवेद्यत्वात्सुखदुःखमिव स्फुटम् ॥ १० ॥

अर्थ—कोऊ करि भी आत्मा है सो निराकरण करनेकूं कोई प्रकार समर्थ न हूजिये है, जातैं आत्माकौं स्वसंवेदन करि प्रगट जाननेकौं योग्यपनां है, सुख दुःखकी ज्यों।

भावार्थ—जैसैं सुख दुःख आपकरि जाननेमें आवै है तैसैं आप भी आप करि जाननेमें आवै है तातैं अभाव रूप नाहीं ॥१०॥

आगैं ताही अर्थकौं पुष्ट करै हैं—

अहं दुःखी सुखी चाहमित्येषः प्रत्ययः स्फुटम् ।
प्राणिनां जायतेऽध्यक्षो, निर्बाधो नात्मना विना ॥ ११ ॥

अर्थ—मैं सुखी हूँ मैं दुःखी हूँ ऐसी यहु जीवनिकैं प्रगट बाधारहित प्रत्यक्ष प्रतीत है सो आत्मा विना न होय है ॥ ११ ॥

आगैं जैसैं आपके शरीरमें आत्मा है तैसैं परशरीरमें परके आत्माकौं सिद्ध करैं हैं—

स्वसंवेदनतः सिद्धे, निजे वपुषि चेतने ।
शरीरे परकीयेऽपि, संसिद्ध्यत्यनुमानतः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वसंवेदनतैं अपने शरीरमें चेतनकी सिद्धि होत संतैं परके शरीरमें अनुमानतैं चैतन्य सिद्धि होय है ॥ १२ ॥

आगैं ता अनुमानकौं दिखावैं हैं—

परस्य जायते देहे, स्वकीय इव सर्वथा ।
चेतनो बुद्धिपूर्वस्य, व्यापारस्योपलब्धितः ॥ १३ ॥

अर्थ—परके देहविषैं चैतन्य निश्चयतैं बुद्ध होय है, जातैं बुद्धिपूर्वक व्यापारकी उपलब्धि है। जैसै अपने देहविषैं बुद्धिपूर्वक व्यापार होय तैसैं, यहु दृष्टांत है ॥ १३ ॥

जन्मपंचत्वयोरस्ति, न पूर्वपरयोरयम् ।
नैषा गीर्युज्यते तत्र, सिद्धत्वादनुमानतः ॥ १४ ॥

अर्थ—बहुरि जन्ममरणके पहले अर पीछैं यहु आत्मा नहीं है ऐसी वाणी युक्त नाही जातैं तहां अनुमानतैं सिद्धिपना है।

भावार्थ—जन्म मरणके पहले पीछैं आत्मा सिद्ध है ॥ १४ ॥

सोही कहैं हैं—

चैतन्यमादिमं नूनमन्यचैतन्यपूर्वकम् ।
चैतन्यत्वाद्यथा मध्यमंत्यमन्यस्य कारणम् ।। १५ ।।

अर्थ—आदिका चैतन्य है सो निश्चयकरि अन्य चैतन्यपूर्वक है, जातैं चैतन्यपना है जैसैं अन्यका कारण मध्यका चैतन्य अर अन्तका चैतन्य है तैसैं ।

भावार्थ—जीवकी मनुष्यादि नवीन पर्याय उपजै है सो जीव-द्रव्य अगली पर्याय छोड़करि नवीन धारण करै है सर्वथा असत् न उपजै है, जातैं चेतनपना है यहु हेतु है; जैसैं मध्यका चैतन्य वा अन्तका चैतन्य प्रत्यक्ष अन्य चैतन्यपूर्वक है तैसैं यहु दृष्टांत है। इहां प्रयोजन ऐसा है जो अगले पर्याय अपेक्षा पहला पर्याय कारण है अर पहले पर्याय अपेक्षा सो ही कार्यरूप है, अर द्रव्यदृष्टि करि सर्व एक ही वस्तु है न्यारा नाहीं। ऐसैं स्याद्वाद समझे यथार्थ ज्ञान होय है ।। १५ ।।

आगैं इस ही अर्थकौं पुष्ट करै हैं—

तत्रैव वासरे जातः, पूर्वकेणात्मना विना ।
अशिक्षितः कथं बालो, मुखमर्पयति स्तने ।। १६ ।।

अर्थ—पूर्व आत्मा विना नवीन ही आत्मा होय तौ तिस ही दिन विषैं भयो जो बालक सो विना सिखाया स्तनविषैं मुख कैसे लगावै है ।

भावार्थ—जो प्रथम आत्मा न होय अर नवीन ही उपज्या होय तो उपज्या सन्ता ही बालक दूध कैसैं चूखने लगी जाय है तातैं मनुष्यादि पर्याय नवीन उपजै है। जीवद्रव्य तौ अनादिनिधन ही है ऐसा निश्चय करना ।। १६ ।।

भूतेभ्योऽचेतनेभ्योऽयं, चेतनो जायते कथम् ।
विभिन्नजातितः कार्यं, जायमानं न दृश्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि भूत तिनतैं चेतन कैसैं उपजै है, जातैं भिन्न जातितैं कार्य उपज्या न देखिए है।

भावार्थ—जैसैं माटीतैं स्वजातीय घट तौ उपजै है परंतु विजातीय जो पट सो उपज्या न देखिए है तैसैं अचेतन पृथ्वी आदितैं अचेतन शरीरादि तौ उपजै परंतु चेतन जीव कैसे उपजै तातैं जीवकौं भूत-जनित कहना मिथ्या है ॥ १७ ॥

आगें दोय पक्ष पूछकरि जीवकें भूतजनितपनकौं निराकरण करै है;—

प्रत्येकं युगपद्वेभ्यो, भूतेभ्यो जायते भवी ।
विकल्पे प्रथमे तस्य, तावत्त्वं केन वार्यते ॥ १८ ॥
विकल्पे सद्वितीयेऽपि, कथमेकस्वभावकः ।
भिन्नस्वभावकैरेभि, र्जन्यते वद चेतनः ॥ १९ ॥

अर्थ—आचार्य पूछैं हैं जीव है सो पृथ्वी आदि भूतनितैं प्रत्येक न्यारे न्यारे उपजै है कि युगपत् एकठा ही उपजै है; सो न्यारा न्यारा उपजै है ऐसा प्रथम विकल्प कहेगा तौ तिस जीवकैं तावन्मात्रपना कौन करि निवारिए है।

भावार्थ—पृथ्वी आदि न्यारे न्यारेनित जीव उपजै तौ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन इनि विषै कोई एकका ही स्वभाव लीए जीव होय सो बनै नाहीं ॥ १८ ॥

बहुरि युगपत् एक ही कर उपजै है ऐसा दूसरा विकल्प ग्रहण करेगा तौभी न्यारे न्यारे है स्वभाव जिनके ऐसे पृथ्वी आदि भूत तिनकरि एकस्वभाव चेतन कैसैं उपजाइए है सो कहिए।

भावार्थ—पृथ्वी आदि अनेक स्वभाव हैं तिनतैं एकस्वभाव चेतन्यका उपजना बनै नाहीं। ऐसैं दोष पक्ष पूछ करि निषेद किया ॥ १९ ॥

आगैं फेर वादी कहै है,—

चेतनोऽचेतनेभ्योऽपि, भूतेभ्यो न विरुध्यते ।
भिन्नानां मौक्तिकादीनां, तोयादिभ्योऽपि दर्शनात् ॥ २० ॥

अर्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि भूत तिनतें चेतन हैं सो नाहीं विरोधकौं प्राप्त होय हैं, जातें भिन्न जे मुक्ताफल आदि तिनका जलादिकतें भिन्न दर्शन है।

भावार्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि तिनतें चेतनके उपजनेमें किछू विरोध नाहीं जातैं जलादि न्यारे जाति हैं तिनतैं मोती न्यारे जाति उपजते देखिए है। २० ॥

ताकूं आचार्य कहैं हैं—

तदयुक्तं यतो मुक्ता, तोयादीनां विलोक्यते ।
एका पौद्गलिकी जाति, र्भिन्नताऽन: कुतस्तनी ॥ २१ ॥

अथ—जो तूने कहा कि मुक्ताफलादिक अर जलादिक इनिकी भिन्न जाति है सो अयुक्त है, जातैं मुक्ताफल अर जल इत्यादिकनिकी एक पुद्गलसम्बन्धिनी जाति देखिए है इस कारणतैं तिनतैं भिन्नता काहेकी।

भावार्थ—मुक्ताफल जलादिक इत्यादिकनिकी एक जाति है, तातैं पुद्गलतैं पुद्गलका ही पर्याय भया किछू जीवतौ न उपज्या तातैं तेरा दृष्टांत विषम है ऐसा जानना ॥ २१ ॥

यत: पिष्टोदकादिभ्यो, मदशक्तिरचेतना ।
संभूताऽचेतनेभ्योऽतो, दृष्टांतस्ते न चेतने ॥ २२ ॥

अर्थ—जातैं अचेतन चून गुड आदितैं अचेतन ही मदशक्ति

प्रगट होय है तातैं तेरा यहु दृष्टांत चेतनकैं विषैं नहीं लगि सकै है ॥२२॥

न शरीरात्मनोरैक्यं, वक्तव्यं तत्ववेदिभिः।
शरीरे तदवस्थेऽपि, जीवस्यानुपलब्धितः॥ २३॥

अर्थ—तत्वकौं जाननेवारे पुरुषनिकरि शरीर आत्माकूं एक कहना योग्य नाहीं, जातैं शरीरकौं तहां अवस्थित होतैं भी बाकी अनुपलब्धि है अप्राप्ति है।

भावार्थ—जीव परलोककूं जाय है तब शरीर इहां रहि जाय है अर जीव न देखिए है तातैं शरीर जीव एक नाहीं ऐसा निश्चय करना ॥ २३ ॥

आगैं विज्ञानाद्वैतका निषेध करै है—

ज्ञानं विहाय नात्मास्ति, नेदं वचनमंचितम्।
ज्ञानस्य क्षणिकत्वेन स्मरणानुपपत्तितः॥ २४ ॥

अर्थ—ज्ञान बिना और आत्मा नाहीं ऐसा कहना सत्यार्थ नाहीं, जातैं ज्ञानके क्षणिकपने करि स्मरणकी अनुपपत्ति है।

भावार्थ—पर्यायका एकान्त पकडि करि विज्ञानाद्वैतवादी कहैं हैं—निरंश अर क्षणिक एक ज्ञान ही है या सिवाय और आत्म वस्तु नाहीं ताकौं आचार्यने कह्या जो ऐसा है तौ "पूर्वै मैंने जान्याथा सो अब जानूं हूं" ऐसा स्मरण न ठहरैगा, तातैं अनंतधर्मका समुदायरूप अनादिनिधन आत्मा कथंचित् ज्ञानतैं न्यारा मानना योग्य है ॥२४॥

आगैं ब्रह्माद्वैतकौं निषेधैं हैं—

नात्मा सर्वगतो वाच्यस्तत्स्वरूपविचारिभिः।
शरीरव्यतिरेकेण येनासौ दृश्यते न हि॥ २५ ॥

अर्थ—तिस आत्मस्वरूपके विचारनेवाले पुरुषनि करि सर्वव्यापी आत्मा कहना योग्य नाहीं जा कारण करि यहु आत्मा शरीरतैं न्यारा नहीं देखिए है।

भावार्थ—सर्वव्यापी आत्मा मानै है सो मिथ्या है, जातैं शरीरके बाहिर आत्मा न दीखै है ॥ २५ ॥

आगैं दोय पक्ष पूछकरि निषेध करैं हैं—

> शरीरतो बहिस्तस्य, किं ज्ञानं विद्यते न वा ।
> विद्यते चेत्कथं तत्र, कृत्याकृत्यं न बुध्यते ॥ २६ ॥
> यदि नास्ति कुतस्तस्य, तत्र सत्तावगम्यते ।
> लक्षणेन विना लक्ष्यं, न क्वापि व्यवतिष्ठते ॥ २७ ॥

अर्थ—शरीरके बाहिर तिस आत्माका ज्ञान है कि नाहीं है, जो शरीरके बाहिर ज्ञान है तो तहां करनेयोग्य न करनेयोग्य क्यों न जानिए है ॥ २६ ॥

अर जो शरीरके बाहिर ज्ञान नहीं है तौ तहां शरीरके बाहिर तिस आत्माकी सत्ता काहेतैं कहिए है जातैं लक्षण विना लक्ष्य कभी न तिष्ठै है ।

भावार्थ—ज्ञान लक्षण है आत्मा लक्ष्य है सो जहां लक्षण नाहीं तहां लक्ष्य भी नाहीं, तातैं सर्वव्यापी आत्मा कहना मिथ्या है ॥२७॥

अर्थ—बहुरि सबनिका एक ही आत्मा है ऐसैं कहना युक्त नाहीं, जातैं जन्म मरण सुख दुःख इनि न्यारे न्यारेनिका उपलंभ है।

> सर्वेषामेक एवात्मा, युज्यते नेति जल्पितुम् ।
> जन्ममृत्युसुखादीनां, भिन्नानामुपलब्धितः ॥ २८ ॥

अर्थ—बहुरि सबनिका एक ही आत्मा है ऐसैं कहना युक्त नाहीं, जातैं जन्म मरण सुख दुःख इनि न्यारे न्यारेनिका उपलंभ है।

भावार्थ—जन्म मरण सुख दुःख इत्यादि सबनिकैं न्यारे न्यारे देखिए हैं तातैं सबनिका एक आत्मा कहना मिथ्या है ॥ २८ ॥

न वक्तव्योऽणुमात्रोऽयं, सर्वैर्येनानुभूयते ।
अभीष्टकामिनीस्पर्शे, सर्वांगीणः सुखोदयः ॥ २९ ॥

अर्थ—बहुरि यहु आत्मा अणुमात्र है ऐसा कहना योग्य नाहीं, जा कारण करि वांछित स्त्रीके स्पर्श विषैं सर्वांगतैं उपज्या सुखका उदय सबनिकरि अनुभव कीजिए है।

भावार्थ—स्त्रीके स्पर्शविषैं सुखका उपजना सर्व अंगविषैं प्रत्यक्ष देखिए है तातैं अणुमात्र आत्मा कहना है सो मिथ्या है ॥ २९ ॥

समीरणस्वभावोऽयं, सुन्दरा नेति भारती ।
सुखज्ञानादयो भावाः, संति नाचेतने यतः ॥ ३० ॥

अर्थ—बहुरि वह कहै है जो यहु सर्वांग सुख होना है सो पवनका स्वभाव है ताकूं आचार्य कहैं हैं ऐसी वाणी सुन्दर नहीं, जातैं सुख ज्ञान इत्यादि चेतन भाव हैं ते अचेतन पवनविषैं नाहीं हैं ॥ ३० ॥

न ज्ञानविकलो वाच्यः, सर्वथात्मा मनीषिभिः ।
क्रियाणां ज्ञानजन्यानां, तत्राभावप्रसंगतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—बहुरि ज्ञानरहित आत्मा पंडितनि करि सर्वथा कहना योग्य नाहीं जातैं तिस आत्मविषैं ज्ञान जनित क्रियानिका अभावका प्रसंग टहरै है।

भावार्थ—ज्ञानरहित आत्मा होय तौ ज्ञानजनित क्रियाका अभाव आवै अर ज्ञानजनित क्रिया आत्माविषैं देखिए ही है, तातैं ज्ञानरहित आत्मा कहना मिथ्या है ॥ ३१ ॥

प्रधानज्ञानतो ज्ञानी, वाच्यो ज्ञानशालिभिः ।
अन्यज्ञानेन न ह्यन्यो, ज्ञानी क्वापि विलोक्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—बहुरि प्रधान ज्ञानकरि आत्मज्ञानी है ऐसा ज्ञानवन्तनि करि कहना योग्य नाहीं, जातैं और केवलज्ञान करि और ज्ञानी कहूँ भी न देखिए है ॥ ३२ ॥

बहुरि कहै हैं:—

न शुद्धः सर्वथा जीवो, बन्धाभावप्रसंगतः ।
न हि शुद्धस्य मुक्तस्य, रेश्यते कर्मबन्धनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—सर्वथा जीव शुद्ध नाहीं जातैं बंधके अभावका प्रसंग आवै है, शुद्ध मुक्त जीवकैं कर्मबन्धन नहीं देखिए है ।

भावार्थ—सर्वथा शुद्ध जीव होय तौ बन्धका अभाव ठहरै, पुण्य पापरूप कर्मबन्ध कौनकैं होय ? रागादिक भाव कौनकैं होय ? तातैं सर्वथा जीवकौं शुद्ध कहना मिथ्या है ॥ ३३ ॥

प्रधानेन कृते धर्मे, मोक्षभागी न चेतनः ।
परेण विहिते भोगे, तृप्तिभागी कुतः परः ॥ ३४ ॥

अर्थ—बहुरि वह कहै है धर्म प्रधान करै है आत्मा तौ शुद्ध अकर्ता ही है ताकूँ आचार्य कहै हैं-प्रधानकरि धर्मकौं करते सन्ते चेतन मोक्षगामी न होय जातें और करि भोग किए संते और तृप्ति भजनेवाला कैसैं होय ?

भावार्थ—जैसें भोग और भोगै अर सुखी और ऐसो बनै नाही तैसें प्रधान तौ धर्म करैं अर चेतनका मोक्ष होय ऐसी बनें नाहीं ॥ ३४ ॥

प्रधानं यदि कर्माणि, विधत्ते मुंचते यदि ।
किमात्माऽनर्थकः सांख्यैः, कल्प्यते मम कथ्यताम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो प्रधान कर्मनिकौं करै है अर त्यागै है, बन्ध मोक्ष प्रधानकैं होय है, तो सांख्यमतवालेनि करि निष्प्रयोजन आत्मा क्यों कल्पिए है ? तो मोकूँ कहिए ॥ ३५ ॥

न ज्ञानमात्रतो मोक्षस्तस्य जातूपपद्यते ।
भैषज्यज्ञानमात्रेण न व्याधिः क्वापि नश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—सांख्यमती कहै है द्वैतरूप भ्रम करि भया जो बंध सो

अद्वैतके ज्ञान मात्र करि नसि जाय है, ताकौं आचार्य कहै है—तिस सांख्यके ज्ञानभावतें मोक्ष कदाचित् न प्राप्त होय है जैसें औषधिके ज्ञान करि रोग कहूँ नहीं विनसै है।

भावार्थ—जैसें औषधिका जानना अर प्रतीति अर आचरण तीनों ही भावनि करि रोग विनसै है सुखी होय है, अर केवल जानना वा केवल प्रतीति करना वा केवल आचरण करना इन न्यारे न्यारेनि करि रोग न विनसै है सुखी न होय है तैसें ज्ञान दर्शन चारित्र तीनोंकी एकता करि बंध नसि मोक्ष होय है ज्ञानादिक न्यारे न्यारेन करि बंध नसि मोक्ष न होय है ऐसा निश्चय करना ॥ ३६ ॥

आगैं ज्ञानकौं प्रधानका धर्म मानै है ताका निवेदन करै हैं:—

अचेतनस्य न ज्ञानं, प्रधानस्य प्रवर्त्तते।
स्तम्भकुम्भादयो दृष्टा, न क्वापि ज्ञानयोगिनः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अचेतन प्रधानकैं ज्ञान नाहीं प्रवर्तै है, जातैं स्तम्भ घट इत्यादि अचेतन पदार्थ हैं ते ज्ञानसहित कहूं भी न देखे ॥ ३७ ॥

फेर कहैं हैं;—

उक्त्वा स्वयमकर्त्तारं, भोक्तारं चेतनं पुनः।
भाषमाणस्य सांख्यस्य न ज्ञानं विद्यते स्फुटम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—आप ही अचेतनकौं अकर्त्ता कहकरि बहुरि चेतनकौं भोक्ता कहता जो सांख्य ताकूं ज्ञान प्रगट नाहीं हैं, अज्ञानी है।

भावार्थ—सांख्य आत्माकूं आप ही अकर्त्ता कहै बहुरि ताहीकूं भोक्ता बतावै सो यहु प्रगट अज्ञान है तातैं अन्य करै अन्य भोगै यह बात असंभव है ॥ ३८ ॥

आगैं सर्व गुणरहित होय सो मोक्ष है ऐसे श्रद्धानकूं निषेधै हैं;—

सकलैर्न गुणैर्मुक्तः, सर्वथात्मोपपद्यते।
न जातु दृश्यते वस्तु, शशशृङ्गमिवागुणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—समस्त गुणनिकरि रहित सर्वथा आत्मा न होय है जातैं शशाके शृंगकी ज्यौं निर्गुण वस्तु कदापि न देखिए है।

भावार्थ—गुणका समूह ही गुणी है अर सर्वथा गुणका अभाव होतैं गुणीका भी अभाव है तातैं गुणरहित मोक्ष कहना मिथ्या है॥ ३९॥

आगैं ज्ञानका अर ज्ञानीका सर्वथा भेद मानै है ताका निषेध करै हैं,—

> न ज्ञानज्ञानिनोर्भेदः, सर्वथा घटते स्फुटम्।
> संबंधाभावतो नित्यं, मेरुकैलाशयोरिव॥ ४०॥

अर्थ—सम्बन्धके अभावतैं सर्वथा सुमेरु अर कैलाशकी ज्यौं प्रगटपनें ज्ञान और ज्ञानीका सर्वथा भेद बनै है।

भावार्थ—जैसैं मेरु अर कैलाश भेदरूप हैं तिनका सम्बन्धका अभाव है तैसैं ज्ञानका अर ज्ञानीका भेद मानें सम्बन्धका अभाव आवै है॥ ४०॥

बहुरि कहैं हैं जो समवायकरि संबंध होय है ताका निषेध करैं हैं;—

> समवायेन संबंधः, क्रियमाणो न युज्यते।
> नित्यस्य व्यापिनस्तस्य, सर्वत्राप्यविशेषतः॥ ४१॥

अर्थ—समवायकरि कराया भया संबंध नाहीं युक्त होय है, जातैं नित्य अर व्यापक जो समवाय ताका सर्वत्र अविशेष है।

भावार्थ—नैयायिक समवाय पदार्थकौं नित्य अर व्यापक मानै है ताकौं आचार्य कहै है;—

जो समवायकरि आत्मा अर ज्ञानका सम्बन्ध होय है तो घट-पटादि अचेतन पदार्थ विषैं ज्ञानका सम्बन्ध क्यों न भया? समवाय तौ नित्य अर व्यापक भया भेद रहित मानै है अर घटपटादि विषैं

समवायका भेद मानैगा तौ नित्य व्यापक समवाय कहना न बनैगा तातैं समवाय करि सम्बन्ध मानना मिथ्या है ॥ ४१ ॥

आगैं आत्माकैं समवायकैं तिस सर्वथा नित्यपनामें वा अनित्यपनामें दूषण दिखावैं हैं;—

नित्यताऽनित्यता तस्य, सर्वथा न प्रशस्यते ।
अभावादर्थनिष्पत्तेः, क्रमतोऽक्रमतोऽपि वा ॥ ४२ ॥

अर्थ—तिस समवायकैं सर्वथा नित्यपना वा अनित्यपना न सराहिए है जातैं क्रमसैं वा युगपत अर्थकी उत्पत्तिका अभाव है ।

भावार्थ—समवायकों सर्वथा नित्य माननेमें क्रमसैं वा युगपत अर्थ क्रियाका अभाव आवै है ॥ ४२ ॥

सो ही दिखाइए हैं—

न नित्यं कुरुते कार्यं, विकारानुपपत्तितः ।
नानित्यं सर्वथा नष्टमारोग्यं मृतवैद्यवत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—नित्य है सो कार्यकों न करै है जातैं नित्यकै अवस्था जो विकार विशेषताकी अनुपपत्ति है, बहुरि अनित्य सर्वथा विनाशरूप सो भी कार्यकों न करै है जैसैं मृत वैद्य नीरोगपनेंकों न करै तैसैं, जो आप ही नसि गया सो कार्य कैसैं करैं, तातैं नित्य वा अनित्य दोउ एकांत मिथ्या है ॥ ४३ ॥

आगैं अमूर्त्तीकपनेंको एकांतकों निषेध करै है—

नामूर्त्तः सर्वथा युक्तः, कर्मबंधप्रसंगतः ।
नभसो न ह्यमूर्त्तस्य, कर्मलेपो विलोक्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—सर्वथा आत्मा अमूर्त्तिक कहना युक्त नांही, जातैं कर्मबन्धका प्रसंग आवै है । बहुरि अमूर्त्तीक आकाशकै कर्मनिका लेप न है विलोकिए है ।

भावार्थ—आकाशवत् सर्वथा संसारी जीव मुक्त होय तौ जैसे आकाशकै कर्मलेप नांही तस आत्माके भी कर्मबन्ध न ठहरै तातैं सर्वथा अमूर्त्त मानना मिथ्या है ॥ ४४ ॥

स यतो बंधतो भिन्नो, भिन्नो लक्षणतः पुनः।
अमूर्त्तता ततस्तस्य, सर्वथा नोपपद्यते ॥ ४५ ॥

अर्थ—जातैं सा आत्मा बंधतैं कथंचित् अभिन्न है बहिर लक्षण करि भिन्न है तातैं तिस आत्माकै सर्वथा अमूर्त्तपना नांही सिद्ध होय है।

भावार्थ—बंधका लक्षण जड़ता है आत्माका लक्षण चैतन्य है ऐसै लक्षण भेद करि आत्मा अर बंध भिन्न है तथापि बंध दृष्टि करि अभिन्न है जातैं बंधका निमित्त पाय आत्माकै क्रिया होय है अर आत्माका निमित्त पाप बंधका परिणमन होय है, ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध देखिए है, तातैं सर्वथा संसारी जीवकौं अमूर्त्त मानना योग्य नांही ॥ ४५ ॥

निर्बाधोऽस्ति ततो जीवः, स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः।
कर्ता भोक्ता गुणी सूक्ष्मो, ज्ञाता द्रष्टा तनुप्रमा ॥ ४६ ॥

अर्थ—तातैं जीव है सो बाधारहित है, इस विशेषण करि शून्यवादका निराकरण किया, बहुरि स्थिति उत्पत्ति विनाश स्वरूप है।

भावार्थ—क्रमभावी पूर्व पर्यायका नाश होय है उत्तर पर्याय उपजै है भावी पर्याय करि स्थिर है ऐसैं युगपत तीनों ही धर्म करि युक्त है, इस ही विशेषण करि सर्वथा नित्य कूटस्थ कहनेवालोंका निराकरण किया। बहुरि निश्चय करि चैतन्य भावनिका व्यवहार करि पुद्गल कर्मनिका कर्ता है अर भोक्ता है इस विशेषण करि सर्वथा अकर्त्ता वा अभोक्ता माननेवालेका निराकरण किया। बहुरि सूक्ष्म है

ग्रहणमैं न आवै है इस विशेषण करि शरीर रूप आत्मा माननेवाले- निका निराकरण किया। बहुरि जाननेवाला देखनेवाला है इस विशेषण करि ज्ञान दर्शनतैं भिन्न आत्मा माननेवालेनिका निराकरण किया ॥ ४६ ॥

स्थिते प्रमाणतो जीवे, परेऽप्यार्थाः स्थिता यतः।
क्रियमाणा ततो युक्ता, सप्ततत्वविचारणा ॥ ४७ ॥

अर्थ—जातैं जीवकौं प्रमाणतैं सिद्ध होत सन्तैं और भी पदार्थ हैं ते सिद्ध हैं तातैं करी नई जो सप्ततत्वनिकी विचारणा सो युक्त है।

भावार्थ—या प्रकार पूर्वोक्त प्रमाणतैं जीवकौं सिद्ध होत संतैं और भी पदार्थ सिद्ध होय हैं तातैं जीवकै विकार हेतु अजीव है अर दोऊनके पर्याय आश्रवादि पंच तत्व और हैं ते सिद्ध भये। तब प्रथम वादीनै कह्या था जो जीव ही नांही, तत्वका विचार करना निरर्थक है; ऐसैं कहनेका निराकरण भया ॥ ४७ ॥

आगैं सर्वज्ञका अभाव मानैं हैं तिनका निराकरण करै हैं-तहां वादी अपना पक्ष कहै है—

परे वदंति सर्वज्ञो, वीतरागो न दृश्यते।
किंचिज्ज्ञत्वादशेषाणां, सर्वदा रागवत्त्वतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और केई कहैं हैं सर्वज्ञ वीतराग नाहीं देखिए है जातैं सबनिकै किंचित् जानपना है अर सदाकाल रागवानपना है।

भावार्थ—कोउ सर्वज्ञ वीतराग नाहीं जातें सब जीव अल्पज्ञ वा सरागी देखिए है ॥ ४८ ॥

आगैं ताका निषेध करै है:—

तदयुक्तं वचस्तेषां, ज्ञानं सर्वार्थगोचरम्।
न विना शक्यते कर्तुं सर्वेषु ज्ञानवारणम् ॥ ४९ ॥

समस्ता: पुरुषा येन, कालत्रितयवर्त्तिन: ।
निश्चिता: स नर: शक्त:, सर्वज्ञस्य निषेधने ॥ ५० ॥

अर्थ—वो पूर्वोक्त वचन तिनका अयुक्त है जातैं सर्व पदार्थ हैं विषय जाके ऐसे ज्ञान विना सवनिविषैं ज्ञानका निषेध करनेकौं समर्थ नाही है, जानैं कालत्रयवर्त्ती समस्त पुरुष निश्चय किये होय सो सर्वज्ञके निषेध करनेमैं समर्थ होय ।

भावार्थ—त्रिकालवर्त्ती समस्त पुरुषनिकौं जो जानता होय सो सर्वत्र सर्वज्ञका निषेध करै सो ऐसा जाननेवाला तू मानै नाहीं, अर मानै है तौ सोही सर्वज्ञ भया । तातैं सर्वज्ञ वीतरागका निषेध करना मिथ्या है ॥ ५० ॥

न चाभावप्राणेन, शक्यते स निषेधितुम् ।
सर्वज्ञेऽतींद्रिये तस्य, प्रवृत्तिविगमत्वत: ॥ ५१ ॥

अर्थ—बहुरि सर्वज्ञ वीतराग है सो अभाव प्रमाणकरि भी निषेधनेकूं समर्थ न हूजिए है, जातैं अतींद्रिय जो सर्वज्ञ ता विषैं तिस अभाव प्रमाणकी प्रवृत्तिका अभाव है ।

भावार्थ—निषेधने योग्य अर न निषेधने योग्य वस्तुका आधार इन दोउनिका जाकै ज्ञान होय सो आधारविषैं आधेयकौं न देखि आधेयकौं निषेध अभावप्रमाणकरि करै है, जैसैं कोऊ पृथ्वी अर घट दोऊनिकौ जानै है सो पृथ्वीविषैं घटकौं न देखि अभाव प्रमाणकरि घटका निषेध करै जो इहां पृथ्वीविषैं घट नाहीं, सो सर्वज्ञ अतींद्रिय है ता विषैं ऐसे अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति नाहीं, ऐसे अभाव प्रमाणकरि सर्वज्ञका निषेध करना मिथ्या है ॥ ५१ ॥

प्रमाणाभावतस्तस्य, न च युक्तं निषेधनम् ।
अनुमानप्रमाणं हि साधकं तस्य विद्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—बहुरि प्रमाणके अभावतैं तिस सर्वज्ञका निषेध योग्य नाहीं, जातैं तिस सर्वज्ञका साधनेवाला अनुमान प्रमाण है।

भावार्थ—सर्वज्ञाभाववादी कहै है—प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय सर्वज्ञ नाहीं जातैं इन्द्रियकरि सो जान्या जाय नाहीं। बहुरि अनुमानका भी विषय नाहीं जातैं सर्वज्ञका लिंग किछु दीखै नाहीं। बहुरि आगमभी ताका सद्भाव न साधे हैं जातैं आगम है सो तौ कर्मकांड-हीका कथन करै है ताकै सर्वज्ञके जाननेका अयोग है अर अनादि आगम सादि पुरुषका कहनेवाला बनैं नाहीं। बहुरि अनित्य आगम सर्वज्ञको साधै है सो तिस सर्वज्ञकरि कहे आगमके सर्वज्ञके निश्चय विना प्रमाणताका अनिश्चय है, बहुरि आगमकी प्रमाणता होतैं सर्वज्ञकी प्रमाणता होय अर सर्वज्ञकी प्रमाणता होतैं आगमकी प्रमाणता होय ऐसें इतरेतराश्रय दूषण भी आवै है, बहुरि सर्वज्ञप्रणीत अप्रमाण-भूत जो आगम ताकौ सर्वज्ञ कहना अत्यन्त असम्भव है। बहुरि सर्वज्ञ समान अन्य पदार्थका ग्रहणका असम्भव है तातैं उपमानप्रमाण भी सर्वज्ञका जनावनेवाला नाहीं। तातैं पांचौं ही प्रमाणका विषय न होतैं अभाव प्रमाणहीकी प्रवृत्ति है तातैं ताका अभाव ही आवै है, ताकौं आचार्य कहै है ऐसे निषेध करना युक्त नाहीं जातैं सर्वज्ञका साधक अनुमान विद्यमान है॥ ५२॥

सो ही अनुमान दिखावै है—

वीतरागोऽस्ति सर्वज्ञः, प्रमाणाबाधितत्वतः।
सर्वदा विदितः सद्भिः, सुखादिकमिव ध्रुवम्॥ ५३॥

अर्थ—संतनि करि सर्वदा जान्या ऐसा वीतराग सर्वका जाननेवाला है, जातैं प्रमाण करि अबाधितपना है निश्चय करि सुखादि-ककी ज्यौं।

भावार्थ—जैसैं सुखादिक स्वसंवेदन गोचर निर्बाध सिद्ध है तैसैं सर्वज्ञ वीतराग भी प्रमाणसिद्ध है ॥ ५३ ॥

सो ही कहै है—

क्षीयते सर्वथा रागः, क्वापि कारणहानितः।
ज्वलनो हीयते क्लिन्नः, काष्ठादीनां वियोगतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—कोई आत्माविषैं कारणकी हानितैं सर्व प्रकार भी राग क्षीण होय है; जैसैं काष्ठादिकके वियोगतैं क्लेशरूप अग्नि क्षीण होय है।

भावार्थ—जैसैं काष्ठादिकके अभावतैं अग्निका अभाव होय है तैसैं कर्मनिके अभावतैं रागका अभाव होय है। इहां अतिशायक हेतु दिया है कि कोईकै किंचित् कर्मके अभावतैं किछु रागादिकका अभाव देखिए है तौ कोईकै सर्व कर्मके अभावतैं सर्व रागकाभी अभाव होयगा, ऐसैं निश्चय किया है ॥ ५४ ॥

आगैं सर्वज्ञपनेंका निश्चय करावै है;—

प्रकर्षस्य प्रतिष्ठानं, ज्ञानं क्वापि प्रपद्यते।
परिमाणमिवाकाशे, तारतम्योपलब्धितः ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्ञान है सो कोई आत्मा विषैं प्रकर्ष जो वृद्धि ताकी प्रतिष्ठाकौं प्राप्त होय है जातैं तारतम्यकी उपलब्धि है जैसैं आकाश विषैं परिमाणकी वृद्धिकी हदकौं प्राप्त होय है तैसैं।

भावार्थ—जो तारतम्य पाइए है सो वृद्धिकी सीमाकौं प्राप्त भया भी पाइए तातैं अनुमान किया कि ज्ञानका अंश वधती वधती है तो ज्ञान अपनी वृद्धिकी हदकौं प्राप्त भया भी होयगा, जैसैं परमाणु एक *प्रदेशमात्रतैं वंधती है ताका उत्कृष्टपना सर्व आकाश विषैं है, यह* दृष्टांत दिया है ऐसा जानना ॥ ५५ ॥

प्रकर्षावस्थितिर्यत्र, विश्वदृश्वा स गीयते।
प्रणेता विश्वतत्त्वानां, कषिताशेषकल्मषः ॥ ५६ ॥

अर्थ—बहुरि जाविषें ज्ञानके बंधनेकी अवस्थिति है इह है सो विश्वदर्शी कहिये कैसा है सो समस्त तत्वनिका जाननेवाला है अर नाश किये हैं समस्त रागादिक जानें ऐसा है ॥ ५६ ॥

बोधंयमप्रतिबन्धस्य, बुध्यमानस्य न श्रमः ।
बाधस्य दहतो दह्यं, पावकस्येव विद्यते ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसैं दहने योग्य जो काष्ठादिक ताहि दहता जो अग्नि ताकै श्रम नाहीं है तैसैं ज्ञेयको जानता जो आवरणरहित ज्ञान ताकै श्रम नाहीं है ॥ ५७ ॥

अनुपदेशसंवादि, लाभालाभादिवेदनम् ।
समस्तज्ञमृतेऽन्यस्य, मिलिंगे शोभते कथम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—अंतरीक्ष दूरवर्त्ती पदार्थ अर लाभ अलाभ इत्यादिकका जानना सर्वज्ञविना औरकै उपदेशविषैं कैसै सोहै, न सोहै है ॥५८॥

आगैं वादी कहै हैं अपौरुषेयवेदतैं सर्वका उपदेश है। ताका निषेध करै है;—

अपौरुषेयतो युक्तमेतदागमतो न च ।
युक्त्या विचार्यमाणस्य सर्वथा तस्य हानितः ॥ ५९ ॥

अर्थ—बहुरि यह सर्वथा उपदेश है सो अपौरुषेय आगमतैं युक्त नाहीं, जातें युक्तिकरि विचारया भया तिस आगमकी सर्वथा हानि है।

भावार्थ—युक्ति करि अपौरुषेय आगम खंड्या जाय है॥५९॥

सो ही दिखावै है:—

आगमोऽकृत्रिमः कश्चिन्न कदाचन विद्यते ।
तस्य कृत्रिमतस्तस्माद्विशेषानुपलम्भतः ॥ ६० ॥

अर्थ—कोई आगम विना किया कदाच न होय है, जातें ताकै तिस करि भए आगमतें विशेषका अनुपलम्भ है ।

भावार्थ—जे शब्द वेदविषैं हैं तेही अन्य कृत्रिम आगमविषैं हैं दोउनिमैं किछू भेद दीसै नाहीं तातैं वेदकौं अकृत्रिम कहना मिथ्या है ॥ ६० ॥

आगैं फेर कहै है—

पश्यंतो जायमानं, यत्ताल्वादिक्रमयोगतः ।
वदंत्यकृत्रिमं चेदमाश्चर्यं किमतः परम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—तालु आदिके क्रमके योगतें उपजतेकौं देखते वेदकौं अकृत्रिम कहै है इसतें दूजा और कहा आश्चर्य है ।

भावार्थ—प्रत्यक्षकौं भी और प्रकार कहैं या सिवाय और आश्चर्य कहा ॥ ६१ ॥

आगैं वादी कहै है, अक्षर तौ त्रिलोकव्यापी नित्य ही हैं परंतु जब तिनकी प्रगट करनेवाली वायु प्रगटै है तब वर्ण प्रगट होय है । ताका आचार्य निषेध करै है—

त्रिलोकव्यापिनो वर्णा, व्यज्यंते व्यंजकैरिति ।
न समा भाषिणी भाषा, सर्वव्यक्तिप्रसंगतः । ६२ ॥

अर्थ—तीन लोकविषैं व्यापक जे अक्षर हैं ते व्यंजक जे प्रगट करनेवाले वायु तिनकरि प्रगट करिए है ऐसी बानी यथार्थ कहनेवाली नाहीं, जातें सर्व अक्षरनिकी व्यक्तिका प्रसंग आवै है ।

भावार्थ—त्रिलोकव्यापक जे सर्व वर्ण तिनकौं अभिव्यंजक वायु प्रगट करै है तौ जब वायु प्रगटै तब सर्व ही अक्षर सुनिविषैं आए चाहिए सो बनै नाहीं, तातें तू कहै है सो मिथ्या है ॥ ६२ ॥

एकत्र भाविनः केचित्, व्यज्यंते नापरे कथम् ।
न दीपव्यज्यमानानां, घटादीनामयं क्रमः ॥ ६३ ॥

अर्थ—बहुरि एक ठिकाने वर्त्तते जे वर्ण ते केई प्रगट करिए है

और प्रगट क्यों न करिए है, जातें दीपक करि प्रगट होते जे घटादिक तिनकै यह क्रम नाहीं

भावार्थ—दीपक है सो एकस्थानवर्त्ती घट पट आदि सर्वहीकों प्रकासै है, ऐसा नाहीं जो घटकों प्रकासै पटकों न प्रकासै तैसें वायु अक्षरनिकों प्रकासै है तौ सर्व ही कों प्रकासै, इहां तौ कोई अक्षर सुनिए है कोई न सुनिए है। तातें वायु अक्षरनिकों प्रकासै है ऐसा कहना बनै नाहीं ॥ ६३ ॥

फेर कहै है,—

व्यंजकव्यतिरेकेण, निश्चीयंते घटादयः ।
स्पर्शप्रभृतिभिर्जातु, न वर्णाश्च कथंचन ॥ ६४ ॥

अर्थ—घटादि पदार्थ है ते स्पर्शादिकनि करि व्यंजक बिना निश्चय करै है, बहुरि वर्ण हैं ते कदाचित् कोई प्रकार नाहीं निश्चय कीजिए हैं।

भावार्थ—घटादि पदार्थ हैं ते प्रगट करनेवाले विना ही स्पर्शादि करि निश्चय करिए है, अर सर्वव्यापी वर्ण नित्य हैं तिनका निश्चय कदाच कोई प्रकार भी न होय है। तातें सर्वव्यापक नित्य अक्षरनकों मानना मिथ्या है ॥ ६४ ॥

व्यज्यंते व्यंजकैर्वर्णा, न जन्यंते पुनर्ध्रुवम् ।
इत्यत्र विद्यते काचिन्न प्रमा वेदवादिनः ॥ ६५ ॥

अर्थ—व्यंजक कहिये प्रगट करनेवाले जे वायु तिनकरि वर्ण हैं ते प्रगट करिए हैं, बहुरि निश्चय करि उपजाइए नाहीं है ऐसी वेद-वादीकी प्रमाणता कोई इहां नाहीं विद्यमान होय है ॥ ६५ ॥

आगें फेर कहै है—

विना सर्वज्ञदेवेन, वेदार्थः केन कथ्यते ।
स्वयमेवेति नो वाच्यं, संवादित्वाप्रसंगतः ॥ ६६ ॥

अर्थ—आचार्य कहै है सर्वज्ञदेव विना वेदका अर्थ कौनकरि कहिए है। स्वयमेव कहिए है ऐसा कहना युक्त नाहीं जातैं भले वक्तापनाका अप्रसंग आवै है।

भावार्थ—सर्वज्ञ विना वेदका अर्थ कहना बनै नाहीं जातैं सर्वज्ञ विना औरका ज्ञान प्रमाण नाहीं और कौं और कहि देय, अर वेद आप ही अर्थ कहै है तौ ताका कोई वक्ता न ठहरा, तब यह अर्थ है यह अर्थ नहीं है ऐसी कौन कहै जातैं वेद तौ जड़ है तातैं स्वयमेव अर्थ कहना मिथ्या है ॥ ६६ ॥

> न पारंपर्यतो ज्ञानं, सर्वज्ञानां प्रवर्त्तते ।
> समस्तानामिवांधानां, मूलज्ञानं विना कृतम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—बहुरि वह कहै है जो असर्वज्ञनिका ज्ञान परंपरायतैं सत्यार्थ प्रवर्त्तै है। ताकूं आचार्य कहै है—जो सर्व असर्वज्ञनिका ज्ञान परम्परायतैं न प्रवर्त्तै है, जैसैं समस्त अन्धेनिका मूलज्ञान कह्या विना कार्य न प्रवर्त्तै तैसैं।

भावार्थ—बहुत भी अन्धे पुरुष परम्परायतैं चलैं तौभी मूलज्ञान विना वांछित स्थान पावै नाहीं तैसैं परंपरायतैं भी अल्पज्ञानीनिको वचन प्रमाण नाहीं ॥ ६७ ॥

> कृत्रिमेष्वप्यनेकेषु, न कर्त्ता स्मर्यते यतः ।
> कर्तृस्मरणतो वेदो, युक्तो नाकृत्रिमस्ततः ॥ ६८ ॥

अर्थ—बहुरि वह कहै है जो वेदकौं कर्त्ता काहूकै स्मरण नाहीं तातैं वेद अकृत्रिम है। ताकूं आचार्य कहै है—जो ऐसा नाहीं जातैं अनेक करे पदार्थनिविषैं भी कर्त्ता स्मरण न कीजिए है, अथवा ताके कर्त्ताके स्मरणतैं वेद कृत्रिम युक्त है।

भावार्थ—कोई कहै वेदके कर्ताको याद नाही तातैं अकृत्रिम

है, ताकूं कहा है । जो ऐसे तौ पुराने मंदिर वा करे भए मोती इत्यादिकका भी कर्त्ताकी याद नाहीं ते भी अकृत्रिम ठहरे। बहुरि वेदके तौ कर्त्ता भी ब्रह्मादिक कहे हैं तातैं भी कृत्रिम वेद ठहरे। तातैं अकृत्रिम वेद कहना मिथ्या है ॥ ६८ ॥

हिंसादिवादकत्वेन, न वेदो धर्मकांक्षिभिः ।
वृकोपदेशवन्नूनं, प्रमाणीक्रियते बुधैः ॥ ६९ ॥

अर्थ—धर्मके वांछक पंडितनि करि हिंसादिकके उपदेशपनेंं जो खारपट ताके उपदेशकी ज्यौं वेद है सो प्रमाण करना योग्य नाहीं ॥ ६९ ॥

वीतरागश्च सर्वज्ञो, जिन एवावशिष्यते ।
अपरेषामशेषाणां, रागद्वेषादिदृष्टितः ॥ ७० ॥

अर्थ—वीतराग अर सर्वज्ञ ऐसा जिनेन्द्र ही एक न्यारा कीजिए है जातैं और सर्वनिकै रागद्वेषादि दीसै है ॥ ७० ॥

न विरागा न सर्वज्ञा, ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
रागद्वेषमदक्रोधलोभमोहादियोगतः ॥ ७१ ॥

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु महेश्वर हैं ते न वैरागी हैं न सर्वज्ञ हैं, जातैं रागद्वेष मद क्रोध लोभ मोह इत्यादिक सहित हैं तातैं ॥ ७१ ॥

रागवन्तो न सर्वज्ञा, यथा प्रकृतिमानवाः ।
रागवन्तश्च ते सर्वे, न सर्वज्ञास्ततः स्फुटम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—रागसहित हैं ते सर्वज्ञ नाहीं जैसैं संसारी मनुष्य हैं तैसैं, बहुरि जे ब्रह्मादिक हैं ते सर्व रागसहित हैं यातैं ते प्रगटपनें सर्वज्ञ नांही ॥ ७२ ॥

आश्लिष्टास्तेऽखिलैर्दोषैः, कामकोपभयादिभिः ।
आयुधप्रमदाभूषाकमंडल्वादियोगतः ॥ ७३ ॥

अर्थ—ब्रह्मादिक हैं ते कामक्रोधभय इत्यादिक समस्त दोषनि करि युक्त हैं, जातैं आयुध स्त्री आभूषण कमंडल इत्यादि सहित हैं ॥ ७३ ॥

प्रमदा भाषते कामं, द्वेषमायुधसंग्रहः ।
अक्षसूत्रादिकं मोहं, शौचाभावं कमंडलुः ॥ ७४ ॥

अर्थ—स्त्री तौ कामकौं कहै है अर आयुधका धारण द्वेषभावकौं जनावै है अर माला यज्ञोपवीतादिक मोहकौं दिखावै है अर पवित्रपनेका अभावकौं कमंडलु दिखावै है ।

भावार्थ—जो कामादिक विकार न होय तौ स्त्री आदि काहेकौं राखै, तातैं स्त्री आदि हैं ते कामादिविकारनिकौं ब्रह्मादिकनिमैं प्रगट दिखावै है ऐसा जानना ॥ ७४ ॥

आगैं पुरुषाद्वैतवादी कहै है ताका निषेध करै है—

परमः पुरुषो नित्यः, सर्वदोषैरपाकृतः ।
तस्यैतेऽवयवाः सर्वे, रागद्वेषादिभाजिनः ॥ ७५ ॥
नैवाधिरोचते भाषा, विचारोद्यतचेतसाम् ।
रागित्वेऽवयवानां हि, नीरागोऽवयवी कुतः ॥ ७६ ॥

अर्थ—परवादी कहै हैं जो पुरुष नित्य है सो सर्व दोषनि करि रहित है बहुरि ताके ये ब्रह्मादिक सर्व अंग हैं ते रागद्वेष भजनेवाले हैं ॥ ७५ ॥

ताकूं आचार्य कहै है—यह वाणी विचार विषैं उद्यमी है चित्त जिनके ऐसे पुरुषनकौं नहीं रुचै है, जातैं अंगनिकै रागीपना होतैं अंगी वीतराग कैसैं होय ॥ ७६ ॥

आगैं वैशेषिक लोकका कर्त्ता ईश्वरकौं मानै है ताका निषेध करै है । तहां वह अपना पक्ष कहै है—

बुद्धिमद्धेतुकं विश्व, कार्यत्वात्कलशादिवत्।
बुद्धिमांस्तस्य यः कर्त्ता, कथ्यते स महेश्वरः॥ ७७॥
न विना शंभुना नून, देहद्रुमनगादयः।
कुलालेनेव जायंते, विचित्राः कलशादयः॥ ७८॥
ततोऽस्ति जगतः कर्त्ता, विश्वदृश्वा महेश्वरः।
वचनं युज्यते नेदं, चिंत्यमानं विचक्षणैः॥ ७९॥

अर्थ—विश्व है सो बुद्धिमान है हेतु (कारण) जाका ऐसा है।

भावार्थ—बुद्धिमानके निमित्ततैं उपज्या है, जातैं लोकके कार्यपना है, जो जो कार्य है सो सो बुद्धिमानके निमित्ततैं उपजै है जैसैं घटादिक। बहुरि ता लोकका जो बुद्धिमान कर्त्ता है सो महेश्वर कहिए है॥ ७७॥

जैसैं कुम्हार विना विचित्र घटादिक न उपजै तैसैं ईश्वर विना शरीर वृक्ष पर्वत इत्यादिक है ते निश्चय करि न उपजै है॥ ७८॥

तातैं जगतका कर्त्ता सर्वदर्शी महेश्वर है। अब ताकूं आचार्य कहै है—यहु वचन पंडितनिकरि विचार्‌या भया युक्त न होय है॥७॥

सो ही कहैं हैं—

कार्यत्वादित्ययं हेतुस्तस्य साधयते यथा। बुद्धिमत्त्वं तथा तस्य, देहवत्त्वमपि ध्रुवम्॥ ८०॥ नाशरीरी मया दृष्टः, कुम्भकारः कचित् यतः। कुलालस्तस्य दृष्टांतस्ततो ब्रूते सदेहताम्॥ ८१॥ सदेहस्य च कर्तृत्वे, सोऽस्मदादिसमो यतः। दृश्यतां प्रतिपद्येत, कुम्भकारादिवत्ततः॥ ८२॥ भुवनं क्रियते तेन, विनोपकरणैः कथम्। कृत्वा निवेश्यते कुत्र, निरालम्बे विहायसि॥ ८३॥ विचेतनानि भूतानि, सिसृक्षावशतः कथम्। विनिर्माणाय विश्वस्य, वर्त्तते तस्य कथ्यताम्॥ ८४॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो ऐसा यह कार्य हेतु है सो तो

ईश्वरके जैसैं बुद्धिमानपना साधे है तैसैं देहवानपना भी निश्चयकरि साधे है ॥ ८० ॥

जातैं कुम्भकार मैंनें कहूँ शरीररहित न देख्या तातैं कुलाल दृष्टांत है सो ता ईश्वरकै सदेहपनेंकौं कहै है ॥ ८१ ॥

बहुरि देहसहितकै कर्त्तापनां होतसन्तैं हम आदि सरीसा भया जातैं सो ईश्वर कुम्भकारादिककी ज्यों देखने योग्यपनेंकौं प्राप्त भया तातैं ॥ ८२ ॥

बहुरि उपकरणविना ताकरि लोक कैसैं करिए है, बहुरि करिकैं निराधार आकाशविषैं कहां धरिए है ॥ ८३ ॥

बहुरि वह कहै है—जो ताकी उपजावेकी इच्छा होतैं पृथ्वी आदि हैं ते लोककौं रचै हैं, ताकूँ कहिए है;—जो ताकी उपजायवेकी इच्छाके वशतैं पृथ्वी आदि भूत अचेतन हैं ते लोकके वनावनेके अर्थि कैसैं प्रवर्तैं है सो कहि। तातैं लोकका कर्त्ता ईश्वर मानना मिथ्या है ॥ ८४ ॥ आगैं बौद्धका निषेध करै है;—

बुद्धोऽपि न समस्तज्ञः, कथ्यते तथ्यवादिभिः।
प्रमाणादिविरुद्धस्य, शून्यत्वादेर्निवेदनात् ॥ ८५ ॥

अर्थ—बहुरि तथ्यवादीनि करि बुद्ध भी सर्वज्ञ न कहिए है, जातैं प्रमाणादि करि विरुद्ध ऐसा शून्यपना आदि जनावै है तातैं ॥ ८५ ॥

प्रमाणेनाप्रमाणेन, सर्वशून्यत्वसाधने।
सर्वस्यानिश्चितं सिद्ध्येत्तत्वं केन निषिध्यते ॥ ८६ ॥

अर्थ—सर्वकै शून्यपना साधनेमैं प्रमाणकरि वा अप्रमाणकरि सर्वकै अनिश्चित तत्त्व सिद्ध होय, निषेध कौनकरि करिए।

भावार्थ—सर्व शून्य मानैं तब प्रमाण अप्रमाण भी न ठहरै, तब सर्वकै अनिश्चित ही तत्त्वसिद्धि होय प्रमाण विना संशयका निषेध काहे करि करैं तातैं सर्व शून्य मानना मिथ्या है ॥ ८६ ॥

सर्वत्र सर्वथा तत्वे, क्षणिके स्वीकृते सति।
फलेन सह सम्बन्धो, धार्मिकस्य कुतस्तनः॥ ८७॥

अर्थ—सर्व जायगा। सर्व प्रकार तत्वकौं क्षणिक अंगीकार करे संते धर्मात्मा जीवकै फलकरि सहित सम्बन्ध कहांतैं होय।

भावार्थ—सर्व प्रकार तत्वकौं क्षणिक अंगीकार करे संतैं धर्मात्मा जीवकै फलकरि सम्बन्ध कहांतैं होय। सर्वप्रकार तत्वकौं क्षणिक माने धर्मात्मा जीव धर्मका फल न पावै जातैं वह तौ क्षणमैं ही विनसि गया। बहुरि ऐसे होतैं धर्मका साधन निरर्थक ठहरया। तातैं सर्वथा क्षणिक मानना योग्य नाहीं॥ ८७॥

वधस्य वधको हेतुः, क्षणिके स्वीकृते कथम्।
प्रत्यभिज्ञा कथं लोकव्यवहारप्रवर्त्तनी॥ ८८॥

अर्थ—बहुरि क्षणिककौं अंगीकार करे सन्तें हिंसक जीव है सो हिंसाका कारण कैसैं होय। बहुरि लोकमें व्यवहार चलावनेवाली प्रत्यभिज्ञा कैसैं होय।

भावार्थ—क्षणिक माने हिंसा करनेवाला हिंसक न ठहरे जातैं वह तौ वा ही क्षण विनसि गया, बहुरि बालक था जो जवान भया; इसपर मेरा लेना है सो लेऊँ, देना है सो देऊँ इत्यादिक लोकव्यवहार चलावनेवाली प्रत्यभिज्ञाका भी अभाव ठहरै, जातैं वह तो वाही क्षण विनसि गया व्यवहार काहेका चलैं तातैं क्षणिक मानना मिथ्या है॥ ८८॥

व्याघ्रयाः प्रयच्छतो देहं, निगद्य कृमिमंदिरम्॥
दातृदेहविमूढस्य, करुणा वत कीदृशी॥ ८९॥

अर्थ—यह शरीर लटनिका घर है ऐसा कहकैं शरीरकौं बघेरीकै अर्थि देय ऐसे दाता अर देहमें मूर्ख ऐसे के करुणा कैसी है ? यह बड़े खेदकी बात है॥ ८९॥

बहुरि कहै है—

जननी जगतः पूज्या, हिंसिता येन जन्मनि।

मांसोपदेशिनस्तस्य, दया शौद्धोदनेः कथम् ॥ ९० ॥

अर्थ—जगतके पूजने योग्य जो माता सो जानैं जन्मविषै मारी ता मांसके उपदेश करनेवाले बुद्धकै दया कैसैं होय।

भावार्थ—बौद्धमतमैं कहा है कि बुद्ध माताका उदर फाड़कर निकल्या है अर मांस भक्षणमैं दोष नाहीं ताकूं आचार्यनैं कहा ऐसे बुद्धके दया काहेकी ॥ ९० ॥

ऐसैं बुद्धका निराकरण किया, आगैं कपिलका निराकरण करै है—

यो ज्ञानं प्राकृतं धर्मं, भाषतेऽसौ निरर्थकः।

निर्गुणो निष्क्रियो मूढः, सर्वज्ञः कपिलः कथम् ॥ ९१ ॥

भावार्थ—कपिल ज्ञानकौं तो प्रकृतिका धर्म कहै है अर आत्माकौं निर्गुण क्रिया रहित प्रयोजनरहित अज्ञान कहै है ताकूं आचार्यने कहा जो ऐसा सर्वज्ञ कपिल कैसैं होय। तातैं कपिलका मत मिथ्या है ॥ ९१ ॥

आगैं और भी कुदेवादिक हैं तिनका निषेध करै है—

आर्यास्कंदानलादित्यसमीरप्रमुखः सराः।

निगद्यंते कथं देवाः, सर्वदोषपयोधयः ॥ ९२ ॥

अर्थ—सर्वदोषनिके समुद्र ऐसे जे देवी स्कंद कहिए स्वामि-कार्तिकेय अग्नि सूर्य वायु इत्यादिक हैं ते देव कैसें कहिए है।

भावार्थ—राग द्वेषादि दोष जिनमैं पाइये ऐसे कुदेवनिकौं देव कैसें कहिए ॥ ९२ ॥

आगैं फेर कहै है—

गूथमश्नानि या हंति, खुरश्रृंगै: शरीरिण: ।
सा पशुर्गौ: कथं वंद्या, वृषस्यन्ती स्वदेहजम् ।। ९३ ।।

अर्थ—जो गौ भ्रष्टा खाय है अर प्राणीनिकौं खुरसींगनिकरि हनै है अर अपने पुत्रसें काम सेवै है, सो ऐसी पशु अज्ञान गौ कैसें वन्दनेयोग्य होय ।। ९३ ।।

चेद्दुग्धदानतो वंद्या, महषी किं न वंद्यते ।
विशेषो दृश्यते नास्यां, महिषीतो मयाधिक: ।। ९४ ।।

अर्थ—बहुरि वह कहै जो गौ दुग्ध देय है तातैं वंदनेयग्य है तो महिषी क्यों न वंदिए, जातैं इसकै महिषीतैं अधिक विशेष मो करि न देखिए है, दुग्ध देनेमैं दोनौं समान है ।। ९४ ।।

या तीर्थ मुनिदेवानां, सर्वेषामाश्रय: सदा ।
दुह्यते हन्यते सा गौर्मूढैर्विक्रीयते कथम् ।। ९५ ।।

अथ—जो गौ तीर्थ मुनि देवनिका सबनिका सदा आश्रय सो गौ मूढनि करि कैसें पीडिए है अर हानिए है अर वेचिए है, तातैं गौकौं पूजना मिथ्या है ।। ९५ ।।

आग और भी कहै हैं—

मुशलं देहली चुल्ही, पिप्पलश्चंपकोजलम् ।
देवा यैरभिधीयन्ते, वर्ज्यन्ते तै: परेऽत्रके ।। ९६ ।।

अर्थ—मूसल देहली चूल्हा पीपल चम्पा जल इनकौं जिनकरि देव कहिए है तिनकरि इहां कौन बर्जिए है ।

भावार्थ—जो मूसलादिक जड़ अर पापके कारण जिनविषैं *देवपनाका लेश भी नाहीं तिनकौं भी पूजं है तो वे और कौनकौं न* पूजै है ! सर्वकौं ही पूजै है ।। ९६ ।।

आगैं अधिकारकौं संकोचे है:—

इत्थं विविच्य परिमुच्य कुदेववर्ग, गृह्णाति यो जिनपतिं भजते स

तत्त्वम् । गृह्णाति यः शुभमतिः परिमुच्य काचं, चिन्तामणिं स लभते खलु किं न सौख्यम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—ऐसैं जो विचार करि कुदेवनिके समूहकौं त्यागिकै जिनेन्द्रदेवकौं ग्रहण करै है सो पुरुष परमतत्त्वकौं भजै है, सेवै है, इहां दृष्टांत कहै है—जो बुद्धिमान काचकौं छोडकरि चिन्तामणि-रत्नकौं ग्रहण करै है सो कहा निश्चयकरि सुखकौं न पावै है, पावै ही है ॥ ९७ ॥

मिथ्यात्वदूषणमपास्य विचित्रदोषं, संरूढसंसृतिवधूपरितोषकारि ।
सम्यक्त्वरत्नममलं हृदि यो विधत्ते, मुक्त्यंगनामितगतिस्तमुपैति सद्यः ॥९८

अर्थ—वृद्धिकौं प्राप्त जो संसारवधू ताका परितोष करनेवाला, प्रसन्न करनेवाला अर अनेक दोषस्वरूप ऐसा मिथ्यात्व रूप दूषणकौं त्यागकरि जो पुरुष निर्मल सम्यक्तरत्नकौं हृदय विषैं धारै हैं, ता पुरुष प्रति अनंत है ज्ञान जाकै ऐसी मुक्तिस्त्री है सो शीघ्र प्राप्त होय है।

भावार्थ—मिथ्यात्वकौं त्यागकरि जो सम्यक्त धारै है ताकूं मुक्तिकी प्राप्ति शीघ्र होय है। ९८ ॥

छप्पय ।

पोषत विषयकषाय पक्ष एकान्त चित्तरखि,
नास्तिकादि मत एम सकल मिथ्यात्वस्वरूप लखि ।
हरिहरादि सबही कुदेव रागादिचिह्नयुत,
त्यागि, भजहु सर्वज्ञदेव रागादिदोषच्युत ॥
संसारहेतु मिथ्यात्व इम त्यागि सुदर्शन जे धरैं ।
ते जीव अमितगति शं प्रद्दौ भागचन्द शिवतिय वरैं ॥

इत्युपासकाचारे चतुर्थः परिच्छेदः ।

इस प्रकार श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं चतुर्थ परिच्छेद समाप्त भया ।

पंचम परिच्छेद।

आगैं व्रतनिका वर्णन करैं हैं,—

मद्यमांसमधुरात्रिभोजनं, क्षीरवृक्षफलवर्जनं त्रिधा।
कुर्वते व्रतजिघृक्षया बुधास्तत्र, पुष्यति निषेविते व्रतम्॥ १॥

अर्थ—पंडित हैं ते व्रतग्रहणकी इच्छा करि मदिरा मांस अर मधु अर रात्रिविषैं भोजन अर क्षीरवृक्ष कहिए जिनमैं दूध निकसै ऐसे बड पीपर ऊमर इत्यादिकनिके फल इनका त्याग मन वचन कायकरि करै है, जातैं तिनके त्यागका सेवन करे संतैं व्रत पुष्ट होय है।

भावार्थ—जाके व्रतकी चाह है सो प्रथम मदिरादिकनिका त्याग अवश्य करै इनके त्यागे व्रत पुष्ट होय है॥ १॥

आगैं प्रथम ही मदिराका निषेध करै है,—

मद्यपस्य धिषणा पलायते, दुर्भगस्य वनितेव दूरतः।
निंद्यता च लभते महोदयं, क्लेशितेव गुरुवाक्यमोचिनः॥ २॥

अर्थ—जैसैं दरिद्री पुरुषकी स्त्री भाग जाय है तैसैं मदिरा पीनेवालेकी बुद्धि भाग जाय है, बहुरि निंदा वृद्धिकौं प्राप्त होय है जैसैं गुरुके वचन न माननेवालेकै दुःख वृद्धिकौं प्राप्त हो जाय हैं तैसैं।

भावार्थ—मदिरा पीनेवालेकी बुद्धि बिगड़ जाय है अर निंदा होय है॥ २॥

विह्वलः स जननीयति प्रियां, मानसेन जननीं प्रियीयति।
किंकरीयति निरीक्ष्य पार्थिवं, पार्थिवीयति कुधीः स किंकरम्॥ ३॥

अर्थ—सो मदिरापानी मन करि विह्वल भया संता स्त्रीकौं मातावत् आचरै है अर माताकौं स्त्रीवत् आचरण करै है। बहुरि सो कुबुद्धि राजाकौं देखकरि चाकरवत् आचरै है अर चाकरकौं राजावत् आचरै है।

भावार्थ—मदिरापानी सर्व पदार्थनिकों विपरीत देखै है ॥३॥

सर्वतोऽप्युपहसंति मानवा, वाससी व्यपहरंति तस्कराः

मूत्रयंति पतितस्य मंडला, विस्तृते विवरकांक्षया मुखे ॥ ४ ॥

अर्थ—बहुरि मद्यपानीकी सर्व ही तरफतैं मनुष्य हास्य करै है अर चौर वस्त्र हरै है, बहुरि स्वान हैं ते पड़ेके विस्ताररूप मुखविषैं छिद्रकी वांछा करि मूतैं है ॥ ४ ॥

मंक्षु मूर्च्छति बिभेति कंपते, पूत्करोति रुदति प्रछर्दति ।

खिद्यते स्खलति विक्षते दिशो, रोदिति स्वपिति जक्षितीर्ष्यति ॥५॥

अर्थ—बहुरि मदिरापानी शीघ्र ही मूर्छित होय है, डरपै है, कांपै है, पूत्कार करै है, रोवै है, वमन करै है, खेदरूप होय है, गिर पड़ै है, दिशानकूं देखे है, रुदन करै है, सोवै है, जकड़ी लगि-जाय है ईर्षा करै है ।

भावार्थ—मदिराकरि नाना कुचेष्टा उपजै है ॥ ५ ॥

ये भवंति विविधाः शरीरिणस्तत्र सूक्ष्मवपुषो रसांगिकाः ।

तेऽखिला झटिति यांति पंचतां, निंदितस्य सरकस्य पानतः ॥ ६ ॥

अर्थ—तिस मदिराविषैं सूक्ष्म हैं शरीर जिनके ऐसे जे रसकरि उपजे नानाप्रकार जीव हैं ते समस्त निंदनीक मदिराके पानतैं शीघ्र मरणकों प्राप्त होय हैं ।

भावार्थ—मदिरा पानीकै द्रव्यहिंसा भी तीव्र होय है ॥ ६ ॥

वारुणी निहितचेतसोऽखिलाः, यांति कांतिमतिकीर्तिसम्पदः ।

वेगतः परिहरंति योषितो, वीक्ष्य कांतमपरांगनागतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसैं स्त्री है ते परस्त्री प्रति गए पतिकों देख करि शीघ्र ही परिहरै है तैसैं मदिराविषैं लग्या है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकी समस्त कांति बुद्धि कीर्त्ति संपदा जाती रहै है ।

भावार्थ—मदिरापानीकी कांति बुद्धि कीर्ति संपदा सर्व बिगड़ि जाय है ॥ ७ ॥

गायति भ्रमति वक्ति गद्गदं, रौति धावति विगाहते क्रमम् ।
हंति हृष्यति बुध्यते हितं, मद्यमोहितमतिर्विषीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—मदिरा करि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा पुरुष है सो गावै है, भ्रमै है, गद्गद् वचन बोलै है, रोवै है, दौड़े है, कष्टकों अवगाहे है, हिंसा करै है, हर्ष करै है, हितकों न जानै हैं, विषादरूप होय है ।

भावार्थ—मद्य पानीके नाना कुचेष्टा होय है ॥ ८ ॥

तोतुदीति भविन: सुरारतो, वावदीति वचनं विनिंदितम् ।
मोमुषीति परवित्तमस्तधी, बोभुजीति परकीयकामिनीम् ॥ ९ ॥

अर्थ—मदिराविषैं आशक्त पुरुष है सो जीवनकों पीडा उपजावै है, *निंदित वचन बोलै है अर परधन चोरै है अर अज्ञानी परकी* स्त्रीकों भोगै है ।

भावार्थ—मदिरा पीवै है सो हिंसादि सर्व पाप करै है ॥ ९ ॥

नाणटीति कृतचित्र चेष्टितो, नन्नमीति पुरतो जनं जनम् ।
लोलुठीति भुवि रासभोपमो, रारटीति सुरया विमोहित: ॥ १० ॥

अर्थ—मदिरा करि मोहित पुरुष है सो करी है नानाप्रकार चेष्टा जानैं ऐसा नाचै है, अर आगेतैं जन जन प्रति नमै है, अर गर्दभ समान पृथ्वीविषैं लोटै है अर शब्द करै है ॥ १० ॥

सीधुलालसधिया वितन्वते, धर्मसंयमविचारणां यके ।
मेरुमस्तकनिविष्टमूर्त्तयस्ते स्पृशंति चरणैर्भुवस्तलम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसैं कोई पुरुष मदिरादिकी लालसासहित बुद्धि करि धर्मका वा संयमका विचार विस्तारै हैं ते मेरुके मस्तक परि तिष्ठते चरणन करि पृथ्वीतलकों स्पर्शैं है ।

भावार्थ—जैसैं मेरुपर बैठकरि कोई पृथ्वीकौं चरण करि स्पर्श चाहै सो मूर्ख है तैसैं मदिरा पीवता संता धर्मादिकका विचार करै सो मूर्ख है, ऐसा जानना ॥ ११ ॥

दोषमेवमवगम्य वारुणीं, सर्वथा न हि धयंति पंडिताः।
कालकूटमवबुध्य दुःखदं, भक्षयंति किमुजीवितार्थिनः ॥ १२ ॥

अर्थ—या प्रकार दोषकौं जान करि पंडित हैं ते सर्वथा मदिराकौं नाहीं पीवैं हैं जैसैं जीनेके वांछक जीव दुःखदाई कालकूट विषकौं जान करि कहा भक्षण करै है ? अपितु न करै है ॥ १२ ॥

मांसभक्षणविषक्तमानसो, यः करोति करुणां नरोऽधमः।
भूनले कुलिशवह्नितापिते, नूनमेष वितनोति वल्लरीम् ॥ १३ ॥

अर्थ—मांसविषैं आशक्त है चित्त जाका ऐसा जो नीच पुरुष करुनाकौं करै है सो यहु निश्चय करि वज्राग्नि करि तप्त जो पृथ्वी ताविषें वेलिकौं विस्तारै है।

भावार्थ—अग्नि करि तप्त पृथ्वी विष जैसैं बेल न होय तैसैं मांस भक्षककै दया न होय ऐसा जानना ॥ १३ ॥

जायते न पिशितं जगत्त्रये, प्राणिघातनमृते यतस्ततः।
मंक्षु मूलमुदखानि खादता, हि दया झटिति धर्मशाखिनः ॥ १४ ॥

अर्थ—जातैं तीनलोकमैं मांस है सो जीवनिकी हिंसा बिना न उपजै है तातैं मांस भक्षक पुरुष करि तोड्या जो निश्चय करि धर्मवृक्ष ताका मूल जो दया सो शीघ्र खोद्या।

भावार्थ—जीव हिंसा विना मांस न उपजै तातैं जानैं मांस खाया तानैं दयामूल जो धर्म ताका नाश किया ॥ १४ ॥

देहिनो भवति पुण्यसंचयः, शुद्धया न कृपया विया ध्रुवम्
दृश्यते न लतया विना मया, सार्द्रया जगति पुष्पसंचयः ॥ १५ ॥

अर्थ—इस दयाविना जीवकै निश्चय करि पुण्यका संचय न होय है जैसैं मोकरि लोक विष हरित बेल विना पुष्पनिका संचय न देखिए है तैसैं ।

भावार्थ—जैसें बेल बिना पुष्प न होय है तैसें दया विना व्रत न होय है ॥ १५ ॥

भक्षयंति पिशितं दुराशयाः, ये स्वकीयबलपुष्टकारिणः ।
घातयंति भवभागिनस्तके, खादकेन न विनास्ति घातकः ॥१६॥

अर्थ—जे अपने बलके पुष्ट करनेवाले दुष्टचित्त मांसकौं भखैं हैं ते जीवनकौं घातैं हैं जातैं खानेवाले विना घातनेवाला नाहीं है ।

भावार्थ—कोउ कहै मांस खानेमें तो हिंसा नाहीं ताको कह्या है । जो मांस खावै है सो अवश्य हिंसा करै है ॥ १६ ॥

हंति खादति पणायते पलं, मन्यते दिशतिसंस्करोति यः ।
यांति ते षडपि दुर्गतिं स्फुटं, न स्थितिः खलु परत्र पापिनाम् ॥१७॥

अर्थ—जो मांसकौं हनैं है जीव मारै है अर खाद्य है, बेचै है, भला मानै है, उपदेश करै है, संस्करोति कहिए मांसका वा मांस भक्षीनका संस्कार करै है । ते पूर्वोक्त छह प्रकारके जीव परजन्मविषैं दुर्गतिकौं प्राप्त होय है, जातें पापीनिकी निश्चयकरि स्थिरता नाहीं ॥१७॥

अत्ति यः कृमिकुलाकुलं पलं, पूयशोणितवसादिमिश्रितम् ।
तस्य किंचन न सारमेयतः, शुद्धबुद्धिभिरवेक्ष्यतेऽन्तरम् ॥ १८ ॥

अर्थ— जो पुरुष लटनके समूहकरि भरया अर दुर्गंध रुधिर वसा आदि करि मिश्रित ऐसा जो मांस ताहि भखै है ताकै स्वानतें किछू अन्तर शुद्धबुद्धिनकरि न देखिए है ।

भावार्थ—मांस खाय है सो कुत्ता समान है किछू विशेष नाहीं, जातें वह भी निन्द्य वस्तु खाय हैं अर यहु भी निन्द्य वस्तु खाय है; ग्लानि दोऊनिकै नाहीं ॥ १८ ॥

आमिषाशनपरस्य सर्वथा, विद्यते न करुणा शरीरिणः ।
पापमर्जति तया विना परं, बंभ्रमीति भवसागरे ततः ॥ १९ ॥

अर्थ—मांसके खाने विषें तत्पर जो पुरुष ताकें जीवकी करुणा सर्वथा न होय है । बहुरि ता दया विना बड़ा पाप उपजावै है ता पापतें अतिशयकरि संसारसमुद्रविषैं भ्रमैं है ॥ १९ ॥

नास्ति दूषणमिहामिषाशने, यैर्हृषीक वशगैर्निगद्यते ।
व्याघ्रशूकरकिरातधीवरा, स्तैर्निकृष्टहृदयैर्गुरूकृताः ॥ २० ॥

अर्थ—जिन इंद्रियनिके आधीन भए पुरुषनि करि " मांसभक्षण-विषैं दूषण नाहीं " ऐसा कहिये है तिन नीचचित्तनकरि व्याघ्र शूकर भील ढीमर है ते गुरुकी ज्यों करे ।

भावार्थ—जे मांस भक्षणकौं निर्दोष बतावै हैं तो तिनके मांस-भक्षी सिंहादिक पूज्य ठहरैं। तातैं मांसभक्षण सर्वथा भला नाहीं ॥२०॥

मांसवल्भन निविष्टचेतसः, संतिपूजिततमा नरा यदि ।
गूथमूतकृतदेहपुष्टयः, शूकरा न नितरां तदा कथम् ॥ २१ ॥

अर्थ—मांसके भक्षणविषैं लगाया है चित्त जिननैं ऐसे पुरुष जो पूजने योग्य होय तो विष्टा अर मूत्र करि करी है देहपुष्टि जिननैं ऐसे शूकर पूज्य कैसें न होय ॥ २१ ॥

भक्षयंति पलमस्तचेतनाः, सप्तधातुमयदेहसंभवम् ।
यद्वदंति च शुचित्वमात्मनः, किं विडंबनमतः परं बुधाः ? ॥ २२ ॥

अर्थ—जो बुद्धिरहित सप्तधातुमय देहतैं उपज्या जो मांस ताहि-खाय है अर आत्माकैं पवित्रपना कहै है सो हे पंडित हो ! यासिवाय और विडम्बना कहां है ? अपि तु या सिवाय और विडम्बना नाहीं है ॥ २२ ॥

भुञ्जते पलमघौघकारि ये, ते व्रजंति भवदुःखमूर्जितम् ।
ये पिबन्ति गरलं सुदुर्जरं, ते श्रयन्ति मरणं किमद्भुतम् ॥ २३ ॥

अर्थ—जे पापके समूहका करनेवाला जो मांस ताहि भखै हैं ते तंत्र संसारके दुःखकों प्राप्त होय हैं। इहां दृष्टांत कहै हैं—जे पुरुष दुःखतें है जरना उतरना जाका ऐसा जो विष ताहि पीवैं हैं ते मरणकों प्राप्त होय सो कहा आश्चर्य है।

भावार्थ—मांसभक्षक संसारमें भ्रमैं ताका अचरज नाहीं॥२३॥

चित्र दुःखसुखदान पंडिते, ये वदन्ति पिशिताशने समे ।
मृत्युजीवितविवर्द्धनोद्यते, ते वदंति सदृशे विषामृते ॥ २४ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके दुःख अर सुखके देनेमैं प्रवीण जे मांस अर भोजन तिनहिं समान कहै हैं ते मरण अर जीवनके बढ़ावने विषैं उद्यमी जे विष अर अमृत तिनहिं समान कहै हैं।

भावार्थ—जे मांस खाना अर अन्न खाना समान कहै हैं ते विष अर अमृत समान कहै हैं। ते समान नाहीं जातैं मांस खानेमें तो तीव्रराग है अर अन्न खानेमें मन्द राग है तातैं बड़ा भेद है ऐसा जानना ॥ २४ ॥

जायते द्वितयलोक दुःखदं, भक्षितं पिशितमंगसंगिनाम् ।
भक्षितं द्वितयजन्मशर्मदं, जायतेऽशनमपास्त दूषणम् ॥ २५ ॥

अर्थ—जीवनि मांस खाया संता इस लोक विषैं अर परलोक विषैं दुःखदायक होय है, अर दूषण रहित भोजन खाया भया इस लोक परलोक विषैं सुखदायक होय है ॥ २५ ॥

मांसमित्थमवबुध्य दूषितं, त्यज्यते हितगवेषिणा त्रिधा ।
मंदिरं न विदता निषेव्यते, तीव्रदृष्टिविषपन्नगाकुलम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हितके हेरनेवाले पुरुष करि या प्रकार मांसकों दूषित जान करि सदा त्याग करिए है। इहां दृष्टांत कहैं हैं—जानता जो पुरुष ताकरि तीव्र दृष्टि विष सर्पकरि व्याकुल जो घर सो न सेईए है॥ २६ ॥

ऐसें मांसका निषेध किया, आगें मधुका निषेध करै हैं—

माक्षिकं विविध जन्तुघातजं, खादयंति बहुदुःखकारि ये।
स्वल्पजन्तुविनिपातिभिः समास्ते भवन्ति कथमत्र खादिकैः ॥२७॥

जे पुरुष नानाप्रकार जीवनकै घाततें उपज्या अर महादुःखका देनेवाला ऐसा जो मधु ताहि खाय है ते थोड़े जीवनके घातक जे खटीक तिनकरि समान कैसे होय हैं।

भावार्थ—मधु खानेवाला खटीकतें भी महापापी है ऐसा जानना ॥ २७ ॥

ग्रामसप्तकविदाहरेपसा, तुल्यता न मधुभक्षिरेपसः।
तुल्यमंजलिजलेन कुत्रचिन्निम्नगापतिजलं न जायते ॥ २८ ॥

अर्थ—सात ग्रामके जलावनेके पाप करि मधुभक्षकके पापकी समानता नाहीं, जातैं अंजलिके जल करि समुद्रका जल असंख्यात गुण है तैसैं सात ग्रामके दाहके पापतैं भी असंख्यातगुणा पाप मधु भक्षण करनेमें बताया है ॥ २८ ॥

म्लेच्छलोकमुखलालयाविलं, मद्यमांसचितभाजनास्थितम्।
सारघं गतघृणस्य खादतः, कीदृशं भवति शौचमुच्यताम् ॥ २९ ॥

अर्थ—म्लेच्छ भील लोकनिके मुखकी लाल करि मलिन अर मद्य मांस जामैं संचय कीये ऐसे भाजनमैं धरया अर पुण्यकों नाश करनेवाला जो मधु ताहि ग्लानि रहित खाते पुरुषकैं पवित्रपना कैसा है सो कहि ॥ २९ ॥

यश्चिखादिषति सारघं कुधीर्मक्षिकागणविनाशनस्पृहः।
पापकर्दमनिषेधनिम्नगा, तस्य हंत करुणा कुतस्तनी ॥ ३० ॥

अर्थ—मक्षिकानके समूहके विनाशनेकी है इच्छा जाके ऐसा जो कुबुद्धी मधु खानेकी इच्छा करै है, बड़े आश्चर्यकी बात है ताके

करुणा काहेकी, कैसी है करुणा पापरूप कीचके दूर करनेकौं नदी समान है ॥ ३० ॥

भक्षितो मधुकणोऽपि संचितं, सूदते झटिति पुण्यसंचयम् ।
काननं विषमशोचिष: कणः, किं न भक्षयति वृक्षसंकटम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—मधुका कणा भी भक्षण किया संता निश्चय करि पुण्यके समूहकौं शीघ्र नाश करै है । इहां दृष्टांत कहै है—अग्निका जो कणा सो वृक्षनिका है समूह जा विषैं ऐसे वनकौं कहा नहीं भक्षण करै है (नहीं दहै है) ? दहै ही है ॥ ३१ ॥

योऽस्ति नाम मधु भेषजेच्छया, सोऽपि याति लघु दुःखमुल्बणम् ।
किं न नाशयति जीवितेच्छया, भक्षितं, झटिति जीवितं विषम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो औषधकी इच्छा करि भी प्रसिद्ध मधुकौं खाय है सो भी तीव्र दुःखकौं शीघ्र प्राप्त होय है । इहां दृष्टांत कहै हैं;—जीवनेकी इच्छा करि खाय जो विष सो कहा शीघ्र जीवनेकौं न नाशै है ? नाशै ही है ॥ ३२ ॥

घोरदुःखदमवेत्य कोविदा, वर्जयंति मधु शर्मकांक्षिणः ।
कुत्र तापकमवेत्य पावकं, गृह्यते शिशिरलोलमानसा: ॥ ३३ ॥

अर्थ—सुखके वांछक पंडित जन हैं ते घोर दुःखदायक जानि मधुकौ त्याग करै है । ताका दृष्टांत कहै है—शीतलपनेमैं है लालसा जिनकै ऐसे पुरुष हैं ते अग्निकौं ताप करि जानकरि कहा ग्रहण करै है, नहीं करै है ॥ ३३ ॥

ऐसैं मधुका निषेध किया, आगैं नवनीतका निषेध करै है;—

संसजंति विविधाः शरीरिणो, यह सूक्ष्मतनवो निरन्तराः ।
तद्ददाति नवनीतमंगिनां, पापतो न परमत्र सेवितम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जा विषैं सूक्ष्म हैं शरीर जिनके ऐसे नाना प्रकार जीव

हैं ते निरन्तर उपजै है सो लूणी घी सेया सन्ता जीवनिकौं सो पाप देय है, जा पापतैं लोक विषै और पाप नाहीं ॥ ३४ ॥

चित्रजीवगणसूदनास्पदं, यैर्विलोक्य नवनीतमद्यते ।
तेषु संयमलवो न विद्यते, धर्मसाधनपरायणा कुतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जिन पुरुषनि करि नाना प्रकार जीवनिके समूहके विनाशका ठिकाणा देख करि लणी खाय है तिन पुरुषनि विषैं संयमका अंश भी नाहीं है, धर्मसाधन विषैं तत्परता काहेतैं होय? नाहीं होय ॥ ३५ ॥

यन्मुहूर्त्तयुगतः परः सदा, मूर्च्छति प्रचुरजीवराशिभिः ।
तद्गिलंति नवनीतमत्र ये, ते व्रजंति खलु कां गतिं मृताः ॥३६॥

अर्थ—जो लूणो दोय मुहूर्त पाछैं प्रचुर जीवनिके समूहनि करि मूर्च्छित होय है सन्मूर्च्छन जीव जा विषैं सो लुणी इहां जे खाय है ते मरे भए निश्चय करि कौन गतिकौं जाय हैं, तिनकी कहा गति होय है जैसी आचार्यनैं आशंका करि है ।

भावार्थ—इहां दोय मुहूर्त लुणीकी मर्यादा कही सो तपावनेकी अपेक्षा है, किछू खानेकी अपेक्षा न कही है, जातैं रागादिकके कारनपनेतैं खाना तो कोई प्रकार योग्य नाहीं ऐसा जानना ॥३६॥

ये जिनेन्द्रवचनानुसारिणो, घोरजन्मवनपातभीरवः ।
तैश्चतुष्टयमिदं विनिंदितं, जीवितावधि विमुच्यते त्रिधा ॥ ३७ ॥

अर्थ—जे जीव संसार वनके पाततैं भयभीत हैं अर जिनेन्द्रके वचनके अनुसारी है तिन करि निन्दनीक मद्य मांस मधु लोणी ये च्यार हैं ते जीवन पर्यंत मन, वचन काय करि त्यागिए है ॥ ३७ ॥

मद्यमांसनवनीतसारघं, यैश्चतष्कमिदमद्यते सदा ।
गृद्धिरागवशसंगबृंहकं, तैश्चतुर्गतिभवो विगाह्यते ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिन करि अति आसक्तता राग हिंसाके संगके बढ़ापने-वाले मद्य मांस मधु लौणी ए च्यार सदा खाइए है तिन करि चतुर्गति संसार अवगाहिए है (भ्रमिए है) ॥ ३८ ॥

यः सुरादिषु निषेवतेऽधमो, निद्यमेकमपि लोलमानसः ।
सोऽपि जन्मजलधावताड्यते, कथ्यते किमिह सर्वभक्षिणः ॥३९॥

अर्थ—जो चञ्चल चित्त नीच पुरुष मदिरादिकनिविषैं निन्दनीक एककौं भी सेवन करे सो भी संसार समुद्र विषैं भ्रमण करे है, तो इहां सर्वके खानेवालेकी कहा कहिए ॥ ३९ ॥

ऐसे मदिरादिक च्यार महाविकृतिका निषेध किया । आगैं रात्रिभोजनका निषेध करे है;—

यत्र राक्षसपिशाचसंचरो, यत्र जन्तुनिवहो न दृश्यते ।
यत्र मुक्तमपि वस्तु भक्ष्यते, यत्र घारतिमिरं विजृंभते ॥ ४० ॥
यत्र नास्ति यतिवर्गसंगमो, यत्र नास्ति गुरुदेवपूजनम् ।
यत्र संयमविनाशि भोजनं, यत्र संसजति जीवभक्षणम् ॥ ४१ ॥
यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं यत्र नास्ति गमनागमक्रिया ।
तत्र दोषनिलये दिनात्यये, धर्मकर्मकुशला न भुञ्जते ॥ ४२ ॥

अर्थ—जा विषैं राक्षस पिशाचनिका संचार होय है, अर जा विषैं जीवनिका समूह न देखिए है, अर जा विषैं छोड्या भी वस्तु भक्षण करिए है अर जा विषैं घोर अन्धकार फैले है ॥ ४० ॥

अर जा विषैं यतीनके समूहका संगम नाहीं, अर जाविषें गुरु देवका पूजन नाहीं, अर जा विषें संयमका करनेवाला भोजन होय है अर जा विषें जीवनका भक्षण उपजै है ॥ ४१ ॥

अर जा विषें सर्व शुभ कर्मका वर्जन होय है, अर जा विषें गमनागमन क्रिया नाहीं है; ऐसा दोषनिका ठिकाना दिनका अभाव

रूप रात्रि ताविषें धर्म कर्ममें प्रवीण पुरुष हैं ते भोजन न करै हैं।।४२।।

भुञ्जते निशि दुराशया यके, गृद्धिदोषवशवर्तिनो जनाः ।
भूतराक्षसपिशाच शाकिनी, संगतिः कथममीभिरस्य ॥ ४३ ॥

अर्थ—जे दुष्टचित्त लोलुपतारूप दोषके वशीभूत जन रात्रि विषें भोजन करै हैं तिन करि भूत राक्षस पिशाच शाकिनीकी संगति कैसें त्यागिए है ।

भावार्थ—रात्रिभोजन करै हैं तिनके भूतादिककी संगति अवश्य होय है ॥ ४३ ॥

वल्भते दिननिशीथयोः सदा, यो निरस्तयमसंयमक्रियः ।
शृंगपुच्छशफसंगवर्जितो, भण्यतेपशुरयं मनीषीभिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो पुरुष दूर करी है यम, संयम, क्रिया जानें ऐसा रात्रि दिन विषें सदा खाय है सो यहु पंडितनि करि सींग पूँछ रहित पशु कहिए है ॥ ४४ ॥

आमनंति दिवसेषु भोजनं, यामिनीषु शयनं मनीषिणः ।
ज्ञानिनामवसरेषु जल्पनं, शान्तये गुरुषु पूजनं कृतम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—पंडित हैं ते दिवसनि विषें भोजनकौं सुखके अर्थि कहै हैं, अर रात्रिनि विषें सोवना शांतिके अर्थ कहै हैं, अर ज्ञानीनिके अवसर विषें बोलना शांतिके अर्थ कहै हैं, गुरुनविषें करया पूजन शांतिके अर्थ कहै हैं ॥ ४५ ॥

भुज्यते गुणवतैकदा सदा, मध्यमेन दिवसे द्विरुज्ज्वले ।
येन रात्रिदिवयोरनारतं, भुज्यते स कथितो नरोऽधमः ॥ ४६ ॥

अर्थ—गुणवान उत्तम पुरुष करि सदा एकवार भोजन करिए है, अर मध्यम पुरुष करि उज्वल दिन विषैं दोयवार भोजन करिए है अर जा करि दिनरात निरन्तर भोजन करिए है सो मनुष्य अधम नीच कह्या है ॥ ४६ ॥

ये विवर्ज्य वदनावसानयो, र्वासरस्य घटिकाद्वयं सदा।
भुंजते जितहृषीकवाजिन, स्ते भवंति भवभारवर्जित: ॥ ४७ ॥

अर्थ—जे पुरुष दिनके आदि अर अन्त विषैं सदा दोय घडीका वर्ज करि भोजन करै हैं ते जीते हैं इंद्रिय रूप घोड़े जिननैं संसारकै भार करि रहित होय हैं मुक्त होय हैं ॥ ४७ ॥

ये विधाय गुरुदेवपूजनं, भुंजतेऽह्नि विमले निराकुलाः।
ते विधूय लघु मोहतामसं, संभवंति सहसा महोदयाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जे पुरुष निर्ग्रन्थ गुरुका अर्हंत देवका पूजन करकैं निर्मल दिवस विषैं निराकुल भए संते भोजन करैं हैं ते शीघ्र मोह अन्धकारकौं नाश करि सहसा महान् उदयरूप होय हैं, केवलज्ञानकौं पावैं हैं ॥ ४८ ॥

यो विमुच्य निशि भोजनं त्रिधा, सर्वदापि विदधाति वासरे।
तस्य याति जननार्द्धमंचितं, मुक्तिवर्जितमपास्तरेपस: ॥ ४९ ॥

अर्थ—जो पुरुष मन वचन काय करि सदा रात्रि बिषैं भोजन त्याग करि दिन विषैं भोजन करै है तिस पाप रहित पुरुषका भुक्ति रहित उपवास रूप आधा जन्म व्यतीत होय है ॥ ४९ ॥

यो निवृत्तिमविधाय वल्भनं, वासरेषु वितनोति मूढधी: ।
तस्य किंचन न विद्यते फलं, भाषिन न विना फलंतराम् ॥ ५० ॥

अर्थ—जो मूढ बुद्धि पुरुष दिननि विषैं निवृत्ति जो व्रत ताहि न करि रात्रि विषैं भोजन करै है ताकै किछु फल न होय है, जातैं जिनभाषित विना अतिशय करि फल न होय है।

भावार्थ—कोऊ कहै कि दिन विषैं भोजन न करना अर रात्रि विषैं करना यहु भी व्रत है ताकूं कह्या है कि ऐसा मार्ग नाहीं, जातैं रात्रि भोजन विषैं द्रव्यभाव हिंसाकी विशेषतातैं ऐसे व्रततैं किछू फल

नाही, पाप ही होय है। जैसे कोऊ अन्न छोड करि मांस भक्षण करै तैसैं ऐसा व्रत पापहीके अर्थ जानना ॥ ५० ॥

ये व्यवस्थितमहःसु सर्वदा, शर्वरीषु रचयंति भोजनम्।
निम्नगामि सलिलं निसर्गत, स्ते नयंति शिखरेषु शाखिनाम् ॥५१॥

अर्थ—जे पुरुष स्थाप्या है दीपकादि प्रकाश जिन विषैं ऐसी रात्रनिविषैं भोजनको रचै है ते स्वभावतैं नीचेको चलनेवाला जो जल ताहि शिखरनि विषैं वृक्षनकौं प्राप्त करै है।

भावार्थ—इहां ऐसा है कि कोऊ कहै हम रात्रि विषैं दीपकादि करि हिंसा निवारि लेइंगे ताकूं कह्या है। रात्रि विषैं हिंसा अनिवार्य होय है, जातैं भोजनके आश्रय जीव वा दीपकादि करि और जीव अवश्य घाते जाय हैं, अर रागादिककी तीव्रता होय है, तातैं रात्रि विषैं हिंसा अवश्य है सो निवारी न जाय। ताका दृष्टांत दिया है कि जलका स्वभाव नीचैं पडनेका है सो ऊपर चढै ऐसा कोई प्रकार होय सकै, ऐसा जानना ॥ ५१ ॥

सूचयंति सुखदायि येंगिनां, रात्रिभोजनमपास्तचेतनाः।
पावकाद्धतशिखाकरालितं, ते वदंति फलदायि काननम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जे अज्ञानी रात्रि भोजन जीवनकौं सुखदायक कहै है ते अग्निकी उद्धत शिखा करि जल्या जो वन ताहि फलदायक कहै है, सो होय नाहीं ॥ ५२ ॥

ये भुंजंति दिनरात्रिभोगयो, स्तुल्यतां रचितपुण्यपापयोः।
ते प्रकाशतमसोः समानतां, दर्शयंति सुखदुःखकारिणोः ॥ ५३ ॥

अर्थ—रचे हैं पुण्य अर पाप जिननैं ऐसे जे दिन विषैं भोजन अर रात्रि विषैं भोजन दोऊनकौं समान कहै हैं ते सुख अर दुःखके करनेवाले ऐसे प्रकाश अर अंधकार दोऊनिकौं समान दिखावै है।

भावार्थ—दिनमैं भोजन धर्मरूप है अर रात्रि भोजन पापरूप है जैसैं प्रकाश अर अंधकार समान कदाच नाहीं॥ ५३॥

रात्रिभोजनमधिश्रयंति ये, धर्मबुद्धिमधिकृत्य दुर्धियः।
ते क्षिपंति पविवह्निमंडलं, वृक्षपद्धतिविवृद्धये ध्रुवम्॥ ५४॥

अर्थ—जे धर्मबुद्धि करि रात्रि भोजनकौं सेवन करै हैं ते निश्चय करि वृक्षनिकी पद्धतिकी वृद्धिके अर्थ वज्राग्निके समूहकौं खेपै हैं।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टि दिनमैं व्रत करै है रात्रि विषैं भोजन करै है ताकूं कह्या है—जैसैं अग्नितैं कोई प्रकार वृक्षनिकी वृद्धि न होय तैसें रात्रि भोजन विषैं कोई प्रकार धर्म नाहीं, अधर्म ही है ऐसा जानना॥ ५४॥

ये विधूत्य सकलं दिनं क्षुधां, भुंजते सुकृतकांक्षया निशि।
ते विवृध्य फलशालिनीं लतां, भस्मयंति फलकांक्षया पुनः॥५५॥

अर्थ—जे जीव पुण्यकी वांछा करि सर्व दिन क्षुधाकौं धारि रात्रि विषैं भोजन करै है ते फल करि शोभित लताकौं बढाय फेर फलकी वांछा करि भस्म करै हैं॥ ५५॥

ये सदापि घटिकाद्वयं त्रिधा, कुर्वते दिनमुखांतयोर्बुधाः।
भोजनस्य नियमं विधीयते, मासि तैः स्फुटमुपोषितद्वयम्॥ ५६॥

अर्थ—जे पंडित पुरुष सदा ही दिनके आदि अर अंत विषैं दोय घडी भोजनका नियम करै हैं तिन करि प्रगटपनें एक मासमैं दोय उपवास करिए है।

भावार्थ—दिन विषै दोय दोय मुहूर्त्त भोजनका त्याग भये मासमैं साठि मुहूर्त्तका त्याग होतैं दोय उपवासका फल होय है॥५६॥

रोग शोककलिरादिकारिणी, राक्षसीव भयदायिनी प्रिया।
कन्यका दुरितपाकसंभवा, रोगिता इव निरन्तरापदाः॥ ५७॥

देहजा व्यसनकर्मपंडिताः, पन्नगा इव वितीर्णभीतयः ।
निर्धनत्वमनपायि सर्वदापात्रदानमिव दत्तवृद्धिकम् ॥ ५८ ॥
संकटं सतिमिरं कुटीरकं, नीचवित्तमिव रंध्रसंकुलम् ।
नीचजातिकुलकर्मसंगमः, शीलशौचशमधर्मनिर्गमः ॥ ५९ ॥
व्याधयो विविधदुःखदायिनो, दुर्जना इव परापकारिणः ।
सर्वदोषगणपीड्यमानता, रात्रिभोजनपरस्य जायते ॥ ६० ॥

अर्थ—रात्रिभोजन विषें तत्पर जो पुरुष ताकै ऐसी सामग्री होय है सो कहै हैं–राग अर शोक अर कलह अर राड़ इनकी करनेवाली अर राक्षसीकी ज्यौं भय देनेवाली स्त्री मिलै है, अर महापापतें उपजा अन्तराय सहित सदा दुःख देनेवाली कन्या होय है। बहुरि दिया है भय जिनमैं ऐसे पापकर्म विषें प्रवीण सर्पकी ज्यौं पुत्र होय है, बहुरि दई है वृद्धि जानें ऐसा अपात्र दानकी ज्यौं निर्धनपना विनाश रहित सदा होय है।

भावार्थ—जैसें अपात्र दान निरन्तर वृद्धि करै तैसें रात्रिभोजन निर्धनपना नित्य बढ़ावै ऐसा दृष्टांत दिया है। बहुरि छिद्रनि करि व्याप्त नीच पुरुषके वित्तकी ज्यौं संकटरूप अन्धकार सहित घर मिलै है, अर नीच जाति कुलकर्म इनका संगम होय है, अर शील निर्लोभता समभाव धर्म इनका निर्गम होय है, अभाव होय है, अर परके बुरे करनेवाले दुर्जनकी ज्यौं दुःख देनेवाली व्याधि होय है, अर सर्व दोषनके समूहकरि पीड्यमानपना, दुखीपना होय है। ऐसे रात्रिभोजन करनेवालेके दोषनिकी उत्पत्ति होय है॥ ५७–५८–५९–६० ॥

आगैं रात्रिभोजन त्यागनेवालेके गुण कहै हैं—

पद्मपत्रनयनाः प्रियंवदाः, श्रीसमः प्रियतमा मनोरमाः ।
सुन्दरा दुहितरः कलालयाः, पुण्यपंक्तय इवात्तविग्रहाः ॥ ६१ ॥

भ्रंशितव्यसनवृत्तयोऽमला:, पावना हिमकरा इवांगजा:।
शक्रमंदिरमिवास्ततामसं, मंदिरं प्रचुररत्नराजितम् ॥ ६२ ॥
लब्धचिंतितपदार्थमुज्ज्वलं, भूरिपुण्यमिव वैभवं स्थिरम्।
सर्वरोगगणमुक्तदेहता, सर्वशर्मनिवहाधिवासिता ॥ ६३ ॥
ज्ञानदर्शनचरित्रभूतय: सर्वयाचितविधानपंडिता:।
सर्वलोकपतिपूजनीयता, रात्रिभुक्तिविमुखस्य जायते ॥ ६४ ॥

अर्थ—कमलके पत्रसमान है नयन जिनके अर प्रिय वचन बोलनेवाली लक्ष्मीके समान रमावनेवाली ऐसी स्त्री होय है, अर कला विद्यानिकी स्थान अर पुण्यकी पंक्तिसमान ग्रहण किया है शरीर जिननैं ऐसी सुन्दर कन्या होय है ॥ ६१ ॥

अर दूर करी है व्यसनकी प्रवृत्ति जिननैं पवित्र निर्मल चन्द्रमा समान पुत्र होय हैं, अर इंद्रके मंदिर समान अन्धकार रहित प्रचुर रत्ननि करि शोभित ऐसा मंदिर मिलै है ॥ ६२ ॥

अर पाया है वांछित पदार्थ जातैं ऐसा उज्ज्वल महा पुण्य समान स्थिर वैभव होय है, अर सर्व रोगनके समूह करि रहित देहपना अर सर्व सुखनके समूहका आधारपना ॥ ६३ ॥

अर सर्व वांछित रचनेमैं प्रवीण ऐसी ज्ञान दर्शन चरित्रकी सम्पत्ति अर सर्वलोकपतिन करि पूजनीकपना ये रात्रिभोजनतैं जो विमुख है ताकै होय है।

भावार्थ—पूर्वोक्त गुण रात्रि भोजनके त्यागीकैं सर्व होय है ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

शूकरी शंबरी वानरी धीवरी, रोहिणी मंडली शोकिनी क्लेशिनी।
दुर्भगा नि:सुता निर्धवा निर्धना, शर्वरीभोजिनी जायते भामिनी ॥६५॥

अर्थ—रात्रि विषै भोजन करनेवाली स्त्री है सो सूकरी भीलनी वानरी धीवरी रोहिणी कुत्ती शोकसहित क्लेशसहित दुर्भग पुत्र रहित

पति रहित धन रहित ऐसी होय है ॥ ६५ ॥

बांधवैरंचिता देहजैर्वंदिता, भूषणैर्भूषिता व्याधिभिर्वर्जिता ।
श्रीमती ह्रीमती धीमती धर्मिणी, वासरे जायते भुक्तितः शर्मणी ॥६६॥

अर्थ—बांधवनि करि युक्त अर पुत्रनि करि वंदित अर आभूषणनि करि भूषित अर रोगनि करी वर्जित लक्ष्मीवान लज्जावान बुद्धिवान धर्मात्मा ऐसी सुखरूप स्त्री है सो दिनविषैं भोजनतैं होय है ।

भावार्थ—जो रात्रि विषें भोजन त्यागै है सो पूर्वोक्त गुणसहित होय है ॥ ६६ ॥

रात्रिभोजनविमोचिनो गुणा, ये भवंति भवभागिनां परे ।
तानपास्य जिननाथमीशते, वक्तुमत्र न परे जगत्रये ॥ ६७ ॥

अर्थ—जीवनिकै रात्रि भोजन त्यागके उत्कृष्ट गुण हैं तिनहि तीनलोक विषें जिनराज सिवाय और कोई कहनेकौं समर्थ नाहीं है ॥ ६७ ॥

ऐसें रात्रि भोजनका निषेध किया, आगें पंच उदंबर फलनिका निषेध करै है—

यत्र सूक्ष्मतनवस्तनूभृतः, संभवंति विविधाः सहस्रशः ।
पंचधा फलमुदुंबरोद्भवं, तन्न भक्षयति शुद्धयति शुद्धमानसः ॥६८॥

अर्थ—जाविषें सूक्ष्म हैं शरीर जिनके ऐसे जीव नानाप्रकार हजारां उपजै है तिस पांच प्रकार उदंबर जनित फलकौं शुद्ध है मन जाका ऐसा पुरुष है सो न खाय है ।

भावार्थ—ऊमर, कठऊमर, पाकरफल, बड़, पीपर ये पांच उदम्बर फल हैं ते त्रसजीवनिके उपजनेके ठिकाने हैं तातें बुद्धिवान इनका सर्वथा परित्याग करै है ॥ ६८ ॥

क्षीरभूरुहफलानि भुंजते, चित्रजीवनिचितानि येऽधमाः ।
जन्मसागरनिपातकारणं, पातकं किमिह ते न कुर्वते ॥ ६९ ॥

अर्थ—जे पापी पुरुष असंख्यात जीवनि करि भरे हुए क्षीरी वृक्षनिके फलनिकौं खाय है ते संसार सागरमैं डूबनेको कारण कौनसा पापकौं इहां न करै हैं, अपितु सर्व ही पाप करै हैं ॥ ६९ ॥

असंख्यजीवव्यपघातवृत्तिभिर्न, धीवरैरस्ति समं समानता।
अनंतजीवव्यपरोपकारिणामुदुंबराहारविलोलचेतसाम् ॥ ७० ॥

अर्थ—अनन्त जीवनके नाश करनेवाले पंच उदंबरके आहार विषैं है लोलुप चित्त जिनका तिनकी असंख्य जीवनके घातरूप है आजीविका जिनकी ऐसे ढीमरनि करि साथ समानता नाहीं है।

भावार्थ—उदम्बरके खानेवालेकै ढीमरनतैं भी अधिक पापीपना यहां दिखाया ऐसा जानना ॥ ७० ॥

ये खादंति प्राणिवर्गं विचित्रं, दृष्ट्वा पंचोदुंबराणां फलानाम्।
श्वभ्रावासं यांति ते घोरदुःखं, किं निस्त्रिंशैः प्राप्यते वा न दुःखम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे नाना प्रकार जीवनिके समूहकौं देख करि पंच उदंबर फलनिकौं खाय हैं ते घोर दुःखरूप नरकवासकौं प्राप्त होय है, अथवा निर्दय जीवनि करि कहा दुःख न पाइए है. सर्व ही पाइए है। ७१॥

अघप्रदायीनि विचिंत्य धर्मधीरुदुंबराणां, न फलानि वल्भते।
विभातुमिष्टे सुखदे प्रयोजने, करोति कस्तद्विपरीतमुत्तमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—धर्मबुद्धी पुरुष है सो उदम्बरनिके फलनिकौं पापके देनेवाले जानि नहीं खाय है, जातैं सुखदायक कार्य करनेकौं इष्ट होनपनैं कौन उत्तम पुरुष है सो तातैं विपरीत करै है, अपितु नाहीं करै है ॥ ७२ ॥

आदावन्ते स्फुटमिह गुणा निर्मला धारणीयाः,
पापध्वंसि व्रतमपमलं कुर्वता श्रावकीयम्।
कर्तुं शक्यं स्थिरगुरुतरं मंदिरं गर्तपूरं,
न स्थेयोभिर्दृढतरमृते निर्मितं ग्रावजालैः ॥ ७३ ॥

अथ—पापका नाश करनेवाला श्रावक सम्बन्धी निर्मल व्रतकौं करता जो पुरुष ता करि आदि अन्त विषैं प्रगटपनें इहां निर्मल गुण धारणा योग्य है। इहां दृष्टांत कहै है—जैसैं अत्यंत थिर जे पत्थरनके समूह तिनकरि दृढ़ किया जो गर्त्तपूर कहिए नींव ताविना स्थिर अर अतिभारी मंदिर करनेकौं समर्थ नाहीं तैसैं।

भावार्थ—जैसैं दृढ़ मूल विना निश्चल मंदिर न होय है तैसैं पंच उदम्बर तीन मकारके त्यागरूप मूलगुण विना निर्मल व्रत न होय है तातैं आदितैं लगाय अन्त पर्यंत प्रथम मूलगुण धारणा योग्य है ॥ ७३ ॥

दातुं दक्षः सुरतरुरिव प्रार्थनीयं जनानां,
चित्ते येषामीति गुणगणो निश्चलत्वं विभर्त्ति।
भुक्त्वा सौख्यं भुवनमहितं चिंतितावाप्तभोगं,
ते निर्वाधाममितगतयः श्रेयसीं यांति लक्ष्मीम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—जीवनिकौं वांछित देनेकौं कल्पवृक्षसमान प्रवीण ऐसा यह गुणनिका समूह जिनके चित्त विषैं निश्चलपनेकौं धारै हैं ते पुरुष चिंतत प्राप्त है भोग जाविषैं ऐसे लोक पूजित सुखकौं भोग करि अनंत है ज्ञान जिनके ऐसे भये संते निर्वाध मोक्षलक्ष्मीकौं प्राप्त होय है ॥ ७४ ॥

मद्य मांस मधु पंच उदंबर, फल त्रसजीवनिके आधार।
लौंणी निशिभोजन इत्यादिक, तीव्र पाप त्याग दुखकार ॥
विमल मूलगुण प्रथम धरत इम, सब व्रत शोभा पावै सार।
तातैं भोगि सार सुख क्रमतैं, होय अमितगति जगसिरदार ॥

इति श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
पंचम परिच्छेद समाप्त भया।

षष्ठम परिच्छेद

आगैं द्वादश अणुव्रतका वर्णन करैं हैं;—

मद्यादिभ्यो विरतैर्व्रतानि, कार्याणि शक्तितो भव्यैः।
द्वादश तरसा छेत्तुं, शस्त्राणि शितानि भववृक्षम्॥ १॥

अर्थ—मद्यादिकनि विरक्त जे भव्यपुरुष तिन करि शक्ति सारू द्वादश व्रत करणा योग्य है। ते व्रत संसारवृक्षकौं वेग करि छेदनेकौं तीक्ष्ण शस्त्रकी ज्यौं हैं॥ १॥

अणुगुणशिक्षाद्यानि व्रतानि गृहमेधिनां निगद्यंते।
पंचत्रिचतुः संख्यासहितानि द्वादश प्राज्ञैः॥ २॥

अर्थ—पंडितनि करि श्रावकनिके अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत क्रमसैं पांच तीन च्यार संख्या सहित द्वादश कहे हैं।

भावार्थ—पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रत ऐसैं बारह व्रत श्रावकनिके कहे हैं॥ २॥

आगैं अणुव्रतनिकौं कहैं हैं;—

हिंसासत्यस्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिरूपाणि।
ज्ञेयान्यणुव्रतानि, स्थूलानि भवंति पंचात्र॥ ३॥

अर्थ—इहां स्थूल हिंसा झूंठ चोरी अब्रह्म परिग्रह इनितैं निवृत्तिरूप पांच अणुव्रत जानना योग्य हैं॥ ३॥

तहां स्थूल हिंसात्याग व्रतकौं कहै हैं;—

द्वेधा जीवा जैनैर्मतास्त्र, सस्थावरप्रभेदेन।
तत्र त्रसरक्षायां तदुच्यतेऽणुव्रतं प्रथमम्॥ ४॥

अर्थ—जैनीनिनैं त्रस स्थावरके भेद करि दोय प्रकार जीव कहै है तहां त्रस जीवनकी रक्षा होतसंतैं सो प्रथम अणुव्रत कहिए है॥४॥

स्थावरघाती जीवत्रससंरक्षी, विशुद्धपरिणामः।
योऽक्षविषयान्निवृत्तः, स: संयतासंयतो ज्ञेयः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो जीव स्थावरघाती है स्थावरकी हिंसा त्यागनेकौं असमर्थ है, अर त्रस जीवनिका भले प्रकार रक्षा सहित है अर विशुद्ध है परिणाम जाके अर इन्द्रियके विषयनित विरक्त है सो संयतासंयत कहिए देशव्रतका धारक श्रावक जानना ॥ ५ ॥

हिंसा द्वेधा प्रोक्ताऽरंभानारंभजत्वतोदक्षैः।
गृहवासतो निवृत्तो द्वेधापि त्रायते तां च ॥ ६ ॥

गृहवाससेवनरतो मन्दकषायः प्रवृत्तितारंभाः।
आरम्भजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—पंडित करि आरम्भ अर अनारंभतै उपजवे पने करि हिंसा सो कही है दोय प्रकार गृहवासतैं निवृत्त जो मुनि सो तौ दोय प्रकार हिंसाकौं बचावै है ॥ ६ ॥

अर जो गृहवासके सेवनेमैं रत श्रावक मन्द कषाय स्वरूप वर्त्ताया है आरम्भ जानैं सो निश्चय करि आरम्भ जनित हिंसाके त्यागनेकौं समर्थ न होय है।

भावार्थ—मन्द कषायरूप चारित्रमोहके उदयतैं अवशपनें व्यापार आरम्भ विष सो तो आरम्भजनित हिंसा कहिए, अर विना ही प्रयोजन चला करि आप ही तीव्र कषायरूप हिंसा करना सो अनारंभ-जनित हिंसा कहिए सो इनि दोऊ प्रकार हिंसानिका त्याग तो मुनीश्वरनिकै होय है, अर गृहस्थके शक्तिहीनपनातैं निर्दोष व्यापारादि जनित हिंसाका त्याग न होय सकै है परन्तु परिणामनि विषैं सर्व हिंसातैं महा अरुचि है, निन्दा गर्हा आपकी करै है ऐसा जानना॥७॥

शमिताद्यष्टकषायः प्रवर्त्तते यः परत्र सर्वत्र ।
निंदागर्हाविष्टः सः संयमासंयमं धत्ते ॥ ८ ॥

अर्थ—उपशमाएँ हैं आदिके अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान रूप क्रोधादि अष्ट कषाय जानैं अर सर्व ठिकानैं निन्दा गर्हा युक्त जो प्रवर्त्त है सो संयमासंयम जो देशव्रत ताहि धारै है ॥ ८ ॥

कामासूयामायामत्सरपैशून्यदैन्यमदहीनः ।
धीरः प्रसन्नचित्तः प्रियंवदो वत्सलः कुशलः ॥ ९ ॥
हेयादेयपटिष्ठो गुरुचरणाराधनोद्यतमनीषः ।
जिनवचनतायधौतस्वांतकलंको भवविभीरुः ॥ १० ॥
सम्यक्तरत्नभूषो मन्दीकृतसकलविषयकृतगृद्धिः ।
एकादशगुणवर्त्ती निगद्यते श्रावकः परमः ॥ ११ ॥

अर्थ—विषयनिकी वांछा अदेखसका भाव मायाचार मत्सरता चुगलीखाना दीनपना जात्यादि मद इनकरि रहित होय अर प्रसन्नचित्त होय अर प्रिय वचन कहनेवाला होय धीर होय प्रीतियुक्त अर प्रवीण होय ॥ ९ ॥

बहुरि त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य विषै पंडित होय अर गुरु चरणनिके आराधने विषैं उद्यमरूप बुद्धियुक्त होय, अर जिनवचनरूप जल करि धोया है मनका कलंक जानैं ऐसा होय, अर संसारतैं भयभीत होय ॥ १० ॥

बहुरि सम्यक्तरूप रत्नके आभूषण करि सहित होय, अर मन्द करि है समस्त विषयनि करि लोलुपता जानैं ऐसा होय ।

बहुरि एकादश गुण जे ग्यारह प्रतिमा तिन विषैं प्रवर्तनेवाला होय सो परम श्रावक कहिए है ॥ ११ ॥

संरंभसमारंभारंभैर्योगकृतकारितानुमतैः ।
सकषायैरभ्यस्तैस्तरसा संपद्यते हिंसा ॥ १२ ॥

त्रिस्त्रिस्त्रिचतुःसंख्यैः संरंभाद्यैः परस्परं गुणितैः ।
अष्टोत्तरशतभेदा हिंसा संपद्यते नियतम् ॥ १३ ॥

अर्थ—संरम्भ समारम्भ आरम्भ अर मन वचन काय अर कृत कारित अनुमोदना अर क्रोध मान माया लोभसहित गुणे भए निकरि वैग करि हिंसा उपजे है ॥ १३ ॥ संरम्भादिक तीन अर योग तीन अर कृत कारित अनुमत ये तीन अर कषाय च्यार इनतैं परस्पर गुणो भएनि करि एकसौ आठ भेदरूप हिंसा निश्चयतैं उपजै है ।

भावार्थ—संरम्भ कहिए हिंसा करनेका श्रद्धान विचार अर समारम्भ कहिये हिंसाके उपकरण मिलावना अर आरम्भ कहिए जीवनिका मारना ये तीनौं मन वचन काय करि गुणे भए; तिनकौं कृत कारित अनुमोदना करि गुणे सत्ताईस भए तिनकौं क्रोधादि च्यार कषायनितैं गुणे एकसौ आठ भए । इनसैं एकसै आठ भंगनिकी पलटन कैसैं होय है सो कहिए है । प्रथम संरम्भ मन करि करया क्रोधसहित ऐसा प्रथम भँग भया, बहुरि समारम्भ मन करि कऱ्या क्रोध सहित ऐसा दूसरा भँग भया, बहुरि समारम्भ मन करि कऱ्या क्रोध सहित ऐसा तीसरा भँग भया, ऐसैं प्रथम भेद समाप्त भए योगरूप दूसरा भेद पलटै जैसें मन कह्या तहां वचन कहना, बहुरि ताकूं भी पूर्ण होतैं तीसरा भेद पलटै, जैसै कृत कह्या था तहां कारित कहना ताकूं भी पूर्ण होतैं चौथा भेद पलटै जैसैं क्रोध कह्या तहां मान कहना । जैसैं भँग पलटनेतैं एकसौ आठ भेद हिंसाकेहोय हैं ऐसा जानना ॥१३॥

जीवत्राणेन विना व्रतानि, कर्माणि नो निरस्यंति ।
चन्द्रेण विना नक्षैर्हन्यन्ते, तिमिरजालानि ॥ १४ ॥

अर्थ—जीवनिकी दया विना व्रत हैं ते कर्मनिका नाश नाहीं करै है जैसैं चन्द्रमा विना नक्षत्रनि करि अन्धकारका समूह नाहीं हनिए है तैसैं ।

भावार्थ—सब व्रतनमैं जीवदया प्रधान है ऐसा जानना ॥ १४॥

तिष्ठंति व्रतनियमा नाहिंसामंतरेण सुखजनकाः।
पृथिवीं न विना दृष्टास्तिष्ठन्तः पर्वताः क्वापि ॥ १५ ॥

अर्थ—सुखके उपजावने हार व्रत अर नियम हैं ते दया विना नांहीं तिष्ठै हैं, जैसे पृथ्वी विना तिष्ठते पर्वत कहूं भी न देखे तैसैं।

भावार्थ—सब व्रत नियमनिका आधार दया है ऐसा जानना ॥ १५॥

निघ्नानेनाहिंसामात्माधारां निपात्यते नरके।
स्वाधारां न हि शाखां, छिंदानः किं पतति भूमौ ॥ १६॥

अर्थ—आत्माका आधाररूप जो अहिंसा दया ताहि विनाशता जो पुरुष ता करि आत्मा नरक विषैं पटकिए है, इहां दृष्टांत कहिए है, अपने आधाररूप जाय बैठ्या ऐसी जो शाखा डाली ताहि छेदता सन्ता पुरुष है सो पृथ्वीविषै कहा नाहीं पड़ै है ? पड़ै ही है ॥ १६॥

स मतो विरताविरतः स्वल्पकषायो विवेकपरमनिधिः।
रक्षति यस्त्रसदशकं प्राणहितं स्थावरचतुष्कम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जो वेइंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेन्द्रिय सैनी असैनी इनके पर्याप्त अपर्याप्त भेद करि दश भेद भए, यह जो त्रस दशक ताकी रक्षा करै है, अर एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म ताके पर्याप्त अपर्याप्त भेद करि च्यार भेद ऐसा स्थावर चतुष्क ताका हित वांछै है, अवश्यतैं तिनकी हिंसा होय है तो भी अनुमोदना नाही करै है, मन्द है कषाय जाके अर विवेकका परमनिधान सो विरताविरत श्रावक कह्या है ॥ १७ ॥

सर्वविनाशी जीवस्त्रसहननं, त्याज्यते यतो जैनैः।
स्थावरहननानुमतिस्ततः, कृता तैः कथं भवति ॥ १८ ॥

अर्थ—यातैं जीव है सो सबका हिंसक है तातैं जैनीनि करि

अब हिंसाका त्याग करिए है तिन करि स्थावरकी हिंसा विषै अनु-
मोदना कैसें करिए है ।

भावार्थ—कोउ कहै श्रावकके त्रस हिंसाका त्यागके ऐसे उप-
देशमैं स्थावर हिंसामैं अनुमोदना आई ताकूं कह्या है । जीव सर्वहीका
हिंसक है ताके सर्व हिंसा छूटती न जानि त्रस हिंसा छुड़ाई है किछू
स्थावरकी हिंसा करनेका उपदेश नाहीं तातैं स्थावर हिंसामें अनु-
मोदना नाहीं ऐसा जानना ॥ १८ ॥

त्रिविधा द्विविधेन मता, विरतिर्हिंसादितो गृहस्थानां ।
त्रिविधा त्रिविधेन मता, गृहचारकतो निवृत्तानाम् ॥१९॥

अर्थ—गृहस्थनिकै हिंसादिकनितैं विरति कहिए त्यागभाव सो
दोय प्रकार सहित तीन प्रकार । बहुरि गृह त्यागीनिकै तीन प्रकार
सहित तीन प्रकार है ।

भावार्थ—करै नाही करावै नाहीं मन वचन काय करि ऐसें
छह प्रकार त्याग है । अनुमोदना सहित नवकोटी त्याग नाहीं जातें
हिंसादिकमैं अनुमोदनका प्रसंग बन रहा है, ऐसा गृहस्थनिकै जानना।
बहुरि जे गृहाचारके त्यागी हैं तिनकै कृत कारित अनुमोदना सहित
मन वचन काय करि नवकोटीका त्याग हैं, ऐसा जानना ॥१९॥

जीववपुषोरभेदो येषामेकांतिको मतः शास्त्रे ।
कायविनाशे तेषां जीवविनाशः कथं वार्यः ॥ २० ॥

अर्थ—जिनके शास्त्रविषैं जीवका अर शरीरका एकांतरूप अभेद
कह्या है तिनके शरीरके विनाश होत संतें जीवका विनाश कैसें न
भया ॥ २० ॥

आत्मशरीरविभेदं वदंति, ये सर्वथा गतविवेकाः ।
कायवधे हन्त कथं, तेषां संजायते हिंसा ॥ २१ ॥

अर्थ—जो विवेक रहित आत्माका अर शरीरका सर्वथा भेद कहै है तिनके शरीरके वध होत संतें हिंसा कैसें होय यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

इहां भावार्थ ऐसा है:—जो पहिले श्लोकमें तो सर्वथा जीवकै अर शरीरकूं अभेद माने हैं तिनके शरीर विनाश होतें अवश्य जीवका नाश आया तब स्वयमेव हिंसा आई, अर जे सर्वथा जीवको अर शरीरकौं भेद मानै है तिनके शरीरके नाशमैं हिंसा न ठहरी तब ते भी स्वच्छन्द होतें हिंसक ही भये। तातें दोऊ ही एकांती है ते हिंसक हैं, ऐसा जानना ॥ २१ ॥

भिन्नाभिन्नस्य पुनः पीडा संपद्यतेतरां घोरा ।
देहवियोगे यस्मात्तस्मादनिवारिता हिंसा ॥ २२ ॥

अर्थ—जातें देहतें कोई प्रकार भिन्न कोई प्रकार अभिन्न ऐसा जो जीव ताकै शरीरका वियोग होत संतैं अतिशय करि घोर पीड़ा उपजै हैं तातैं अनिवारित हिंसा होय है।

भावार्थ—लक्षण भेदकरि जीव शरीर भिन्न हैं तथापि बन्ध-दृष्टि करि अभेद है तातें जीवके शरीरके वियोग करनेमैं अवश्य हिंसा होय है, ऐसा जानना ॥ २२ ॥

तत्पर्यायविनाशो दुःखोत्पत्तिः परश्च संक्लेशः ।
यः सा हिंसा सद्भिर्वर्जयितव्या प्रयत्नेन ॥ २३ ॥

अर्थ—तिस पर्यायके विनाश होतसन्तैं दुःखकी उत्पत्ति होय है अर जो महासंक्लेश होय है सो हिंसा संतनि करि यत्न सहित वर्जन करना योग्य है ॥ २३ ॥

प्राणी प्रमादकलितः, प्राणव्यपरोपणं यदा धत्ते ।
सा हिंसाऽकथि दक्षैर्भवबृक्षनिषेकजलधारा ॥ २४ ॥

अर्थ—जो प्राणी प्रमादकरि व्याप्त भया संता शरीरादि प्राणनिका व्यपरोपणा करै है घात करै है सो पंडितनि करि हिंसा कही है, कैसी है हिंसा संसार वृक्षके सींचनेकौं जलधारा समान है।

भावार्थ—कषाय सहित आपके वा परके प्राणनिका नाश करना सो हिंसाका लक्षण कह्या है ॥ २४ ॥

म्रियतां मा मृत जीवः प्रमादबहुलस्य निश्चिता हिंसा ।
प्राणव्यपरोपेऽपि प्रमादहीनस्य सा नास्ति ॥ २५ ॥

अर्थ—जीव मरो चाहै न मरो तीव्र प्रमाद सहित जीवकै निश्चय रूप हिंसा है, बहुरि प्राणनिका नाश होतैं भी प्रमाद रहितकै सो हिंसा नाहीं है।

भावार्थ—हिंसाका मूल कारण प्रमाद है ताके होतैं बाह्य प्राण-व्यपरोपण होते वा न होतैं हिंसा अवश्य होय है, अर ता विना अप्रमत्त मुनिराजकै अवश्यतैं प्राणव्यपरोपण होतैं भी हिंसा नाहीं कही है ॥ २५ ॥

यो नित्योऽपरिणामी तस्य, न जीवस्य जायते हिंसा ।
न हि शक्यते निहंतुं, केनापि कदाचनाकाशम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जो नित्य परिणाम रहित कूटस्थ है ताके जीवकी हिंसा न होय है, जातैं, कोऊ करि कदाचित् आकाश हनिवेकूँ समर्थ न हूजिए है।

भावार्थ—जो सर्वथा नित्य कूटस्थ आत्माकौं माने है ताके हिंसाका जानना न होय तब ताका त्याग भी न होय है, तातैं नित्य-पनेंका एकांत मिथ्या दिखाया है ॥ २६ ॥

क्षणिको यो व्ययमानः क्रियमाणा तस्य निष्फला हिंसा ।
चलमानाः पवमानो न, चाल्यमानः फलं कुरुते ॥ २७ ॥

अर्थ—जो क्षणिक नाश होता सन्ता जीव है ताकी करी भई, हिंसा निष्फल है। जैसें चालता जो पवन सो चलता सन्ता फलकौं न करै है तैसें।

भावार्थ—जे जीवकौं क्षणिक मानै है तिनकै क्षण क्षण आपहीका नाश भया ताकी हिंसा निष्फल भई, जैसें पवन आपही चालै सो चलाया सन्ता फल कहा करै तातैं क्षणिक मानना भी मिथ्या है॥ २७॥

यस्मान्नित्यानित्यः कायवियोगे निपीड्यते जीवः।
तस्माद्युक्ता हिंसा प्रचुरकलिलबन्धवृद्धिकरी॥ २७॥

अर्थ—जातैं कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य स्वरूप जीव है सो शरीरके वियोग होतसन्तैं पीडिए है दुखी होय है, तातैं प्रचुर पापकी बन्ध करनेवाली हिंसायुक्त है।

भावार्थ—स्याद्वाद करि नित्य वा अनित्य स्वरूप जीव मानै है तिनहीकै हिंसाका ज्ञान होय है, तब तिनहीकै त्याग होय है, एकातीकै हिंसाका जाने विना त्याग नांहीं। ऐसा इहां आशय जानना॥२८॥

देवातिथिमन्त्रौषधपित्रादिनिमित्ततोऽपि सम्पन्ना।
हिंसा धत्ते नरके किं पुनरिह नान्यथा विहिता॥ २९॥

अर्थ—देव गुरु मंत्र औषध पितर इत्यादिकनिके निमित्ततैं भी प्राप्त भई हिंसा है सो नरकमैं धरै है तौ इहां फेर और प्रकार करी भई हिंसा नरक विषैं न धरै है? धरै ही है॥ २९॥

आत्मवधो जीववधस्तस्य च, रक्षात्मनो भवति रक्षा।
आत्मा न हि हंतव्यस्तस्य, वधस्तेन मोक्तव्यः॥ ३०॥

अर्थ—जीवका वध है सो आत्माका वध है अर जीवकी रक्षा है सो आत्माकी रक्षा है, बहुरि आत्मा हनिवे योग्य नाही ता कारण तिस जीवका वंध त्यागना योग्य है।

भावार्थ—जीवनके घात विषैं कषाय भाव होय है तिन कषाय भावनि करि स्वभाव घात होतैं आत्माहीका घात भया, अर जीवनिकी रक्षा करनेतैं कषाय घटै तब आयुहीकी रक्षा भई। बहुरि आत्म-घात करना योग्य नाहीं। तातैं हिंसा त्यागना योग्य है ॥ ३० ॥

सर्वाविरतिः कार्या विशेषयित्वातिचारभीतेन।
पौर्वापर्यं दृष्ट्वा सूत्रार्थं तत्त्वतो बुद्ध्वा ॥ ३१ ॥

अर्थ—अतीचार करि भयभीत पुरुष करि सर्वा विरतिः कहिए सर्वप्रकार त्याग पूर्वापर देख करि भाषित सूत्रके अर्थकों निश्चयतैं जान करि सो विशेषता करि करना योग्य है।

भावार्थ—त्याग करना सो या प्रकार मेरे त्याग है ऐसे विशेषण-सहित पूर्वापर विचारकै अर सूत्रके अर्थकों जान करि, बहुरि मत कदाच प्रतिज्ञा भंग होय ऐसैं मनमैं भय रख करि करना। विना विचारे करना योग्य नाहीं ॥ ३१ ॥

शक्त्यनुसारेण बुधैर्विरतिः सर्वापि युज्यते कर्तुं।
तामन्यथा दधानो भंगं, याति प्रतिज्ञायाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—पंडितनि करि शक्ति अनुसार सर्व ही त्याग करना योग्य है, बहुरि ता त्यागकों अन्यथा कहिए शक्ति विना ही करता जो पुरुष सो प्रतिज्ञाके भंगकों प्राप्त होय है।

भावार्थ—व्रत धारणमैं शक्ति छिपावनी नाहीं अर शक्ति सिवाय भी न करना ऐसा इहां कह्या है ॥ ३२ ॥

आगैं मिथ्यादृष्टी जीव केई प्रकार हिंसा थापे हैं तिनका निरा-करण करिए है—

केचिद्वदंति मूढा हंतव्या, जीवघातिनो जीवाः।
परजीवरक्षणार्थं, धर्मार्थं पापनाशार्थम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—केई मूढ मिथ्यादृष्टि कहै हैं कि परजीवनकी रक्षाके अर्थ वा धर्मके अर्थ वा पापके नाशके अर्थ जीवनके मारनेवाले जे हिंसक जीव ते मारने योग्य हैं ॥ ३३ ॥

तिनसैं आचार्य कहैं हैं—

युक्तं तन्नैवं सति हिंस्रत्वात्प्राणिनामशेषाणाम्।
हिंसायाः कः शक्तो, निषेधने जायमानायाः ॥ ३४ ॥

अर्थ—ऐसा कहना युक्त नाहीं जातैं या प्रकार माने संतैं हिंसकपनेंतैं समस्त जीवनिकी उपजी जो हिंसा ताके निषेध करने विषैं कौन समर्थ है।

भावार्थ—हिंसक जीवनिकी हिंसा योग्य होय तौ हिंसक जीव तौ सब ही हैं सब हीकी हिंसा ठहरै तातैं हिंसक जीवनिकी भी हिंसा करना योग्य नाहीं ॥ ३४ ॥

आगैं वानै कह्या था जो धर्मके अर्थ हिंसा करनी ताका निषेध करै है—

धर्मोऽहिंसाहेतुर्हिंसातो, जायते कथं तथ्यः।
न हि शालिः शालिभवः, कोद्रवतो दृश्यते जातः ॥ ३५ ॥

अर्थ—धर्म है सो अहिंसा हेतु है अहिंसातैं उपजै है सो तैसा सत्यार्थ धर्म हिंसातैं कैसे उपजै। इहां दृष्टांत कहै है;—धानतैं नपज्या जो चावल सो कोदूंतैं उपज्या न देखिए है।

भावार्थ—दया है कारण जाका ऐसा धर्म हिंसातैं कदाच न होय है; जातैं कारणानुरूप कार्य होय है; तातैं धर्मके अर्थ भी हिंसा करना योग्य नाहीं ॥ ३५ ॥

आगैं पहले वानै कह्या था जो पापके नाशके अर्थ हिंसकनकी हिंसा करनी ताका निषेध करै है;—

पापनिमित्तं हि वधः पापस्य विनाशने न भवति शक्तः ।
छेदनिमित्तं परशुः शक्नोति लतां न वर्द्धयितुम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पापका कारण जो जीवनिका घात सो पापके विनाशने विषैं समर्थ न होय है। जैसे छेदनेका कारण फरसा सो लताके बढावनेको समर्थ न होय तैसैं ॥ ३६ ॥

आगैं हिंसक जीवनिकी हिंसा धर्मके अर्थ मानै ताका निषेध करै है; —

हिंस्राणां यदि घाते धर्मः, संभवति विपुलफलदायी।
सुखविघ्नस्तर्हि गतः, परजीवविघातिनां घाते ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो हिंसक जीवनिके घात विषैं बडा फलका देनेवाला धर्म संभवै है तो पर जीवनिकी हिंसा करनेवालेनिके घातमैं सुख विषैं विघ्न आया।

भावार्थ—हिंसक जीवनकी हिंसा करनेवालेनैं उनके सुखमैं विघ्न करया सोई हिंसा भई, धर्म काहेका; ऐसा जानना ॥ ३७ ॥

यस्माद्गच्छंति गतिं निहता, गुरुदुःखसंकटां हिंस्राः ।
तस्माद्दुःखं ददतः पापं, न भवति कथं घोरम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जातैं हिंसक हैं ते मारे भए महादुःखका है संकट जा विषैं ऐसी गतिकौं जाय हैं तातैं दुःख देनेवालेकै घोर पाप कैसैं न भया ॥ ३८ ॥

आगैं दुःखी जीवनिकी हिंसाका निषेध करै है:—

दुःखवतां भवति वधे धर्मो नेदमपि युज्यते वक्तुम् ।
मरणे नरके दुःखं घोरतरं वार्यते केन ॥ ३९ ॥

अर्थ—दुःखी जीवनीके घात विषैं धर्म होय है ऐसा भी कहना योग्य नाहीं, जातैं मरण होतसंतैं नरक विषैं अत्यंत घोर दुःख कौन

करि निवारिए है । भावार्थ—कोई कहै कि दुःखी जीवनिकी हिंसामैं धर्म होय है जातैं वो वाका दुःख दूर भया ताकूं कह्या है—वह जीव मरकै नरक गया तहां महा दुःख कैसैं निवारैगा तातैं अधिक दुःख देनेतैं पाप ही है धर्म नाहीं ॥ ३९ ॥

सुखितानामपि घाते पापप्रतिषेधने परो धर्मः ।
जीवस्य जायमाने निषेधितुं शक्यते केन ॥ ४० ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि, सुखी जीवनके घात विषैं भी विषय सुखरूप पापका निषेध होतैं बड़ा धर्म है, ताकूं कह्या है—ऐसा नाहीं, जातैं जीवनिके उपजते संतैं पाप निषेधनेकौं कौन करि समर्थ हूजिए है ।

भावार्थ—वह जीव अन्यत्र उपजैगा तहां पाप करैगा तातैं उल्टा सिवाय पाप करावनेमैं धर्म नाहीं, पाप ही है ॥ ४० ॥

पौर्वापर्यविरुद्धं सम्यक्त्वमहीध्रपाटने वज्रम् ।
इत्थं विचार्य सद्भिः परवचनं सर्वथा हेयम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—पंडितनि करि या प्रकार विचारकै पूर्वापर विरुद्ध अर सम्यक्त पर्वतके तोडनेकौं वज्र समाज जो मिथ्या दृष्टीनिका वचन सो सर्वथा त्यागना योग्य है ॥ ४१ ॥

अज्ञानतो यदेनो जीवानां जायते परमघोरम् ।
तच्छक्यते निहंतुं ज्ञानव्यतिरेकतः केन ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो जीवनिकै अज्ञानतैं महा घोर पाप उपजै है सो पाप ज्ञान विना कौन करि हनिवेकूँ समर्थ हूजिए है ।

भावार्थ—अज्ञानजनित पाप ज्ञानहीतैं मिटै औरनितैं न मिटै है, ऐसा जानना ॥ ४२ ॥

यो धर्मार्थं छिन्ते हिंसाहिंसासुखदुःखिनो मंथिनः ।
पीयूषं स्वीकर्तुं स हंति, विषविटपिनो नूनम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो जीव धर्मके अर्थ हिंसक वा अहिंसक सुखी वा दुखी जीवनिकौं मारे है सो निश्चय करि अमृतके अंगीकार करनेकौं विष-वृक्षनिकौं हनै है, ताडै है; तहां अमृत काहेका ॥ ४३ ॥

मनसा वचसा वपुषा हिंसां, विदधाति यो जनो मूढः।
जन्मवनेऽसौदीर्घे दीर्घं, चंचूर्यते दुःखी ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो मूढ जन मन करि वचन करि कायकरि हिंसा करै है सो यह दुःखी भया सन्ता दीर्घ संसार वन विषैं बहुत काल ताईं अतिशय करि चूर्ण कीजिए है ॥ ४४ ॥

इहां ताईं अहिंसा अणुव्रतका वर्णन किया। आगैं सत्य अणुव्रतका वर्णन करै है—

यन्म्लेच्छेष्वपि गर्ह्यं, यदनादेयं जिघृक्षतां धर्मम्।
यदनिष्टं साधुजनैस्तद्वचनं नोच्यते सद्भिः ॥ ४५ ॥

अर्थ—जो वचन म्लेच्छनि विषैं भी निंदनीक अर धर्मकौं ग्रहण करनेके वांछक जे पुरुष तिनके अनादरने योग्य अर साधुजननि करि इष्ट नाहीं ऐसा जो असत्य वचन सो संतजननि करि नाहीं बोलिए है ॥ ४५ ॥

कामक्रोधक्रीडाप्रमादमदलोभमोहविद्वेषैः।
वचनमसत्यं सन्तो, निगदंति न धर्मरतचित्ताः ॥ ४६ ॥

अर्थ—धर्मविषैं रत हैं चित्त जिनके ऐसे संतजन हैं ते काम क्रोध क्रीडा प्रमाद लोभ मोह द्वेष इन भावनि करि असत्य वचनकौं न बोलै हैं ॥ ४६ ॥

सत्यमपि विमोक्तव्यं, परपीडारंभतापभयजनकम्।
पापं विमोक्तुकामैः, सुजनैरिव पापिनां वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—पाप छोडनेकी है वांछा जिनके ऐसे पुरुषनि करि पर

जीवनके पीड़ा आरम्भ सन्ताप भय इनका उपजावनेवाले सत्य वचन भी त्यागना योग्य है ॥ ४७ ॥

भाषंते नासत्यं चतुः, प्रकारमपि संसृतिविभीतः ।
विश्वासधर्मदहनं, विषादजननं बुधावमतम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—संसारतें भयभीत पुरुष हैं ते असदुद्भावन, भूतनिह्नव, विपरीत निंद्य ऐसे चारू ही प्रकार असत्यकों न बोलै है, कैसा असत्य वचन विश्वास प्रतीति रूप धर्मकों जलावनेवाला अर विषाद उपजानेवाला अर पंडितनि करि करी है अवज्ञा जाकी ऐसा है ॥ ४८ ॥

प्रथम असदुद्भावन असत्यकों कहै है—

असदुद्भावनमाद्यं वचनमसत्यं निगद्यते सद्भिः ।
एकांतिकाः समस्त भावा, जगतीति तद् ज्ञेयम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—जगत विषैं सकल पदार्थ हैं ते एकांतस्वरूप हैं ऐसैं असत् कहिये अविद्यमानका उद्भावन कहिये प्रकट करना सो, संतन करि प्रथम असत्य वचन जानना योग्य है ॥ ४९ ॥

आगैं भूतिनिह्नवकों कहै है—

सदल्पनं द्वितीयं वितथं, कथयंति तथ्यविज्ञानाः ।
सृष्टिस्थितिलययुक्तं, किंचिन्नास्तीति तदभिहितम् ॥ ५० ॥

अर्थ—उत्पाद स्थिति नाश सहित किछू भी नाहीं है ऐसा कहना सो सदल्पन कहिए भूतनिह्नव विद्यमान वस्तुका अभाव कहना ताहि सांचा है ज्ञान तिनका ऐसे पंडित हैं ते दूसरा असत्य कहैं हैं ॥ ५० ॥

आगैं विपरीत असत्यकों कहैं हैं—

विपरीतमिदं ज्ञेयं तृतीयकं, यद्वदंति विपरीतम् ।
सग्रन्थं निर्ग्रन्थं निर्ग्रन्थमपीह सग्रन्थम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—परिग्रह सहित हैं सो तो निर्ग्रंथ है, अर परिग्रह रहित हैं सो भी इहां सग्रंथ हैं ऐसा जो विपरीत उलटा बोल है सो यहु तीसरा असत्य विपरीत जानना ॥ ५१ ॥

आगैं निंद्य नामा असत्यकौं कहैं हैं—

सावद्याप्रियगर्ह्यप्रभेदतो, निंद्यमुच्यते त्रेधा।
वचनं वितथं दक्षैर्जन्माब्धिनिपातने कुशलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—पंडितनि करि सावद्य अर अप्रिय अर गर्ह्य इन भेदनि करि निंद्य वचन तीन प्रकार कहिए है, कैसा है यह असत्य वचन संसारसमुद्र विषैं पटकनेमैं प्रवीण है ॥ ५२ ॥

आगैं निंद्य वचनके तीन भेदनिमैं प्रथम सावद्य वचनकौं कहैं हैं—

आरम्भाः सावद्या विचित्रभेदा यतः प्रवर्तन्ते।
सावद्यमिदं ज्ञेयं वचनं, सावद्यवित्रस्तैः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जातैं नाना प्रकार हैं भेद जिनके ऐसे पाप सहित आरम्भ प्रवर्तैं है सो यह सावद्य वचन है सो सावद्यतैं भयभीत पुरुषनि करि जानना योग्य है ॥ ५३ ॥

आगैं अप्रिय वचनकौं कहैं हैं—

कर्कशनिष्ठुरभेदनविरोधनादिबहुभेदसंयुक्तम्।
अप्रियवचनं प्रोक्तं, प्रियवाक्यप्रवणवाणीकैः ॥ ५४ ॥

अर्थ—प्रिय बोलनेमैं चतुर हैं वाणी जिनकी ऐसे पुरुषनि करि कर्कश कहिए कठोर वचन, बहुरि निठुर वचन, बहुरि औरनमैं भेद करि देय ऐसा वचन, बहुरि परस्पर विरोध उपजाय देय ऐसा वचन इत्यादि अनेक भेदन करि संयुक्त अप्रिय वचन कह्या है ॥ ५४ ॥

आगैं गर्ह्य वचनकौं कहैं हैं—

हिंसनताडनभीषणसर्वस्वहरणपुरःसरविशेषम्।
गर्ह्यवचो भाषंते गर्ह्योज्झितवचनमार्गज्ञाः ॥ ५५ ॥

अर्थ—हिंसारूप ताडनारूप भयानक सर्वद्रव्य हरण स्वरूप इत्यादिक हैं भेद जाके ऐसा जो निंद्य वचन ताहि निरूपना करि रहित वचनके मार्ग जाननेवाले हैं ते गर्ह्य वचन कहैं हैं ॥ ५५ ॥

अर्थ्यं पथ्यं तथ्यं श्रव्यं, मधुरं हितं वचो वाच्यम् ।
विपरीतं मोक्तव्यं जिनवचनविचारकैर्नित्यम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रके वचनके विचार करनेवाले पुरुष हैं तिन करि नित्य ही प्रयोजनरूप सुखकारी जैसाका तैसा सुनने योग्य मधुर हित-रूप ऐसा वचन कहना योग्य है, अर इनतैं विपरीत उलटा वचन है सो त्यागने योग्य है ॥ ५६ ॥

वैरायासाप्रत्ययविषादकोपादयो महादोषाः ।
जन्यंतेऽनृतवचसा, कुभोजनेनैव रोगगणाः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसैं खोटे भोजन करि निश्चयतैं रोग उपजै है तैसैं असत्य वचन करि वैरभाव भ्रम अप्रतीति विषाद क्रोध इत्यादि महा-दोष हैं ते उपजै हैं ॥ ५७ ॥

वचसावृतेन जन्तोर्व्रतानि, सर्वाणि झटिति नाश्यंते ।
विपुलफलवंति महत्ता, दवानलेनेव विपिनानि ॥ ५८ ॥

अर्थ—जैसैं महान् दावानल करि बड़े फलनि करि सहित जे वन हैं ते नाश कीजिए हैं तैसैं असत्य वचन करि जीवके सर्व व्रत हैं ते शीघ्र नाश कीजिए है ॥ ५८ ॥

इहां ताईं असत्य त्याग अणुव्रतका वर्णन किया । आगैं अचौर्य व्रतका वर्णन करै हैं—

क्षेत्रे ग्रामेऽरण्ये रथ्यायां, पथि गृहे खले घोषे ।
ग्राह्यं न परद्रव्यं नष्टं, भ्रष्टं स्थितं वाऽपि ॥ ५९ ॥

अर्थ—खेत विषैं ग्राम विषैं वन विषैं गली विषैं अर विषें घूरे

विषें गायनके समूह विषें दूसरेका द्रव्य पड़ा होय वा भूला होय वा धरया होय सो भी ग्रहण करना योग्य नाहीं ॥ ५९ ॥

तृणमात्रमपि द्रव्यं, परकीयं धर्मकांक्षिणा पुंसा।
अवितीर्णं नाऽऽदेयं, वह्निसमं मन्यमानेन ॥ ६० ॥

अर्थ—धर्मका वांछक जो पुरुष ता करि विना दिया पराया द्रव्य अग्नि समान मान ता करि तृणमात्र भी ग्रहण करना योग्य नाहीं ॥ ६० ॥

यो यस्य हरति वित्तं, स तस्य जीवस्य जीवितं हरति।
आश्वासकरं बाह्यं, जीवानां जीवितं वित्तम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो जाका धन हरै सो ताका प्राण हरै है जातें जीवनके थिरता बधावनेवाला धन है सो बाह्य प्राण है ॥ ६१ ॥

सदृशं पश्यंति बुधाः, परकीयं कांचनं तृणं वाऽपि।
संतुष्टा निजवित्तैः परतापविभीरवो नित्यम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—पंडित हैं ते पराये सुवर्णकौं वा तृणकौं समान देखे है, कैसे है ते अपने धननि करि संतुष्ट अर परकौं सन्ताप उपजावनेमैं भयभीत हैं ॥ ६२ ॥

तैलिकलुब्धकखटिकमार्जारव्याघ्रधीवरादिभ्यः।
स्तेनः कथितः पापी, संततपरतापदानरतः ॥ ६३ ॥

अर्थ—तेली बहेलिया खटीक बिलाव बाघ ढीमर इन तें चोर है सो अधिक पापी कह्या है, चौर निरन्तर परजीवनकौं दुःख देनेमैं तत्पर है ॥ ६३ ॥

ऐसें अचौर्य अणुव्रतका वर्णन किया। आगें परदारा त्याग अणुव्रतकौं कहै हैं—

स्वसृमातृदुहितृसदृशीः दृष्ट्वा, परकामिनीः पटीयांसः।
दूरं विवर्जयन्ते भुजगीमिव, घोरदृष्टिविषाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—पंडित हैं ते परकी स्त्रीकौं बहनिसमान अर बड़ीकौं माता समान अर छोटीकौं बेटी समान देख करि भयानक दृष्टि विषें सर्वण'की ज्यौं दूर त्यागें हैं ॥ ६४ ॥

न निषेव्या परनारी, मदनानलतापितैरपि त्रेधा ।
क्षुत्क्षामैरपि पुरुषैर्न, भक्षणीयं परोत्सृष्टम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—काम अग्नि करि तप्तायमान जीवनि करि भी मन वचन काय करि परस्त्री सेवना योग्य नाहीं, जैसें क्षुधा करि दुर्बल चतुर पुरुषनि करि भी पराई औठ खाना योग्य नाहीं तैसें ॥ ६५ ॥

विषवल्लीमिव हित्वा, परगामां सर्वथा त्रिधा दूरम् ।
सन्तोषः कर्त्तव्यः स्वकलत्रेणैव बुद्धिमता ॥ ६६ ॥

अर्थ—परस्त्रीकौं विषवेलकी ज्यौं सर्वथा मन वचनकाय करि दूर त्यागकें बुद्धिमान पुरुष करि अपनी स्त्री करि ही सन्तोष करना योग्य है ॥ ६६ ॥

नाशक्त्या सेवंते भार्यां, स्वमपि मनोभवाकुलिताः ।
वह्निशिखाप्याशक्त्या, शीतार्तैः सेविता दहति ॥ ६७ ॥

अर्थ—कामकरि व्याकुल भए संतें आशक्ति जो गृद्धता करि अपनी भार्याकौं भी न सेवे है जैसैं शीतकरि पीडित पुरुषनि करि भी आशक्ति कर सेई भई अग्निकी शिखा है सो कहा न दहै है? दहै ही है ॥ ६७ ॥

दृष्टा स्पृष्टा श्लिष्टा दृष्टिविषा, याऽहिमूर्त्तिरिव हंति ।
तां परसमां भव्यो मनसापि, न सेवते जातु ॥ ६८ ॥

अर्थ—ज्यौं परस्त्री देखी वा स्पर्शी वा आलिंगी सर्पनी दृष्टिविषैं सर्पकी मूर्तिकी ज्यों हने है तिस परस्त्रीकौं भव्यजीव है सो मन करि भी कदाच न सेवे है ॥ ६८ ॥

दीप्ताकारा तप्ता स्पृष्टा, दहति पावकशिखेव।
मारयति योपभुक्ता, प्ररूढविषविटपिशाखेव ॥ ६९ ॥

अर्थ—जो परस्त्री दीप्त है आकार जाका अर तप्तायमान सो स्पर्शी भई अग्निकी शिखाकी ज्यों दहै है, अर जो भोगी भई फैल रही विषवृक्षकी शाखाकी ज्यों मारे है ॥ ६९ ॥

मोहयति झटिति चित्तं, निषेव्यमाना सुरेव या नितरां।
या गलमालिंगंती, निपीडयति गंडमालेव ॥ ७० ॥

अर्थ—जो परस्त्री सेई भई मदिराकी ज्यों अतिशय करि जल्दी चित्तकौं मोहे है। बहुरि जो गलेकौं आलिंगन करती लिपटी गंडमाला नाम रोगकी ज्यों पीड़ा उपजावै है ॥ ७० ॥

व्याघ्रीव याऽऽमिषाशा, त्रिलोक्यरभसा जनं विनाशयति।
पुरुषार्थपरैः सद्भिः परयोषा, सा त्रिधा त्याज्या ॥ ७१ ॥

अर्थ—जो परस्त्री मांसभखनी व्याघ्रीकी ज्यौं पुरुषकौं देख करि जबर्दस्ती विनाश करै है सो परस्त्री पुरुषार्थमैं तत्पर जे सन्त पुरुष तिन करि मन वचन कायतैं त्यागनी योग्य है ॥ ७१ ॥

मलिनयति कुलद्वितयं दीपशिखेवोज्ज्वलापि मलजननी।
पापोपयुज्यमाना परवनिता तापने निपुणा ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो परस्त्री दीपकी लोयसमान उज्ज्वल भी मैलकी उपजावनेवाली है, वह कज्जल उपजावै है यह रागद्वेष उपजावै है बहुरि पापिनी उपज्यमाना कहिए संयोगकौं प्राप्त करी संताप करने विषैं प्रवीण है ॥ ७२ ॥

ऐसे परस्त्री त्याग अणुव्रतका वर्णन किया। आगैं परिग्रहप्रमाण नामा अणुव्रतकौं कहैं है—

वास्तु क्षेत्रं धनं धान्यं दासीदासं चतुष्पदं भांडं ।
परिमेयं कर्त्तव्यं सर्वं संतोषकुशलेन ॥ ७३ ॥

अर्थ—संतोषविषैं प्रवीण जो पुरुष ताकरि वास्तु कहिए हाट हवेली क्षेत्र कहिए खेतीका क्षेत्र धन कहिए सुवर्ण रूपादिक धान्य कहिए चावल गेहूं आदिक बहुरि दासी दास आदि द्विपद अर चतुश्पद कहिये घोड़ा गौ इत्यादिक भांड कहिए बासन वस्त्रादिक इन सबका परिमाण करना योग्य है ।

भावार्थ—जीवकै तीन लोकके पदार्थनकी तृष्णा है सो सब छूटती न जानि तृष्णा घटनेकों पदार्थनिका परिमाण कराया है ॥७३॥

विध्यापयति महात्मा लोभं, दावाग्निसन्निभं ज्वलितम् ।
भुवनं तापयमानं सन्तोषोद्गाढसलिलेन ॥ ७४ ॥

अर्थ—महापुरुष है सो दावानल समान चलता जो लोभ ताहि सन्तोष रूप महाजल करि बुझावें है कैसा है लोभ जैसे अग्नि लोककों सन्ताप उपजावै है ऐसा है ॥ ७४ ॥

सर्वारंभालोके सम्पद्यंते, परिग्रहनिमित्ताः ।
स्वल्पयते यः संगं स्वल्पयति सः सर्वमारंभम् ॥ ७५ ॥

अर्थ—लोकविषैं सर्व हिंसादिक आरंभ है ते परिग्रहके निमित्त होय है अथवा परिग्रहतैं होय है इस कारणतैं जो परिग्रहकों घटावै है सो सर्व आरंभकों घटावै है ॥ ७५ ॥

ऐसैं परिग्रह परिमाण अणुव्रतका वर्णन किया। आगैं दिग्विरति नाम गुणव्रतकों कहै हैं—

ककुबष्टकेऽपि कृत्वा मर्यादां, यो न लंघयति धन्यः ।
दिग्विरतिस्तस्य जिनैर्गुणव्रतं, कथ्यते प्रथमम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो धन्य पुरुष दिशानके अष्टक विषैं मर्यादाकों करिकै

नाहीं उलंघै है ताकै जिनदेवनि करि दिग्विरतिनामा गुणव्रत कहिए है। पूर्वादि आठौं दिशा तथा उपलक्षणतैं नीचे ऊपर ऐसैं दशौं दिशानके प्रसिद्ध नदी पर्वतादिकनतैं जो मर्यादा कर ताके इसतैं परे मैं गमनादि नाहीं करूँगा सो प्रथम दिग्विरतिनामा गुणव्रत जानना॥ ७६ ॥

सर्वारम्भनिवृत्तेस्ततः, परं तस्य जायते पूतम्।
पापापायपटीयः, सुखकारि महाव्रतं पूर्णम्॥ ७७ ॥

अर्थ—तिस दिग्विरतिधारी पुरुषकै तिस मर्यादतैं परैं सर्व आरम्भकी निवृत्ति कहिए त्याग तातैं सुखकारी अर पापके नाश करनेमैं प्रवीण ऐसा पूर्ण महाव्रत होय है॥ ७७ ॥

आगैं देशविरतिकौं कहै हैं—

देशावधिमपि कृत्वा यो, नाक्रामति सदा पुनस्त्रेधा।
देशविरतिर्द्वितीयं, गुणव्रतं तस्य जायेत॥ ७८ ॥

अर्थ—बहुरि देशकी मर्यादाकौं भी करकै जो फेर मन वचन काय करि नाहीं उलंघै है ताकै देशविरतिनामा दूसरा गुणव्रत होय है।

भावार्थ—तिस करि भई दिशानिकी मर्यादा विषैं भी ग्राम दुकान घर बगीचा गली इत्यादिक निकालके नियमरूप मर्यादा करनी सो देशव्रत जानना॥ ७८ ॥

काष्ठैनेव हुताशं लाभेन, विवर्द्धमानमतिमात्रम्।
प्रति दिवसं यो लोभं, निषेधयति तस्य कः सदृशः॥७९॥

अर्थ—जैसैं काष्ठकरि अग्नि सिवाय बढ़ता होय तैसैं पदार्थनके लाभ करि तृष्णा बढ़ती होय है। बहुरि जो प्रतिदिन लोभकौं त्यागै है ताके समान और कहा है॥ ७९ ॥

आगैं अनर्थदण्ड विरतिनामा गुणव्रतकौं कहै हैं—

योऽनर्थं पंचविधं परिहरति, विवृद्धशुद्धधर्ममतिः ।
सोऽनर्थदण्डविरतिं गुणव्रतं, नयति परिपूर्त्तिम् ॥ ८० ॥

अर्थ—विशेषपनें बढ़ती है शुद्ध धर्म विषैं बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष पांच प्रकार अनर्थकौं त्यागै है सो अनर्थदण्ड विरति नाम गुण-व्रतकौं पूर्णताकौं प्राप्त करै है ॥ ८० ॥

आगैं पांच अनर्थ पापके नाम कहैं हैं—

पंचानर्थां दुष्टाध्यानं, पापोपदेशनाशक्तिः ।
हिंसोपकारि दानं, प्रमादचरणं श्रुतिर्दुष्टा ॥ ८१ ॥

अर्थ—दुष्ट ध्यान कहिए शिकार तथा काहूकी जीत काहूकी हार तथा संग्राम तथा परस्त्रीगमन तथा चौरी इत्यादिकका चिन्तवन करना । बहुरि चित्रामादिक विद्या अर व्यापार लिखना, खेती करना, चाकरी करना इत्यादि हिंसादिक आरम्भके उपदेश विषैं आशक्तिता सो पापोपदेशनाशक्ति कहिए छुरी विष अग्नि तरवार धनुष इत्यादि हिंसाके उपकरण देना सो हिंसोपकरणदान कहिए । बहुरि पृथ्वी खोदना, वृक्ष मोडना, घास काटना, जल सींचना इत्यादि प्रमाद चरण कहिए । रागादि बढ़ावनेवाली खोटी कथा सुननी इत्यादि दुष्ट श्रुति कहिए । ऐसैं पांच अनर्थ पापका त्यागकरना सो अनर्थदण्ड विरति जानना ॥ ८१ ॥

बहुरि ताहीके विशेष कहै हैं:—

मंडलविडालकुक्कुटमयूरशुकसारिकादयो जीवाः ।
हितकामैर्न प्राह्याः, सर्वे पापोपकारपराः ॥ ८२ ॥

अर्थ—हितके वांछक जे पुरुष तिनकरि कुत्ता, बिलाव, मुर्गा और सुवा सारी इत्यादिक सर्व पापके करावने विषैं तत्पर जीव हैं ग्रहण करना नाहीं ॥ ८२ ॥

लोहं लाक्षा नीली कुसुम्भ, मदनं विषं शणः शस्त्रम्।
संधानक च पुष्पं, सर्वं करुणापरैर्हेयम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—दयामें तत्पर जे पुरुष तिनकरि लोहे लाख नील कुसुम्भ विष सण शस्त्र संधारना पुष्प सर्व त्यागना योग्य है ॥ ८३ ॥

नीली सूरणकन्दो दिवसद्वितयोषिते च दधिमथिते।
विद्धं पुष्पितमन्नं कालिंगं, द्रोणपुष्पिका त्याज्या ॥ ८४ ॥

अर्थ—नील अर सूरण अर कन्द अर दोय दिनके वासे दही अर छाछ बहुरि वीधा अर फूलसहित टपकी लग्या अन्न अर कलींदा अर राई ये त्यागना योग्य है ॥ ८४ ॥

जैसे अनर्थदण्ड विरतिका वर्णन किया। और आगैं सामायिक व्रतकौं कहै हैं—

आहारो निःशेषो, निजस्वभावादन्यभावमुपयातः।
योऽनंतकायिकोऽसौ, परिहर्त्तव्यो दयालीढैः ॥ ८५ ॥

अर्थ—जो समस्त आहार अपने स्वभावतैं अन्य भावको प्राप्त भया चलितरस भया, बहुरि जो अनन्तकाय सहित है सो बहु दया-सहित पुरुषनिकरि त्यागना योग्य है ॥ ८५ ॥

त्यक्तार्त्तरौद्रयोगो भक्त्या, विदधाति निर्मलध्यानः।
सामायिकं महात्मा सामायिक संयतो जीवः ॥ ८६ ॥

अर्थ—त्यागे हैं आर्त्त रौद्र ध्यान जानें अर निर्मल है ध्यान जाकै ऐसा महात्मा रागद्वेषके त्याग तैं भले प्रकार यत्नसहित जीवै है सो सामायिककौं धारै है।

भावार्थ—रागद्वेषके त्यागतैं आत्मविषैं "सं" कहिए एकरूप होय करि "*अयनं*" कहिए *परिणाम सो समय है; अर समयका* जो भाव सामायिक कहिए सो ऐसे सामायिकके काल समस्त सावद्य

योगके त्याग तें श्रावककौं भी उपचारतैं महाव्रती कह्या है इतना यह विशेष जानना ॥ ८६ ॥

कालत्रितये त्रेधा कर्तव्या देववन्दना सद्भिः ।
त्यक्त्वा सर्वारम्भं भवमरणविभीतचेतस्कैः ॥ ८७ ॥

अर्थ—जन्ममरणतैं भयभीत हैं चित्त जिनके ऐसे सत्पुरुनि करि प्रभात अर मध्याह्न अर अपराह्न इन तीनों काल विषैं मन वचन काय करि अरहन्तादि देवनिकी वन्दना करनी योग्य है ॥ ८७ ॥

आगैं प्रोषधोपवासकौं कहै हैं—

सदनारम्भनिवृत्तैराहारचतुष्टयं सदा हित्वा ।
पर्वचतुष्के स्थेयं संयमयमसाधनोद्युक्तैः ॥ ८८ ॥

अर्थ—गृहके आरम्भतैं रहित अर यावज्जीव त्यागरूप संयम अर थोड़े काल त्यागरूप यम इन विषै उद्यमी पुरुषनि करि पर्व चतुष्क कहिए एक मास मैं दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इन विषैं आहार चतुष्टय कहिए खाद्य स्वाद्य अशन (लेह्य) पेय इनकौं त्यागकरि सदा तिष्ठना योग्य है ।

भावार्थ—गृहारम्भ त्यागकै अर आहार त्यागकै संयम रूप पर्वत विषैं सदा तिष्ठना सो प्रोषधोपवास व्रत जानना ॥ ८८ ॥

तांबूलगन्धमाल्यास्नानाभ्यंगादिसर्वसंस्कारम् ।
ब्रह्मव्रतगतचित्तैः, स्थातव्यमुपोषितैस्त्यक्त्वा ॥ ८९ ॥

अर्थ—तांबूल माला स्नान उबटना इत्यादि सर्व संस्कारकौं त्याग करि ब्रह्मचर्य विषैं प्राप्त हुवा है चित्त जिनका ऐसे पोसहसहित पुरुषनि करि तिष्ठना योग्य है ॥ ८९ ॥

उपवासानुपवासैकस्थानेष्वेकमपि विधत्ते यः ।
शक्त्यनुसारपरोऽसौ, प्रोषधकारी जिनैरुक्तः ॥ ९० ॥

अर्थ—उपवास अर अनुपवास अर एकस्थान विषैं एककौं भी जो शक्ति अनुसार धारै है सो यहु पोसह करनेवाला जिनदेवनि करि कह्या है ॥ ९० ॥

उपवासं जिननाथा, निगदंति चतुर्विधाशनं त्यागम् ।
सजलमनुपवासममी, एकस्थानं सुकृद्भुक्तिम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—च्यार प्रकार आहारका जो त्याग ताहि ये जिननाथ उपवास कहै हैं अर जलसहितकौं अनुपवास कहै हैं अर एकवार भोजनकौं एकस्थान कहै हैं ।

भावार्थ—इहां जलमात्र लेय ताकौं अनुपवास कह्या सो उपवासका अभाव रूप अर्थ न लेना किंचित् उपवास है ऐसा अर्थ ग्रहण करना ॥ ९१ ॥

आगैं भोगोपभोगपरिणाम व्रतकौं कहैं हैं:—

भोगोपभोगसंख्या विधीयते, येन शक्तितो भक्त्या ।
भोगोपभोगसंख्या शिक्षाव्रतमुच्यते सद्भिः ॥ ९२ ॥

अर्थ—जा करि शक्तिसारूं भोग अर उपभोगकी संख्या करिए है सो भोगोपभोग संख्या नामा शिक्षा व्रत सन्तन करि कहिए है ॥ ९२ ॥

आगैं भोगोपभोगका स्वरूप कहै है:—

तांबूलगंधलेपनमज्जनभोजनपुरोगमो भोगः ।
उपभोगो भूषा स्त्रीशयनासनवस्त्रवाहाद्याः ॥ ९३ ॥

अर्थ—तांबूल सुगन्धलेपन स्नान भोजन इत्यादिक तो भोग हैं अर भूषण स्त्री शयन आसन वस्त्र वाहन इत्यादिक उपभोग हैं । एकबार भोजनमें आवै सो भोग अर वार वार भोगनेमें आवै सो उपभोग ऐसें जानना ॥ ९३ ॥

आगैं अतिथि संविभाग व्रतकों हैं:—

परिकल्प्य संविभागं, स्वनिमित्तकृताशनौषधादीनाम्।
भोक्तव्यं सागारैरतिथिव्रतपालिभिर्नित्यम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—अतिथि व्रतके पालनेवाले श्रावकनि करि अपने अर्थ करे जे भोजन औषधादिक तिनका भलेप्रकार विभाग करिकै पात्रकौं देकैं भोजन करना योग्य है ॥ ९४ ॥

अतति स्वयमेव गृहं, संयममविराधयन्ननाहूत:।
य:सोऽतिथिरुद्दिष्ट:, शब्दार्थविचक्षणै: पुरुषै: ॥ ९५ ॥

अर्थ—शब्दार्थ विषै विचक्षण जे पुरुष तिन करि सो साधु अतिथि कह्या है, सो कौन? जो संयमकौं नांहीं विराधता सन्ता विना बुलाया स्वयमेव गृहिप्रति अतति कहिए गमन करै है, आवै है ॥ ९५ ॥

अशनं पेयं स्वाद्यं खाद्यमिति, निगद्यते चतुर्भेदम्।
अशनमतिथेर्विधेयो, निजशक्त्या संविभागोऽस्य ॥ ९६ ॥

अर्थ—अशन पेय स्वाद्य खाद्य ऐसे च्यार प्रकार आहार कहिए ताका विभाग कहिए वांटा अपनी शक्ति सारू इस अतिथि पात्रकूं करणा योग्य है।

भावार्थ—अपने अर्थ किया आहार तामैंसैं पात्रकै अर्थि शक्ति-माफिक देना योग्य है ॥ ९६ ॥

मुद्गौदनाद्यमशनं क्षीरजलाद्य जिनै: पेयम्।
तांबूलदाडिमाद्यं स्वाद्यं, खाद्यं च पूपाद्यम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—मूग भात इत्यादि अशन कहिए अर दूध जल आदि-ककौं जिनदेवने पेय कह्या है अर तांबूल दाडिमादिकौं स्वाद्य कह्या है अर पूवा आदिकौं खाद्य कह्या है ऐसा जानना ॥ ९७ ॥

आगैं सल्लेखनाका वर्णन करैं हैं—

ज्ञात्वा मरणागमनं, तत्त्वमतिर्दुर्निवारमति गहनम्।
पृष्ट्वा बांधव वर्गं, करोति सल्लेखना धीरः ॥ ९८ ॥

अर्थ—दुर्निवार अर अतिगहन कहिए भयानक ऐसा जो मरनका आगमन ताहि जानि करि निश्चयरूप है मति जाकी ऐसा धीर पुरुष है सो बांधवनके समूहकों पूछ कै मोह छुडायकैं आगम प्रमाण सल्लेखनाविधिकौं श्रावक मांडै है, ऐसा जानना ॥ ९८ ॥

आराधनां भगवतीं हृदये विधत्ते, सज्ञानदर्शनचरित्रतपोमयीं यः।
निर्धूकर्ममलपंकमसौ महात्मा, शर्मोदकं शिवसरोवरमेति हंसः ॥९९॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपमयी जो आराधना भगवती ताहि हृदय विषैं धारै है सो यह महात्मा हंस मोक्षसरोवरकौं प्राप्त होय है, कैसा है मोक्ष सरोवर नाश भया है कर्ममल रूप कीच जाका अर सुखरूप है जल जा विषैं ऐसा है।

भावार्थ—जो सन्यास मरन करै है सो थोडे ही कालमैं मोक्षकौं प्राप्त होय है, ऐसा नियम जानना ॥ ९९ ॥

आगैं अधिकारकौं संकोचै है—

जिनेश्वरनिवेदितं मननदर्शनालंकृतं,
द्विषड्विधमिद व्रतं विपुलबुद्धिभिर्धारितम्।
विधाय नरखेचरत्रिदशसंपदं पावनीं,
ददाति मुनिपुंगवामितगतिस्तुतां निर्वृतिम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जिनेश्वर देवनैं कह्या अर ज्ञानदर्शन करि शोभित अर महाबुद्धीनकरि धार्या ऐसा यह द्वादश प्रकार व्रत है सो मनुष्य विद्याधर देव इनकी पवित्र संपदाकौं प्राप्त कराकै निर्वाण अवस्थाकौं देय है कैसी है निर्वाण अवस्था अप्रमाण है महिमा जिनकी ऐसे मुनिन विषैं श्रेष्ठ मुनि तिनकरि स्तुतिगोचर करी है।

भावार्थ—मुनीन्द्र जाकी स्तुति करै ऐसी मुक्तिकौं प्राप्त करै है ॥ १०० ॥

सवैया तेईसा ।

पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत शिक्षाव्रत पुनि निर्मल च्यार ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित जो, धारै तीव्र प्रमाद निवार ॥
नर विद्याधर अमर सम्पदा, अद्भुत भोगि भोग जगसार ।
लहै अमितगति सुखमय शिवपद वंदूं चरण तासु अविकार ॥

इति श्रीमदमितगत्याचार्यकृते श्रावकाचारे षष्ठ परिच्छेदः ।

इति श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
षष्ठ (छठा) परिच्छेद समाप्त भया ।

सप्तम परिच्छेद ।

आगैं व्रतनिकी महिमा दिखावै है—

व्रतानि पुण्याय भवन्ति जंतोर्न सातिचाराणि निषेवितानि ।
सस्यानि किं क्वापि फलंति लोके मलोपलीढानि कदाचनापि ॥ १ ॥

अर्थ—जीवकै अतीचार सहित सेये भए व्रत हैं ते पुण्यके अर्थ होय हैं, इहां दृष्टांत कहै हैं जैसैं त्रिना नींदि कूडा सहित मल सहित लोक विषैं सस्य हैं ते कहां कहूं भी कदाचित भी फलै है ? अपि तु नाहीं फलै है ॥ १ ॥

मत्वेति सद्भिः परिवर्जनीयाः, व्रते व्रते ते खलु पंच पंच ।
उपेयनिष्पत्तिमपेक्षमाणा, भवंत्युपाये सुधियः सयत्नाः ॥ २ ॥

अर्थ—ऐसी मान करि पंडितनि करि व्रत व्रत विषैं ते पांच पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं, जातैं उपेय कहिए जाके अर्थ उपाय

करिए ऐसा कार्य ताकी उत्पत्तिकौं बांछते पंडित हैं ते उपाय जो ताका कारण ताविषैं यत्न सहित होय हैं।

भावार्थ—व्रत तौ उपेय है अर अतिचार त्याग उपाय है जो व्रतनकी वांछै है तो अतीचार त्याग करहु, ऐसा उपदेश जानना ॥२॥

आगैं अहिंसाव्रतके अतीचार कहै हैं—

भारातिमात्रव्यपरोपघातछेदान्नपाननिषेधबंधाः।
अणुव्रतस्य प्रथमस्य दक्षैः पंचापराधाः प्रतिषेधनीयाः ॥ ३ ॥

अर्थ—भारका प्रमाणतैं उलङ्घ करि धरना, अर घात कहिए पीड़ाका कारण लाठी बैत आदितैं मारना इहां प्राणके नाशरूप घातका अर्थ नहीं ग्रहण करना जातैं वह तो अनाचार स्वरूप ही है, बहुरि छेद कहिए कान नासिकादिक अंगनिका छेदना, बहुरि अन्न जलका रोकना, अर बन्ध कहिए वांछित स्थानकौं न जाने देना रस्सादिकतैं बांधना सो बन्ध कहिए। ये प्रथम अणुव्रतके पांच अतीचार पंडितनि करि त्यागना योग्य है ॥ ३ ॥

आगैं सत्य अणुव्रत अतीचार कहै हैं—

न्यासापहारः परमन्त्रभेदो मिथ्योपदेशः परकूटलेखः।
प्रकाशना गुह्यविचेष्टितानां पंचातिचाराः कथिता द्वितीये ॥ ४ ॥

अर्थ—न्यासापहार कहिए कोऊनें द्रव्य सौंप्या था ताकूं वह भूलकै थोड़ा मांगै तब कहै इतना ही है, बहुरि पर मन्त्र भेद कहिए अंगविकारादिकतैं परके अभिप्रायकौं जानिईर्षातैं ताका प्रकाशना, बहुरि स्वर्ग मोक्षके कारण क्रिया विशेषनिमैं अन्यथा प्रवर्तावना सो मिथ्यापदेश कहिए, बहुरि दूसरेके कहनेतैं ठगनेके अर्थ झूंठ लिखना सो कूटलेख क्रिया है, बहुरि स्त्री पुरुषादिकके गुप्त चरित्रका प्रकाश करना सो रहोभ्याख्यान कहिए। ये पांच अतीचार दूसरे सत्य अणुव्रत विषैं कहे हैं ॥ ४ ॥

आगैं आचार्य अणुव्रतके अतीचार कहैं हैं:—

व्यवहार: कृत्रिमक: स्तेननियोगस्तदाहृतादानम् ।
ते मानवैपरीत्यं विरुद्धराज्यव्यतिक्रमणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—झूंठे सुवर्णादि बनावना सो कृत्रिम व्यवहार कहिए, बहुरि चौरको चौरीमैं लगावना सो स्तेन प्रयोग कहिए, बहुरि चोर करि कल्याण द्रव्यका ग्रहण करना सो तदाहृतादान कहिए बहुरि बड़े मानतैं लेना छोटे मानतैं देना सो मानवैपरीत्य कहिए, बहुरि राजनियमका उल्लंघन करना महसूल आदि चोरना सो विरुद्ध राज्यातिक्रमण कहिए । ये तीसरे अणुव्रतके पांच अतिचार कहे ॥ ५ ॥

आगे परस्त्री त्याग अणुव्रतके अतीचार कहे हैं:—

आत्तानुयात्तेत्वरिकांग संगा—वनंगसंगो मदनातिसंग: ।
परोपयामस्य विधानमेते, पंचातिचारा गदिताश्चतुर्थे ॥ ६ ॥

अर्थ—पर करि ग्रहण करी बहुरि नाहीं ग्रहण करी ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीके अंगका संग करना तिनप्रति गमन करना, बहुरि अनंगसंग कहिए हस्तादिकतैं क्रीड़ा करणा, बहुरि कामका तीव्र परिणाम, अर दूसरेका विवाह करावना । ये पांच अतीचार अणुव्रतके कहे हैं ॥ ६ ॥

आगैं परिग्रह परिणाम अणुव्रतके अतीचार कहैं हैं ।

क्षेत्रवास्तुधनधान्यहिरण्य—स्वर्णकर्मकरकुप्यकसंख्या: ।
योऽतिलंघति परिग्रहलोभ—स्तस्य पंचकमवाचि मलानाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—क्षेत्र कहिए खेतीका स्थान वास्तु कहिए घर इन दोऊनका एक स्थान, अर हिरण्य कहिए सोना इनका एक स्थान, अर धन गौ आदि अर धान्य गेहूं आदि इनका एक स्थान अर, कर्म कर दासी दास, अर कुप्य कहिए वस्त्रादि इन पांचनकी संख्याकों

जो परिग्रहके लोभसहित उलंघै है ताके अतीचारनिका पंचक कह्या ॥ ७ ॥

आगैं दिग्विरतिके पांच अतीचार कहै हैं:—

स्मृत्यंतरपरिकल्पनमूर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमाः प्रोक्तः ।
क्षेत्रविवृद्धिः प्राज्ञैरतिचाराः पंच दिग्विरतेः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो योजनादिकका परिमाण करया था ताकूं भूल और सुरत करना, अर ऊपर नीच तिरछा इन तीनूंनिका उलंघना कहिए पर्वतादिपैं चढ़ना कूपादिमैं उतरना बिलादिमैं घुसना ऐसैं तीन भए, बहुरि लोभके वशतैं क्षेत्रकी वृद्धि वांछना। ये दिग्विरतिके पांच अतिचार पंडितनिनैं कहे हैं ॥ ९ ॥

आगैं देशविरतिके अतीचार कहैं हैं:—

आनयनयोज्ययोजनपुद्गलजल्पनशरीरसंज्ञाख्याः ।
अपराधाः पंच मता देशव्रते गोचराः सद्भिः ॥ ९ ॥

अर्थ—मर्यादा बाहिर आनयन कहिए बुलावना, बहुरि मर्यादा बाहिर योज्य योजन कहिए प्रयोग, बहुरि मर्यादा बाहिर लोष्ठादिकतैं कार्य करावना सो पुद्गलक्षेप कहिए, अर मर्यादा बाहिर पुरुषतैं वचन बोलना अर मर्यादा आदि शरीरकी समस्यातैं कार्य करावना। पांच अतीचार देशव्रत सम्बन्धी संतननैं कहे है ॥ ९ ॥

आगैं अनर्थ दण्डविरतिके अतीचार कहैं हैं—

असमीक्षितकारित्वं प्राहुर्भोगोपभोग नैरर्थ्यम् ।
कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमनर्थदण्डस्य ॥ १० ॥

अर्थ—विना विचारे प्रयोजनतैं अधिक करना, बहुरि भोग उपभोगनिका निःप्रयोजन संचय करना, बहुरि तीव्ररागके उदयतैं हास्य मिल्या अयोग्य वचन कहना सो कन्दर्प कहिए, बहुरि ते तीव्र-

राग अर अयोग्य वचन दोऊ पर विषैं शरीरके कर्म करि युक्त होय सो कौत्कुच्य कहिए, बहुरि ढीटपणां सहित असमीचीन बहुत प्रलाप करना सो मोखर्य कहिए। ये पांच अनर्थदण्ड विरतिके अतीचार हैं॥१०॥

आगैं सामायिकके अतीचार कहैं हैं—

योगा दुःप्रणिधाना स्मृत्यनुपस्थान मादराभावः।
सामायिकस्य जैनैरतिचाराः पंच विज्ञेयाः॥ ११ ॥

अर्थ—दुःप्रणिधान कहिए पापरूप अथवा अन्यथा योगरूप जे मन वचनकाय तीन तौ ये भये, बहुरि सुरत भूल जाना अर आदरका अभाव, ये पांच अतीचार सामायिकके जैनीन करि जानने योग्य हैं॥ ११ ॥

आगैं पोसहके अतीचार कहैं हैं—

ज्ञेया गतोपयोगा उत्सर्गादानसंस्तरकविधाः।
उपवासे मुनिमुख्यैरनादरः स्मृत्यसमवस्था॥ १२ ॥

अर्थ—गतोपयोग कहिए विना देखे वा विना प्रतिलेखन करे भूमिमैं मलमूत्र तजना वा अर्हंतादिकनिकी पूजाके उपकरण गन्ध-माल्यादिक वा आपके ओढना आदिके अर्थ वस्त्रादिक इनका ग्रहण करना, बहुरि सांथरा बिछावना, तीन तौ ये भए बहुरि अनादर कहिए आवश्यकनिमैं उत्साहका अभाव अर पोसहको सुरत भूल जाना, ए पांच अतीचार मुख्य आचार्यनिनैं पोसह विषैं कहे हैं॥ १२ ॥

आगें भोगोपभोग विरतिके पांच अतीचार कहै हैं—

सहचित्तं संबद्धं मिश्रं दुःखपक्वमभिषवाहारः।
भोगोपभोगविरतेरतिचाराः पंच परिवर्ज्याः॥ १३ ॥

अर्थ—सचित्त वस्तु तथा सचित्त वस्तु करि स्पर्शित वस्तु तथा सचित्त करि मिल्या वस्तु बहुरि दुःखतें पचे ऐसा वस्तु बहुरि काम

बढ़ावनेवाला वस्तुका आहार, ये भोगोपभोगविरतिके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं ॥ १३ ॥

आगें दानके अतीचार कहैं हैं—

मत्सरकालातिक्रमसचित्तनिक्षेपणा विधानानि ।
दानेऽन्यव्यपदेशः परिहर्तव्या मलाः पंच ॥ १४ ॥

अर्थ—दानादिमें अनादर भाव सो मात्सर्य कहिए, बहुरि योग्य कालका उल्लंघन करना, बहुरि सचित्त कमलपत्रादि विषें भोजन धरना, बहुरि सचित्ततें ढाकना, बहुरि अन्यपै आज्ञा करि दिवावना, ये दानमैं पांच अतीचार त्यागना योग्य है ॥ १५ ॥

आगें सल्लेखनाके अतीचार कहैं हैं—

जीवितमरणाशंसानिदानमित्रानुराग सुखशंसा ।
सन्यासे मलपंचकमिदमाहुर्विदितविज्ञेयाः ॥ १५ ॥

अर्थ—यह शरीर अवश्य अनित्य है सो यह कैसे रहैं ऐसी अभिलाषा सो जीवितशंसा कहिए, बहुरि रोगके उपद्रवतें आकुलितपनें करि मरण वांछना सो मरणशंसा कहिए, बहुरि परलोकमैं भोगनिकी वांछा करना सो निदान, बहुरि पूर्वें मित्रनसूं क्रीड़ा करी थी ताका स्मरण करना सो मित्रानुराग कहिए, बहुरि पहले भोगे सुखनिका चिंतवन करणा सो सुखशंसा कहिए। यह संन्यास विषैं अतीचारनिका जो पंचक ताहि जान्या है जानिवे योग्य जिननैं ऐसे अर्हंतादिक हैं ते कहैं है ॥ १६ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनके अतीचार कहैं हैं—

शंकाकांक्षा निंदा परशंसासंस्तवा मला पंच ।
परिहर्तव्याः सद्भिः सम्यक्त्वविशोधिभिः सततम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जिन वचनमें शंका करणी, वा भोगनिकी वांछा करणी,

वा धर्मात्मानमैं निंदा करणी ग्लानि करणी, मिथ्यादृष्टिनकी प्रशंसा करणी, स्तुति करणी; ये पांच अतीचार हैं ते सम्यक्त विशोधन करनेवाले जे सत्पुरुष तिन करि निरंतर त्यागना योग्य ॥ १६ ॥

आगैं अतीचारनके कथनकौं संकोचै है—

सप्तति परिहरंति मलानामेवमुत्तमधियो व्रतशुद्ध्यै ।
श्रावका जगति ये शुभचित्तास्ते भवंति भुवनोत्तमनाथा ॥१७॥

अर्थ—या प्रकार लोकमैं उत्तमबुद्धि श्रावक हैं जे अतिचारनिकी सप्तति कहिए सत्तरका समूह ताहि त्यागैं हैं ते शुभचित लोकके उत्तम नाथ होय हैं ॥ १७ ॥

आगैं शल्यनिका निषेध करै हैं--

निदानमायाविपरीतदृष्टीर्नाराचपंक्तीरिव दुःखकर्त्रीः ।
ये वर्जयंतेसुखभागिनस्ते, निःशल्यता शर्मकरी हि लोके ॥ १८ ॥

अर्थ—जे पुरुष बाननकी पंक्ति समान दुःख करनेवाली जो भोगनिकी वांछारूप निदान अर कुटिल भावरूप माया अर विपरीत दृष्टि कहिए मिथ्यादृष्टि इन तीनौंको त्यागे हैं ते सुखके भोगनेवाले हैं, जातैं लोक विषैं निःशल्यपना सुखकारी है ऐसा जानना ॥१८॥

यस्यास्ति शल्यं हृदये त्रिधेयं, व्रतानि नश्यंत्यखिलानि तस्य ।
स्थिते शरीरं ह्यवगाह्य कांडे, जनस्य सौख्यानि कुतस्तनानि ॥१९॥

अर्थ—जाके हृदय विषैं तीन प्र[कार] यह शल्य है ताके समस्त व्रत नाशकौं प्राप्त होय हैं, जातैं मनु[ष्य] शरीरको व्यापक बाणको तिष्ठते संते काहेतैं सुख होय ? नाहीं ह[ो]य है ॥ १९ ॥

प्रशस्तमन्यच्च निदानमुक्तं, निदानमुक्तैर्व्रतिनामृषीन्द्रैः ।
विमुक्तिसंसारनिमित्तभेदाद्द्विधा प्रशस्तं पुनरभ्यधायि ॥ २० ॥

अर्थ—निदान रहित जे मुनीन्द्र है तिन करि व्रतीनके निदान

है। सो प्रशस्त अर अप्रशस्त ऐसैं दोय प्रकार कह्या है, बहुरि प्रशस्त निदान मुक्तिका संसारका निमित्त इन भेदनितैं दोय प्रकार कह्या।

भावार्थ—निदानके भेद दोय, एक प्रशस्त निदान दूजा अप्रस्त निदान; तहां प्रशस्त निदानके भेद दोय, एक मुक्ति निमित्त, एक संसार निमित्त, ऐसा जानना ॥ २० ॥

आगैं मुक्ति निमित्त निदानकौं कहैं हैं—

कर्मव्यपायं भवदुःखहानिं बोधिं समाधिं जिनबोधसिद्धिम्।
आकांक्षतः क्षीणकषायवृत्तेर्विमुक्तिहेतुः कथितं निदानम् ॥ २१ ॥

अर्थ—कर्मनिका अभाव अर संसारके दुःखकी हानि अर दर्शन ज्ञान तपस्वरूप बोधि अर समाधि कहिए ज्ञानसहित मरण अर जीवनके ज्ञानकी सिद्धि इनकौं वांछता क्षीण कहिए मन्द है कषायनिकी प्रवृति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै मुक्तिका हेतु निदान कह्या है।

भावार्थ—निदान नाम वांछाका है सो मुक्तिहीकी वांछा है, जातैं मुक्ति विना कर्मादिकका अभाव होय नाहीं तातैं सो निदान मुक्ति हेतु कह्या, ऐसा जानना ॥ २१ ॥

आगैं संसार निमित्त प्रशस्त निदानकौं कहैं हैं—

जातिं कुलं बांधववर्जितत्वं दरिद्रतां वा जिनधर्मसिद्धयै।
प्रयाचमानस्य विशुद्धवृत्तेः संसारहेतुर्गदितं जिनेन्द्रैः ॥ २२ ॥

अर्थ—जिन धर्मकी सिद्धिके अर्थ जातिकौं वा कुलकौं वा बांधवनि करि रहितपनेकौं वा दारिद्रपनेकौं वांछता जो निर्मल है प्रवृत्ति जाकी ऐसा पुरुष ताके जिनेन्द्रनैं संसारके निमित्त प्रशस्त निदान कह्या है।

भावार्थ—कोऊ चाहै कि जाति कुल भला मिलै तामैं जिनधर्म सधै तथा बांधवादि आकुलताके हेतु हैं इन करि रहित होऊ जातैं

धर्म सधै वा धन पापका कारण है तातैं धन रहित मैं होऊ जातैं धर्म सधै सो ऐसी वांछा धर्मके आशयतें कथंचित् भली है तथापि जाति आदि संसार विना होय नाहीं, तातैं संसार हेतु प्रशस्त निदान कह्या ॥ २२ ॥

त्पत्तिहीनस्य जनस्य नूनं, लाभो न जातिप्रभृतेः कदाचित् ।
उत्पत्तिमाहुर्भवमुद्बोधा, भवं च संसारमनेककष्टम् ॥ २३ ॥

अर्थ—उत्पत्तिरहित जो जीव ताकै निश्चयतैं जाति आदिका लाभ कदाच होय नाहीं, बहुरि उद्धत है ज्ञान जिनका ऐसे ज्ञानी पुरुष हैं ते उत्पत्तिकौं भव कहैं है । बहुरि भव है सो अनेक दुःखरूप संसार है ।

भावार्थ—जाति आदि संसार विना नाहीं तातैं आत्मादिककी वांछा है, ऐसा जानना ॥ २३ ॥

संसारलाभो विदधाति दुःखं, शरीरिणां मानसमांगिकं च ।
यतस्ततः संसृतिदुःखभीतैस्त्रिधा निदानं न तदर्थमिष्टम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जातैं संसारका लाभ है सो जीवनिकौं शरीर सम्बन्धी वा मन सम्बन्धी दुःख करै है तातैं संसारके दुःखनतैं भयभीत पुरुषनि करि संसारके अर्थ निदान है सो मन वचन काय करि नाहीं इच्छिये है ऐसा जानना ॥ २४ ॥

आगैं अप्रशस्त निदानकौं कहैं हैं;—

भोगाय मानाय निदानमीशैर्यदप्रशस्तं द्विविधं तदिष्टम् ।
विमुक्तिलाभ प्रतिबन्धहेतोः, संसारकांतारनिपातकारि ॥ २५ ॥

अर्थ—आचार्यननैं जो अप्रशस्त कहिए खोटे निदान है सो भोगके अर्थ अर मानके अर्थ ऐसा दोय प्रकार इष्ट किया है, कैसा है,

अप्रशस्त निदान मुक्तिके लाभके रोकनेकौं कारण संसारमैं पटकनेवाला ऐसा है।

भावार्थ—पंचेन्द्रियनिके विषयनिकी अभिलाषा सो भोगार्थ निदान कहिए अर अपनी महंतताके अर्थ वांछा सो मानार्थ निदान कहिए सो खोटे निदान संसारके कारणके है ऐसा जानना ॥ २५॥

ये संति दोषा भुवनांतराले, तानंगभाजां वितनोति भोगः ।
के तेऽपराधा जननिन्दनीया, न दुर्जनो यान् रभसा करोति ॥ २६ ॥

अर्थ—विषय भोग हैं सो जीवनिकै लोकविषैं जो दोष हैं तिनहिं विस्तारै है। इहां दृष्टांत कहैं हैं—जननि करि निंदनीक ते कौन अपराध हैं जिनहिं दुष्टजन जबर्दस्ती न करै हैं, सर्व ही करै हैं॥२६॥

ये पीडयन्ते परिचर्यमाणाः ये मारयन्ते बत पोष्यमाणाः ।
ते कस्य सौख्याय भवन्ति भोगा, जनस्य रोगा इव दुर्निवाराः॥२७॥

अर्थ—आश्चर्य कहैं हैं बड़े खेदकी बात है जे भोग आचरन करे सन्ते सेये सन्ते पीड़ा उपजावै है अर पुष्ट करे सन्ते मारैं हैं ते भोग रोगनि समान दुर्निवार कौन मनुष्यकै सुखके अर्थ होय हैं, अपितु नाहीं होय हैं ऐसा जानना ॥ २७ ॥

विनश्वरात्मा गुरुपंककारी, मेघो जलानीव विवर्द्धमानः ।
ददाति यो दुःखशतानि कृष्णः, स कस्य भोगी विदुषा निषेव्यः॥२८॥

अर्थ—सो विषय भोग कौनकै पंडितजन करि सेयवे योग्य होय अपितु नाहीं होय। कैसा है विषय भोग जो वर्द्धमान भया सन्ता जैसैं मेघ जलनिकौं देय है तैसैं दुःखनिके सैंकड़ानिकौं देय है। कैसा है मेघ विनशनशील है स्वरूप जाका सो यह भोग भी विनसनशील है। बहुरि मेघ महाकीचका करनेवाला है। बहुरि मेघ काला है, सो यह भोग भी मलीन है ऐसा जानना ॥ २८ ॥

यो बाधते शक्रममेय शक्तिं, स: कस्य बाधा कुरुते न काम: ।
य: प्लोषते पर्वतवर्गमग्नि: स मुंचते किं तृणकाष्ठराशिम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जो काम अप्रमाण है शक्ति जाकै ऐसा जो इन्द्र ताहि पीडै है सो काम कौनके बाधा न करै है? सर्वहीकै करै है। इहां दृष्टांत कहै है—जो अग्नि पर्वतनके समूहकौं जलावै है सो अग्नि कहा तृणकाष्ठके समूहकौं छोडै है, अपितु नाहीं छोडै है; ऐसा जानना ॥ २९ ॥

समीरणाशीव विभीमरूप:, कोपस्वभाव: परंध्रवर्ती ।
अनात्मनीनं परिहर्तुकामैर्न याचनीय: कुटिल: स भोग: ॥ ३० ॥

अर्थ—आपके अर्थ अहित ऐसा जो दु:ख ताके त्यागनेकी है वांछा जिनकै ऐसे पुरुषनि करि सो विषयभोग चाहना योग्य नाहीं। कैसा है भोग, सर्प समान है भयानकरूप जाका, कैसा है सर्प क्रोध-रूप है स्वभाव जाका सो यह भोग भी क्रोधका अभिप्राय लिये है। बहुरि सर्प पराये बिलमैं तिष्ठै है तैसैं भोग भी स्त्री आदि परद्रव्यमैं वर्तै है, बहुरि सर्प कुटिल है तैसैं भोग भी मायाचार सहित है, ऐसा जानना। ऐसैं भोग निंद्य जानिकै ताके अर्थ निदान करना योग्य नाहीं ॥ ३० ॥

आगैं मानका निषेध करैं हैं—

देवं गुरुं धार्मिकमर्चनीयं, मानाकुलात्मा परिभूय भूय: ।
पाथेयमादाय कुकर्मजालं, नीचां गतिं गच्छति नीचकर्मा ॥ ३१ ॥

अर्थ—मानकरि आकुल है आत्मा जाका ऐसा जो पुरुष है सो देवका गुरुका धर्मात्माका पूजनीकका वारंवार तिरस्कार अपमान करकै अर नीचकर्म जीव पापकर्मके समूहरूप वटधारीकौं ग्रहण करि नीच गतिकौं जाय है।

भावार्थ—मानी जीव गुरुका भी अविनय करै है अर पापकर्म बांधि तिर्यंचादि गतिकौं प्राप्त होय है ऐसा जानना ॥३१॥

वामनः पामनः कोपनो वंचनः, कर्कशो रोमशः सिध्मलः कश्मलः ।
कोलिको मालिकः शालिकच्छिपकः, किंकरो लुब्धको मुग्धकः कुष्ठिकः ॥३२
चित्रकः कौकिशो मूषितो जाहको, वंजुलो मंजुलः पिप्पलःपन्नगः ।
कुकुरस्तित्तिरो रासभो वायसः, कुकुटो मर्कटो मानतो जायते ॥३३॥

अर्थ—मानतैं जीव जो नीच पर्याय पावै है सो कहै है—वामन होय है, गमर होय है, क्रोधी होय है, ठिग होय है, कठोर होय है, रोमश कहिए बड़े रोमका धारी होय है, सिध्मल कहिये भूरा होय है, पापी होय है, कोली होय है, माली होय है, सिलावट होय है, छींपा होय है, चाकर होय है, पराधीन लोभी होय है, मूढ़ होय है, कोढ़ी होय है ॥ ३२ ॥ चीता होय है, घूघू होय है, मूसा होय है, जाहक होय है, बहुरि वंजुल मंजुल पिप्पल कोई नीच तिर्यंच विशेष है सो होय है, बहुरि सर्प अर कुत्ता अर तीतर अर गधा अर कागला अर मुर्गा अर बन्दर इत्यादि नीच मनुस्य तिर्यंचन पर्याय जीव मानतैं पावै है तातैं मान त्यागना योग्य है, यहु तात्पर्य है ॥ ३३ ॥

लक्ष्मीक्षमाकीर्तिकृपासपर्या, निहत्य सत्या जनपूजनीयाः ।
निषेव्यमाणो रभसेन मानः, श्वभ्रालये निक्षिपतीति घोरे ॥ ३४ ॥

अर्थ—सेया भया मान है सो सत्यार्थ रूप अर लोकनि करि पूजनीक ऐसी जो लक्ष्मी अर क्षमा अर कीर्ति अर दया अर पूजा इनकौं नासकैं अर जबरदस्ती घोर नरकवास विषैं पटकै है ॥ ३४ ॥

अनन्तकालं समवाप्य नीचां, यद्येकदा याति जनोऽयमुच्चाम् ।
तथाप्यनंता बत याति जातिरुच्चो गुणः कोऽपि न चात्र तस्य ॥३५॥

अर्थ—जीव है सो अनन्तकाल ताईं नीच जातिकौं पाय करि

एक काल उच्च जातिकौं प्राप्त होय है, आचार्य कहैं हैं, बड़े खेदकी बात है तो भी जीव अनन्त जातिनकौं प्राप्त होय है। बहुरि ता जीवकै इहां ऊँचा गुण कोई भी न देखिए है।

भावार्थ—जीव अनंतकाल निगोदादि नीचपर्यायनिमें वसै है, कदाच क्षत्रियादि उच्च कुलमें उपजै है सो तहां भी अनंतवार भया तातैं संसारमें ऊँच गुण किछू भी न देखिए है, तातैं मान करना वृथा है ऐसा जानना॥ ३५॥

उच्चासु नीचासु च हंत जंतोर्लब्धासु नो योनिषु वृद्धिहानी।
उच्चो व नीचोऽहमपास्त बुद्धिः, स मन्यते मानपिशाचवश्यः॥३६॥

अर्थ—ऊँच जातिनकौं वा नीच जातिनकौं पाए संतैं जीवकी हानि वृद्धि नाहीं है, बहुरि मान पिशाचके वशीभूत अज्ञानी जीव है सो "मैं ऊँचा हूं नीचा नाहीं" ऐसा मानै है ये बडे खेदकी बात है॥ ३६॥

उच्चोऽपि नीचं स्वमवेक्षमाणो, नीचस्य दुःखं न किमेति घोरम्।
नीचोऽपि पश्यति यः स्वमुच्चं, स सौख्यमुच्चस्य न किं प्रयाति॥३७॥
उच्चत्वनीचत्वविकल्प एष, विकल्प्यमानः सुखदुःखकारी।
उच्चत्वनीचत्वमयी न योनिर्ददाति दुःखानि सुखानि जातु॥ ३८॥

अर्थ—ऊँचा है सो भी आपको नीचा देखता सन्ता कहा नीचके घोर दुःखकौं न प्राप्त होय है, होय ही है। बहुरि नीचा है सो भी आपको ऊँचा देखता संता कहा ऊँचा पुरुषके सुखकौं न पावै है, पावै ही है॥ ३७॥ यह ऊँचपना नीचपनाका विकल्प है सो कल्प्या भया संता दुःख करनेवाला है। बहुरि ऊँचपनो नीचपना मयी जाति है सो सुखनिकौं वा दुःखनिकौं कदाचित् न देय है॥ ३८॥

भावार्थ—कोऊ पुरुष औरनतैं आप बड़ा है सो आपतैं बडेको देखि आपको दुखी मानै है । बहुरि कोई पुरुष और नितैं छोटा है सो भी आपतैं छोटेनिकौं देखि आपको बडा मान सुख मानै है । तातैं मोही जीवको मिथ्या माननेमें सुख दुःख है किछू बाह्य जाति आदि सुख दुःखका कारन नाहीं। ऐसा जानि जात्यादिकका गर्व न करना ऐसा इहां प्रयोजन जानना ॥ ३७–३८ ॥

हिनस्ति धर्मं लभते न सौख्यं, कुबुद्धिरुच्चत्वनिदानकारी ।

उपैति कष्टं सिकतानिपीडी, फलं न किंचिज्जननिन्दनीयः ॥ ३९ ॥

अर्थ—ऊँचपनेका निदान करनेवाला कुबुद्धि पुरुष है सो धर्मका नाश करै है अर सुखकौं न पावै है। इहां दृष्टांत कहै हैं, जैसे लोक विषैं निंदनीक मूर्ख पुरुष बालू रेतका पेलनेवाला कष्टकौं प्राप्त होय है अर किछू फलकौं नहीं प्राप्त होय है तैसैं।

भावार्थ—निदान करे सुख न मिले है, जातैं सुख तो पुण्योदयके आधीन है, अर पुण्यके आशयतैं पुण्य होय नाहीं तातैं जैसैं बालू रेत पेदे किछू तेल न कढै उलटा कष्ट होय है तैसा निदान भी जानना ॥ ३९ ॥

यशांसि नश्यंति समानवृत्तेर्गदातुरस्येव सुखानि सद्यः ।

विवर्द्धते तस्य जनापवादो, विषाकुलस्येव मनोविमोहः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे रोग करि पीड़ित पुरुषके सुख शीघ्र नाशको प्राप्त होय है तैसैं मानसहित है प्रवृति जाकी ऐसा जो पुरुष ताके यश शीघ्र नाशकौं प्राप्त होय है। बहुरि ताका लोकापवाद बढ़ै है जैसैं विषकरि आकुल है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताके मनमैं अचेतपना बढ़ै तैसैं, ऐसा जानना ॥ ४० ॥

हुताशनेनेव तुषारराशिर्विनश्यतेऽलं विनयो मदेन ।

नैवानुरागं विनयेन हीनो, लोके शमेनैव चरित्रमेति ॥४१॥

अर्थ—जैसैं अग्निकरि तुषारकी राशि विनाशकौं प्राप्त होय है तैसैं मानकरि विनय नाशकौं प्राप्त होय है। बहुरि विनय करि हीन है सो लोकमें प्रीति भावकौं न पावै है, शमभाव करि ही चारित्रकौं पावै है, ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

पूता गुणा गर्ववतः समस्ता भवन्ति वंध्या यमसंयमाद्याः ।
प्ररोप्यमाणा विधिना विचित्राः किमूषरे भूमिरुहाः फलन्ति ॥४२॥

अर्थ—गर्वसहित पुरुषकै यम कहिए कालकी मर्यादारूप नियम अर संयम कहिए इंद्रिय विषय अर हिंसाका त्याग इत्यादि पवित्र गुण हैं ते स्वर्गादि फल रहित होय हैं। इहां दृष्टांत कहै हैं, ऊषर भूमिविषैं विधिसहित लगाये नाना प्रकार वृक्ष हैं ते कहा फलै है, अपितु नाहीं फलै है ॥ ४२ ॥

न जातु मानेन निदानमित्थं करोति दोषं परिचिंत्य चित्रं ।
प्राणापहारं न विलोकमानो विषेण तृप्तिं वितनोति कोऽपि ॥४३॥

अर्थ—या प्रकार मानके नानाप्रकार दोषकौं विचारिकै मानसहित निदानकौं कदाच भी न करै है। जैसैं प्राणके नाशकौं देखता पुरुष कोई भी विषकरि तृप्तिकौं न विस्तारै है तैसें ॥ ४३ ॥

यो घातकत्वादि निदानमज्ञः करोति कृत्वा चरणं विचित्रं ।
हि वर्द्धयित्वा फलदानदक्षं, स नन्दनं भस्मयते वराकः ॥४४॥

अर्थ—जो नाना प्रकार चारित्र्यकौं करकै अर अज्ञानी घातकपना आदिका निदान करै है सो बावरा पुरुष फल देनेमैं प्रवीण ऐसा जो नन्दन वन ताहि बढ़ाय करि भस्म करै है।

भावार्थ—जो चारित्रधारी द्वीपायनकी ज्यौं मारने आदिका निदान करै है सो चारित्रका नाश करै है, अनन्त संसारी होय है ऐसा जानना ॥ ४४ ॥

य: संयमं दुष्करमादधानो, भोगादिकांक्षां वितनोति मूढ: ।
कंठे शिलामेष निधाय गुर्वी, विगाहते तोयमलभ्य मध्यम् ।।४५।।

अर्थ—जो मूढ़ दु:खकर संयमकौं धारता संता भोगादिककी वांछाकौं विस्तारै है सो कंठ विषैं बड़ी शिलाकौं धारिकै नाहीं मिलने योग्य है मध्य जाका ऐसा औंडा जलकौं अवगाहै है ॥ ४५ ॥

त्रिधा विधेयं न निदानमित्थं, विज्ञाय दोषं चरणं चरद्भि: ।
अपथ्यसेवां रचयंति सन्तो, विज्ञातदोषा न कृतौषधेच्छा: ।। ४६ ।।

अर्थ—अणुव्रतादिरूप चारित्रकौं आचरन करते जे पुरुष तिनकरि या प्रकार निदानके दोषकौं जानिकै निदान है सो मन वचन कायकरि करना योग्य नाहीं । जैसैं करी है औषधकी इच्छा जिननैं अर जान्या है अपथ्यका दोष जिननैं ऐसे सज्जन हैं ते अपथ्यका सेवन न करैं हैं।

भावार्थ—संसार रोगकी औषध चारित्र है अर निदान संसार रोग बढ़ानेवाला कुपथ्य है । जे चारित्र धारैं हैं अर निदानकौं बुरा जानैं हैं ते निदान न करैं हैं, ऐसा जानना ।। ४६ ।।

ऐसा निदानशल्यका वर्णन किया । आगैं मायाशल्यका वर्णन करै है;—

आयासविश्वासनिराशशोकद्वेषावशादश्रमवैरभेदा: ।
भवंति यस्यामवनाविवागा:, सा कस्य माया न करोति कष्टम् ।।४७।।

अर्थ—जैसैं भूमिमैं वृक्ष होय तैसैं प्रयास अर विश्वासका अभाव अर शोक अर द्वेष अर कष्ट अर श्रम अर वैर इत्यादि भेद हैं ते जिस माया विषैं होय हैं सो कोनकै कष्ट न करै, सर्वहीकै करै ॥ ४७ ॥

स्वल्पापि सर्वाणि निषेव्यमाणा, सत्यानि माया क्षणतः क्षिणोति ।
नाल्पा शिखा किं दहतींधनानि, प्रवेशिता चित्ररुचेर्घनानि ।।४८।।

अर्थ—थोड़ी भी सेई भई माया क्षण मात्रमैं सर्व सत्यका नाश

करै है। इहां दृष्टांत कहै है;—अग्निकी अल्प ज्वाला प्रवेश करी भई कहा संचय रूप इंधननकौं नाहीं दहै है ? दहै ही है ॥ ४८ ॥

निकर्त्तितुं वृत्तवनं कुठारी, संसारवृक्षं सवितुं धरित्री ।
बोधप्रभाध्वंसयितुं त्रियामा, माया विवर्ज्या कुशलेन दूरम् ॥४९॥

अर्थ—प्रवीण पुरुष करि माया दूर त्यागनी योग्य है। कैसी है, माया चारित्र वनके काटनेकौं कुल्हाडी समान है, अर संसार रूप वृक्षके उपजावनेंकौं पृथ्वी समान है, अर ज्ञानरूप प्रभा प्रकाशके नाशनेंकौं रात्रि समान है । ऐसा जानना ॥ ४९ ॥

छिनत्ति मैत्रीं वितनोत्यमैत्रीं, तनोति पापं वितनोति धर्मम् ।
पुष्णाति दुःखं विधुनोति सौख्यं, न वंचना किं कुरुते विनिंद्यम् ॥५०॥

अर्थ—माया है सो मैत्री कहिए प्रीति ताका नाश करै है अर अप्रीतिकौं विस्तारै है, पापकौं विस्तारै है अर धर्मका विध्वंस कर है, दुःखकौं पुष्ट करै है अर सुखका अभाव करै है । बहुरि सो माया कौन निंदने योग्य है ताहि न करै है, सर्व ही करै है ॥ ५० ॥

ऐसैं मायाका वर्णन किया । आगैं मिथ्यात्व शल्यका वर्णन करैं हैं;—

न बुध्यते तत्त्वमतत्वमंगी, विमोह्यमानो रभसेन येन ।
त्यजंति मिथ्यात्वविषं पटिष्ठाः, सदा विभेदं बहुदुःखदायि ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिस मिथ्यात्वविष करि जबरदस्ती अचेत भया संता जीव है सो तत्व अतत्वकौं न जानै है तिस बहुत भेदरूप मिथ्यात्व विषकौं पंडित जन हैं ते त्यागैं हैं। कैसा है मिथ्यात्व विष बहुत दुःखका देनेवाला है, ऐसा जानना ॥ ५१ ॥

आगैं मिथ्यात्वके अभिप्रायका वर्णन करैं हैं—

वदन्ति केचित् सुखदुःखहेतुर्न, विद्यते कर्मशरीरभाजाम् ।
मानस्य तस्मिन्निखिलस्य हानेर्मानव्यपेतस्य न चास्ति सिद्धिः ॥५२॥

अर्थ—कोई कहै है–जीवनिकै सुख दुःखका कारण कर्म नाहीं है, जातैं तिस कर्म विषैं समस्त प्रमाणनिकी हानि है। बहुरि प्रमाण रहितकी सिद्धि नाहीं।

भावार्थ—कोई कहैं हैं सुख दुःखका कारण कर्म नाहीं तातैं कर्म इन्द्रियनिके गोचर नाहीं अर ताका लिंग कोऊ दीसै नाहीं, बहुरि कर्म-समान और पदार्थ दीसै नाहीं, बहुरि कर्म बिना न होय ऐसे पदार्थकी अप्राप्ति है, बहुरि हमारे आगममें भी कर्मका अभाव कह्या है; ऐसे सर्व प्रमाणके अगोचर है। बहुरि जो प्रमाणमैं न आवै सो वस्तु नाहीं, तातैं कर्म नाहीं है। ५२ ॥

बहुरि फेर कहैं हैं—

सत्त्वेऽपि कर्तुं न सुखादिकार्यं, तस्यास्ति शक्तिर्गतचेतनत्वात्।
प्रवर्त्तमानाः स्वयमेव दृष्टाः, विचेतनाः क्वापि मया न कार्ये ॥५३॥

अर्थ—जीवविषैं सुखादि कार्यके दूर करनेकी ता कर्मके शक्ति नाहीं, जातैं कर्मके अचेतपना है। मैंने कोई कार्य विषैं अचेतन पदार्थकौं स्वयमेव प्रवर्त्तते न देखे।

भावार्थ—जीवके सुख ज्ञानादि घात करनेकौं कर्म समर्थ नाहीं जात आप अचेतन है। लोकमें अचेतन पदार्थ कार्य करते न देखे हैं, ऐसा तातैं कर्मका अभाव साध्या ॥ ५३ ॥

अब आचार्य कहैं हैं—

एषा महामोहपिशाचवश्यैर्न, युज्यते गीरभिधीयमाना।
प्रमाणमस्माकमबाध्यमानं, यतोऽस्य सिद्धावनुमानमस्ति ॥ ५४ ॥

अर्थ—महा मोहरूप पिशाचके वशीभूत जे मिथ्यादृष्टि तिनकरि कही यह वाणी युक्त नाहीं, जातैं इस कर्मकी सिद्धि विषैं हमारा अबाधित अनुमान प्रमाण है ॥ ५४ ॥

सो ही अनुमान दिखावैं हैं—

रागद्वेषमदमत्सरशोकक्रोधलोभभयमन्मथ मोहाः ।
सर्वजन्तुनिवहैरनुभूताः, कर्मणा किमु भवन्ति विनैते ॥ ५५ ॥

अर्थ—सर्व जीवनिके समूहनि करि अनुभव किए ऐसे जे रागद्वेष, मद, मत्सर, शोक, क्रोध, लोभ, भय, काम, मोह इत्यादि विकार भाव हैं ते कर्म विना ये कैसैं होय ।

भावार्थ—संसारी जीवनिकै कर्म बन्धे है जातैं कर्मनिके उदयका कार्य जो रागादि भाव हैं ते सर्व जीवनि करि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि जानिए है, कर्मोदय विना रागादिक कैसैं होय; जाकै कर्म बंध नाहीं सो रागादि सहित नाहीं जैसैं मुक्त जीव । इहां कार्यलिंगतें अनुमान किया है ॥ ५५ ॥

आगैं फेर आशंकाका उत्तर करै हैं;—

ते जीवजन्याः प्रभवंति नूनं, नैषापि भाषा खलु युक्तियुक्ता ।
नित्यप्रसक्तिःकथमन्यथैषां, संपद्यमाना प्रतिषेधनीया ॥ ५६ ॥

अर्थ—वादी कहै है कि ते रागादिभाव जीवहीतैं उपजै हैं; ताकौं आचार्य कहैं हैं—कि ऐसी वाणी निश्चय करि युक्त नाहीं, जातैं ये रागादि जीवहीतैं उपजे होय तौ इन रागादिकनिकी नित्य सम्बन्धता आई सो कैसैं निषेध करने योग्य होय ।

भावार्थ—रागादि भाव आत्माके स्वभाव होय तौ स्वभावका अभाव होनेत सर्व अवस्थामैं रहे चाहिए तब जीवकै मोक्ष कैसैं होय तातैं रागादिक हैं ते कर्मोदयके निमित्त विना न होय है, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

आगैं फेर कहैं हैं—

नित्येजीवे सर्वदा विद्यमाने, कादाचित्का हेतुना केन संति।
निर्मुक्तानां जायमाना निषेद्धुं, ते शक्यंते केन मुक्तिश्च तेभ्यः ॥५७॥

अर्थ—सदाकाल विद्यमान जो नित्य जीव ता विषैं कहीं होय कहीं न होय ऐसे कदाच होनेवाले जे रागादिक ते कौन कारणकरि होय हैं, अर मुक्त जीवनिकै उत्पन्न भए जे रागादिक ते काहे करि निषेधनेकौं समर्थ हूजिए अर तिनतैं मुक्ति काहेकरि होय।

भावार्थ—जैसैं फटिकमणि निर्मल तो सदा है तामैं काला पीला आदि जैसा डांक लगै तैसा परिणमैं सो परिणमन कदाचित् होय है तातैं ताकौं कदाचित्क कहिए तैसैं आत्मा तो नित्य है ताकै मोहादि कर्मका निमित्त मिलै रागादिरूप परिणमन होय है सो कादचित्क है, अर ते रागादि कर्म निमित्तविना होय तो रागादिक नित्य स्वभाव ठहरै तब तिनका मुक्त जीवकैं भी अभाव कैसैं होय अर तिनतैं कैसैं छूटै, तातैं कर्मका अस्तित्व मानना योग्य है ॥ ५७ ॥

आगें फेर कहैं हैं—

तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां केचिल्लभंते निजकार्यसिद्धिम्।
परे न तामत्र निगद्यतां मे, कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः ॥५८॥

अर्थ—समान है प्रताप अर उद्यम जिसके ऐसे पुरुषनिकै मध्य केई पुरुष अपने कार्यकी सिद्धिकौं पावैं हैं। बहुरि और केई ता कार्यकी सिद्धिकौं न पावै हैं; सो इहां कर्म सिवाय और कोई भी कारण होय तो मोसैं कहि।

भावार्थ—समान पुरुष समान उद्यम करै तहां कोईकै सिद्धि होय कोईकै न होय सो इहां कर्म सिवाय और कारण नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

आगें फेर कहै हैं—

विचित्रदेहाकृति वर्णगंधप्रभावजातिप्रभवस्वभावाः ।
केन क्रियंते भुवनेंगिवर्गाश्चिरन्तनं कर्म निरस्य चित्राः ॥ ५९ ॥

अर्थ—लोक विषैं नानाप्रकार शरीर वर्ण गंध वीर्य जाति इनके उपजावने रूप है स्वभाव जिनके ऐसे जे अनेक जीवनिके समूह ते पहला पुरातन कर्म विना कौन करि करिए है ।

भावार्थ—पहला कर्म न होय तो आगामी नाना शरीर काहेतैं उपजै, तातैं प्राचीन कर्म मानना योग्य है ॥ ५९ ॥

विवर्द्ध्य मासान्नव गर्भमध्ये, बहुप्रकारैः कलिलादिभावैः ।
उद्वर्त्य निष्कासयते सवित्र्या को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम् ॥६०॥

अर्थ—गर्भ विषैं नव मास ताईं नानाप्रकार रुधिरादि भावनि करि बढ़ायकै अर पलटकै माताके गर्भ तैं पूर्व कर्म विना कौन निकासै है ।

भावार्थ—पहला कर्म न होय तो गर्भमैं वृद्धि होना अर मुख पलटकैं गर्भ तैं निकासना इत्यादि कार्य कैसैं होय, तातैं पूर्व कर्म अवश्य मानना ॥ ६० ॥

आगे वादीनै कही थी कर्म अचेतन है सो कार्य कैसैं करै ताका उत्तर करै है:—

विलोकमानाः स्वयमेव शक्तिं विकारहेतुं विषमद्यजाताम् ।
अचेतनं कर्म करोति कार्यं कथं वदंतीति कथं विदग्धाः ॥६१॥

अर्थ—विष वा मदिरा इन अचेतननैं उपजी जो विकारकी कारण शक्ति ताहि आपही देखते संते चतुर पुरुष हैं ते "अचेतन जो कर्म सो कार्यकौं कैसैं करै है" ऐसी कैसैं कहैं हैं।

भावार्थ—मदिरादि अचेतन वस्तु है सो जैसें गहलपना उपजावै

है तैसैं कर्म भी अचेतन है सो अपना कार्य करै है, यामैं शंका कहां, प्रत्यक्ष अचेतनका कार्य देखिए है ॥ ६१ ॥

आगे फेर कहैं हैं:—

नानाप्रकारा भुवि वृक्षजातीर्विधूय पत्राणि पुरातनानि ।
अचेतनः किं न करोति कालः प्रत्यग्रपुष्पप्रसवादिरम्याः ॥६२॥

अर्थ—पृथ्वीविषैं अचेतन जो काल है सो नानाप्रकार वृक्षकी जो जाति ताहि पुरानें पत्रनकौं झड़ाय करि नवीन पुष्प पत्रादिकनि करि मनोहर कहा न करै है? करै ही है ।

भावार्थ—जैसें अचेतनकाल है सो वृक्षनिके पहले पत्र झड़ाय नवीन पत्रादि करै है तैसें अचेतन कर्म भी अपना कार्य करै है, ऐसा जानना ॥ ६२ ॥

आगैं फेर कहैं हैं:—

यैर्निःशेषं चेतनामुक्तमुक्तं कार्याकारि ध्वस्तकार्यावबोधैः ।
धर्माधर्माकाशकालादि सर्व द्रव्यं तेषां निष्फलत्वं प्रयाति ॥६३॥

अर्थ—जिन पुरुषनि करि चेतना रहित अचेतन द्रव्य है सो सर्वथा कार्यका करनेवाला नाहीं ऐसा कह्या तिनकै धर्म अधर्म आकाश काल आदि सर्व द्रव्य निष्फलपनेकौं प्राप्त होय हैं, कैसे हैं ते पुरुष नष्ट भया है कार्यका ज्ञान जिनकै ।

भावार्थ—जे सर्वथा अचेतनकौं कार्यका करनेवाला न मानै हैं तिनकै धर्मादि द्रव्य अचेतन हैं ते निष्फल ठहरे तातें तिनकें कार्य कारणपनेका ज्ञान नाहीं । यद्यपि धर्मादि द्रव्य प्रेरक कर्त्ता नाहीं तथापि निमित्त नैमित्तिक भाव मात्र परस्पर कार्यकारणपना है, सो स्याद्वादतैं अविरोध सधै है ॥ ६३

आगे कोऊ कहै कि अमूर्त्त जीवकै मूर्तीक कर्म नहीं बन्धै है, ताका समाधान करै हैं—

जीवैरमूर्तैः सह कर्म मूर्तं, संबध्यते नेति वचो न वाच्यम्।
अनादिभूतं हि जिनेन्द्रचन्द्राः, कर्मांगिसम्बन्ध मुदा हरंति ॥६४॥

अर्थ—अमूर्तीक जीवनि सहित मूर्त्तीक कर्म न बन्धै है ऐसा कहना योग्य नाहीं; जातें जिनेन्द्रचन्द्र हैं ते कर्म अर जीवनिका अनादितें सम्बन्ध कहैं हैं।

भावार्थ—जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध है सो अनादि स्वभावमें तर्क नाहीं, ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

आगें इस कथनको संकोचें हैं—

इत्यादि मिथ्यात्वमनेकभेदं, यथार्थतत्वप्रतिपत्तिसूदि।
विवर्जनीयं त्रिविधेन सद्भिर्जैनं व्रतं रत्नमिवाश्रयद्भिः ॥ ६५ ॥

अर्थ—संतन करि इत्यादिक मिथ्यात्व नानाप्रकार यथार्थ तत्व-ज्ञानका नाश करनेवाला है सो मन वचन काय करि त्यागना योग्य है। कैसे हैं सत्पुरुष जिन भगवानके व्रतकौं रत्नकी ज्यौं सेवै हैं ॥ ६५ ॥

आगें एकादश प्रतिमानका वर्णन करें हैं—

एकादशोक्ता विदितार्थतत्त्वैरुपासकाचारविधेर्विभेदाः।
पवित्रमारोढुमनन्यलभ्यं सोपानमार्गा इव सिद्धिसौधम् ॥६६॥

अर्थ—जाने हैं पदार्थनिके स्वरूप जिननें ऐसे अर्हंतादिकनि करि श्रावकके आचारकी विधिके भेद ग्यारह कहे हैं, ते भेद पवित्र मोक्ष महलके चढनेकौं सिवाणके मार्ग समान हैं, कैसा है मोक्ष महल अन्य सामान्य जनकरि नाहीं पावने योग्य है, ऐसा जानना ॥६६॥

आगैं ग्यारह प्रतिमानमैं प्रथम दर्शनप्रतिमाकौं कहै हैं—

यो निर्मलां दृष्टिमनन्यचित्तः, पवित्रवृत्तामिव हारयष्टिम्।
गुणावनद्धां हृदये निधत्ते, स दर्शनी धन्यतमोऽभ्यधायि ॥६७॥

अर्थ—नाहीं है और ठिकाने चित्त जाका ऐसा जो पुरुष पवित्र अर गोल हारकी लडी समान निर्मल दृष्टिकौं हृदयमैं धारै है सो दर्शनसहित पुरुष अतिशय करि धन्य कह्या है। कैसी है हारकी लडी गुण जे डोर तिन करि बन्धी है, अर निर्मल दृष्टि वात्सल्य आदि गुण कर बन्धी है ऐसा जानना ॥ ६७ ॥

आगैं व्रत प्रतिमाकौं कहै हैं—

विभूषणानीव दधाति धीरो, व्रतानि यः सर्वसुखाकराणि।
आकृष्टुमीशानि पवित्रलक्ष्मीं, तं वर्णयन्ते व्रतिनं वरिष्ठाः ॥६८॥

अर्थ—सर्व सुखनिके स्थान जे बारह व्रत तिनहि जो आभूषणनिकी ज्यों धारै है ता पुरुषकौं आचार्य व्रती कहैं हैं। कैसे हैं बारह व्रत पवित्र लक्ष्मी जो स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मी ताकू प्राप्त करनेकौं समर्थ हैं, ऐसा जानना ॥ ६८ ॥

आगैं सामायिक प्रतिमाकौं कहैं हैं:—

रौद्रार्त्तमुक्तो भवदुःखमोची, निरस्तनिःशेषकषायदोषः।
सामायिकं यः कुरुते त्रिकालं, सामायिकस्थः कथितः स तथ्यम् ॥६९॥

अर्थ—आर्त्त रौद्र खोटे ध्याननि करि रहित अर संसार दुःखनिका त्यागनेवाला अर त्यागे है समस्त क्रोधादि कषाय जानैं ऐसा जो पुरुष त्रिकाल सामायिककौं करै है सो पुरुष सत्यार्थ सामायिक विषैं तिष्ठ्या कह्या है ॥ ६९ ॥

आगैं प्रोषध प्रतिमाकौं कहैं हैं:—

मन्दीकृताक्षार्थ सुखाभिलाषः, करोति यः पर्वचतुष्टयेऽपि।
सदोपवासं परकर्म मुक्त्वा, सः प्रोषधी शुद्धधियामभीष्टः ॥७०॥

अर्थ—मंद करी है इंद्रिय विषय जनित सुखकी अभिलाषा जानें ऐसा जो पुरुष पर्वचतुष्टय कहिये एक मासकी दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इन चारिनि विषैं आरम्भ छोड़करि निश्चयकरि सदा उपवास करै है सो प्रोषध प्रतिमाधारी शुद्ध बुद्धीनके अभीष्ट है वांछित है ॥७०॥

आगैं सचित्तत्याग प्रतिमाकों कहै हैं:—

दयार्द्र चित्तो जिनवाक्यवेदी, न वल्भते किंचन यः सचित्तम् ।
अनन्यसाधारण धर्मपोषी, सचित्तमोची स कषायमोची ॥ ७१ ॥

अर्थ—दया करि भीज्या है चित्त जाका अर जिनेन्द्रके वचननिका जाननेवाला ऐसा जो पुरुष कछू भी सचित्तकों न खाय है सो औरके समान नाहीं, ऐसे असाधारण धर्मका पुष्ट करनेवाला कषायरहित सचित्तत्यागी कह्या है ॥ ७१ ॥

आगैं रात्रिभोजनका त्याग वा दिनमैं अब्रह्म त्याग प्रतिमाकों कहैं हैं:—

निषेवते यो दिवसे न नारी—मुद्दामकन्दर्पमदापहारी ।
कटाक्षविक्षेपशरीरविद्धो, बुधैर्दिन ब्रह्मचरः स बुद्धः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो पुरुष तीव्र कामके मदका दूर करनेवाला दिवस विषैं नारीकों न सेवै है, सो पंडितनि करि स्त्री कटाक्षका चलावना रूप बाणनि करि नाहीं वींध्या दिन विषैं ब्रह्मचारी कह्या है । दिन विषैं तो स्त्रीका न सेवना सो दिन ब्रह्मचारी है वा यहु रात्रिभोजनका भी त्यागी है, तातैं याहीका नाम रात्रिभोजन त्यागी भी कह्या है; ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

आगैं ब्रह्मचर्य प्रतिमाकों कहैं हैं:—

यो मन्यमानो गुणरत्नचौरीं, विरक्तचित्तस्त्रिविधेन नारीम् ।
पवित्रचारित्रपदानुसारी, स ब्रह्मचारी विषयापहारी ॥ ७३ ॥

अर्थ—जे विरक्त पुरुष स्त्रीकौं मन, वचन, काय करि गुणरत्नकी चोरनेवाली मानता सन्ता पवित्र चारित्रके पदका अनुसारी विषयनका त्यागी सो ब्रह्मचारी कह्या है ॥ ७३ ॥

आगैं आरम्भ त्याग प्रतिमाकौं कहै हैं:—

विलोक्य षड्जीवविघातमुच्चैरारम्भमत्यस्यति यो विवेकी ।
आरम्भमुक्तः स मतो मुनीन्द्रैर्विरागिकः संयमवृक्षसेकी ॥ ७४ ॥

अर्थ—अतिशयकरि षट्कायिक जीवनिका घात देखकैं जो विवेकी आरम्भकौं त्यागै है सो मुनींद्रनिकरि आरम्भ रहित कह्या है, कैसा है सो विरागी संयम वृक्षका सींचनेवाला है ॥ ७४ ॥

आगैं परिग्रह त्याग प्रतिमाकौं कहैं हैं—

यो रक्षणोपार्जननश्वरत्वैर्ददाति, दुःखानि दुरुत्तराणि ।
विमुच्यते येन परिग्रहोऽसौ, गीतोऽपसंगैरपरिग्रहोऽसौ ॥ ७५ ॥

अर्थ—जो परिग्रह रक्षा करना उपार्जन करना विनसना दुःखतैं उतरे जाय ऐसे दुःखनिकौं देय है, ऐसा यहु परिग्रह जाकरि त्यागिए सो यहु परिग्रह रहित जे मुनींद्र तिन करि अपरिग्रह कह्या है ॥७५॥

आरम्भसंदर्भ विहीनचित्तः कार्येषु मारीमिव हिंसरूपाम् ।
यो धर्मसत्तानुमतिं न दत्ते, निगद्यते सोऽननु मंतृमुख्यः ॥ ७६ ॥

अर्थ—आरम्भकी रचना करि हीन है चित्त जाका अर धर्मका अनुमोदन करनेवाला ऐसा जो पुरुष पापकार्यनि विषैं हिंसकरूप मारी समान जो अनुमति कहिए सलाह ताहि न देवै सो नाहीं अनुमति करनेवालेनिमैं प्रधान कहिए है ।

भावार्थ—पाप कर्मकी अनुमोदनाका त्याग करै सो अनुमति त्यागी दशम प्रतिमाधारी कहिए, ऐसा जानना ॥ ७६ ॥

आगैं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाकौं कहै है—

यो बन्धुराबंधुरतुल्यचित्तो, गृह्णाति भोज्यं नवकोटिशुद्धम् ।
उद्दिष्टवर्जी गुणिभिः स गीतो, विभीलुकः संसृति मातुधान्याः ॥७७॥

अर्थ—जो पुरुष भले बुरे आहारमैं समान है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष नवकोटि शुद्ध कहिए मन, वचन, काय करि करया नाहीं कराया नाहीं करे हुएकौं अनुमोद्या नाहीं ऐसे आहारकौं ग्रहण करै है सो उद्दिष्ट त्यागी गुणवन्तनिनैं कह्या है, कैसा है, सो संसाररूप राक्षसीसैं विशेष भयभीत है ॥ ७७ ॥

ऐसैं ग्यारह प्रतिमाका वर्णन किया। इहां संक्षेप ऐसा है, जो मिथ्यात्व अर अनन्तानुबन्धी कषाय इनके उदयका अभाव तौ सम्यग्दर्शन होतैं ही भया। बहुरि अप्रत्याख्यानावरणके उदयके अभावतैं देशविरतनामा पंचम गुणस्थान होय है ताकै दर्शन प्रतिमासैं लगाय ऊपर ऊपर विशुद्धताकी अधिकतातैं ग्यारह भेद कहै हैं। सम्यक्त्वसहित बारह व्रतनिहीकी ऊपर ऊपर निर्मलता होती जाय है, ऐसा जानना। इहां कोऊ कहै कि देशव्रतका घातक जो अप्रत्याख्यानावरण कषाय ताके उदयका तो अभाव भया अब हीन अधिक विशुद्धता किस कर्मके उदयतैं होय है ताका उत्तर—यद्यपि इहां अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नाहीं तथापि प्रत्याख्यानावरण कषायके मन्द तीव्र उदयतैं हीन अधिक विशुद्धिता होय है जैसैं—प्रत्याख्यान कषायका अभाव होतैं षष्टमादि गुणस्थानमैं हीनाधिक विशुद्धता संज्वलनके तीव्र मन्द उदयतैं होय है तैसैं, ऐसा जानना ॥ ७७ ॥

क्रमेणामूंस्थित्वे निदधति मुदैकादश गुणा-
नलं निंदा गर्हानिहितमनसो येऽस्ततमसः।
भवान् छित्वान् भ्रांत्वाऽसमसमनुजयोर्भूरिमहसो-
विधूतैनोबंधाः परमपदवीं यांति सुखदाम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—दूर भया है अज्ञान अन्धकार जिनका, बहुरि निंदा

गर्हा विषैं लगाया है मन जिननैं ऐसे पुरुष अतिशय करि हर्ष सहित इन पूर्वोक्त ग्यारह गुणनकौं चित्त विषैं धारै हैं ते पुरुष बड़े हैं तेज जिनके ऐसे देव मनुष्यनि विषै दोय तीन भव भ्रमण करि बहुरि नाश किये है पापबंध जिननैं ऐसे ते सुखकी देनेवाली परमपदवी जो मुक्ति ताहि प्राप्त होय हैं।

भावार्थ—जे सम्यग्दृष्टी ग्यारह प्रतिमाकौ धारै हैं। आपकी निंदा गर्हा करैं हैं ते दो तीन भव देवादिकके सुख भोगकै सिद्ध होय है, ऐसा जानना ॥ ७८ ॥

इदं धत्ते भक्त्या गृहिजनहितं योऽत्र चरितं
मदक्रोधायासप्रमदमदनारम्भमकरम् ।
भवांभोधिं तीर्त्वा जननमरणावर्त्तनिचितं
व्रजत्येषोऽध्यात्मामितगतिमतं निर्वृतिपदम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—जो पुरुष इहां भक्ति सहित ये गृहस्थ जनका हितरूप चारित्रकौं धारै है सो यह आत्मा ज्ञानी संसार-समुद्रकौं तिरके सर्वज्ञ देवकरि कह्या जो शिवपद ताहि प्राप्त होय है। कैसा है संसार-समुद्र क्रोध स्वेद हर्ष काम आरंभ ये ही है मगर जा विषैं, बहुरि जन्म मरणरूप भौंरनिकरि व्याप्त है ॥ ७९ ॥

कवित्त छन्द ।

दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध, सचित रात्रिभोजन परिहार ।
ब्रह्मचर्य आरंभ परिग्रह, अनुमतिविरति दसम सुखकार ॥
पुनि उद्दिष्टत्याग पडिमा, इम धारत जो श्रावक दुखहार ।
सो स्वर्गादि सम्पदा लहिकै, होय अमितगति पद अविकार ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
सप्तम परिच्छेद समाप्त भया ।

अष्टम परिच्छेद।

आगैं छह प्रकार आवश्यककौं कहै हैं:—

जिनं प्रणम्य सर्वीयं, सर्वज्ञं सर्वतो मुखम्।
आवश्यकं मया षोढा, संक्षेपेण निगद्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जिनदेवकौं नमस्कार करिकै मोकरि छह प्रकार संक्षेप-करि आवश्यक कहिए है। कैसे हैं जिनदेव सर्वीयं कहिए सर्वज्ञेयाकार रूप परिणया जो ज्ञान ता स्वरूप है, बहुरि सर्वका जाननेवाला है, बहुरि सर्व तरफ है मुख जाका ऐसा है।

भावार्थ—सर्वदर्शी है ॥ १ ॥

आगमोऽनन्तपर्यायो, यतो जनो व्यवस्थितः।
अभिधातुं ततः केन, विस्तरेण स शक्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जातैं जिनभाषित आगम है सो अनन्तभेद स्वरूप तिष्ठै है, तातैं विस्तार सहित कौन करि कहनेकौं समर्थ हूजिए है ॥२॥

मत्तोऽपि संति ये बालाश्विभाकारेषु जन्तुषु।
अस्यायबोधतस्तेषामुपकारो भविष्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—नाना प्रकार जीवनिकौं होत सन्तें भी जे अज्ञानी है तिनका इसके ज्ञानतैं उपकार होयगा।

भावार्थ—आगमतौं अनन्त है सो सर्व कौन कहि सकै परन्तु इहां संक्षेपमात्र आवश्यकका स्वरूप कहिए है, जाकै जाने मोतें भी जे मंदज्ञानी है तिनका उपकार होयगा, ऐसा जानना है ॥ ३ ॥

आवश्यकं न कर्त्तव्यं, नैःफल्यादित्यसाम्प्रतम्।
प्रशस्ताध्यवसायस्य, फलस्यात्रोपलब्धितः ॥ ४ ॥
प्रशस्ताध्यवसायेन, संचितं कर्म नाश्यते।
काष्ठं काष्ठान्तकेनेव, दीप्यमानेन निश्चितम् ॥ ५ ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि आवश्यक करना योग्य नाहीं, जातें ताके फल रहितपना है ताकौं आचार्य कहै हैं—सो कहना अयुक्त है, जातें इस आवश्यक विषैं प्रशस्त परिणामनिकी प्राप्ति है ॥ ४ ॥ बहुरि प्रशस्त परिणाम करि संचयरूप जो कर्म सो निश्चयतैं नाशिए है जैसें जाज्वल्यमान अग्निकरि काठ नाशिए तैसें ॥ ५ ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि आवश्यकका किछू फल नाहीं तातें आवश्यक न करना, ताकौं कह्या है कि आवश्यक किया करनेतें भले परिणाम होय हैं तिन तें कर्मका नाश होय है तातें आवश्यक क्रिया निष्फल नाहीं ॥ ४–५ ॥

जायते न स सर्वत्र, न वाच्यमिति कोविदैः।
स्फुटं सम्यकृते तत्र, तस्य सर्वत्र सम्भवात् ॥ ६ ॥

अर्थ—सो आवश्यक क्रिया सर्व जायगा न होय है ऐसे पंडितनिकरि कहना योग्य नाहीं, जातें आवश्यक क्रियाकौं भले प्रकार करते सर्वत्र सब जायगा सम्भवै है।

भावार्थ—कोऊ कहै कि आवश्यक सर्वत्र न होवै है ताकूँ आचार्यने कह्या है कि भले प्रकार करै सर्वत्र होय है, यामैं संदेह न करना ॥ ६ ॥

न सम्यक्करणं तस्य, जायते ज्ञानतो विना।
शास्त्रतो न विना ज्ञानं, शास्त्रं तेनाभिधीयते ॥ ७ ॥

अर्थ—आवश्यक क्रियाका भले प्रकार करना तिसके ज्ञान विना न होय है। बहुरि शास्त्र विना ज्ञान नाहीं ता कारण करि शास्त्र कहिए है ॥ ७ ॥

लाभपूजायशोऽर्थित्वे, तस्य सम्यक्कृतावपि।
प्रशस्ताध्यवसायस्य, संभवो नोपलभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—लाभ पूजा यशके अर्थीपने करि वांछा सहित तिस आवश्यक क्रियाकौं भले प्रकार करे संतैं भी प्रशस्त परिणामका होना न पाइए है ॥ ८ ॥

तद्युक्तं यतो नेदं, सम्यक्करणमुच्यते ।
अत एवात्र मृग्यंते, सम्यक्कृत्यधिकारिणः ॥ ९ ॥

अर्थ—सो लाभ पूजादिककी वांछा सहित कारण योग्य नाहीं जातैं वांछा सहित यहु कारण भला न कहिए है, इस ही तैं इहां भले करने योग्यके अधिकारी हेरिए हैं ।

भावार्थ—भले प्रकार आवश्यक क्रियाका करनेवाला पुरुषका स्वरूप कहिए है ॥ ९ ॥

संसारदेहभोगानां, योऽसारत्वमवेक्षते ।
कषायेंद्रिययोगानां, जयनिग्रहरोधकृत् ॥ १० ॥

अर्थ—जो पुरुष संसार देह भोगनिका असारपना देखै है अर कषाय, इंद्रिय, योग, इनका यथाक्रम, जय, निग्रह, रोध करै है ।

भावार्थ—कषायनकौं जीतै है इन्द्रियनिकौं दमै है, मन वचन कायके योगनकौं रोकै है सो आवश्यक क्रियाका अधिकारी है ॥१०॥

आगैं ताका विशेष स्वरूप कहैं हैं—

अनेकयोनिपाताले, विचित्रगतिपत्तने ।
जन्ममृत्युजरावर्त्ते, भूरिकल्मषपाथसि ॥ ११ ॥
संसारसागरे भीमे, दुःखकल्लोलसंकुले ।
रागद्वेषमहानक्रे, रौद्रव्याधिझषाकुले ॥ १२ ॥
चिरं बंभ्रम्यमाणानां जिनेन्द्रपद वंदना ।
दुरापा जायतेऽत्यर्थमिति यो हृदि मन्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—अनेक जोनि हैं पाताल जा विषैं, बहुरि नानाप्रकार

गति ही है पत्तन कहिए पुर जा विषैं, अर जन्म मृत्यु जरा ही है आवर्त्त कहिए भौंरे जामैं अर महापाप ही है जल जा विषैं अर दुःख रूप लहरन करि व्याप्त अर रागद्वेष ही हैं बडे नक्र जा विषैं अर भयानक रोगरूप मच्छनि करि भरया ऐसा जो भयानक संसार-समुद्र ता विषैं बहुत कालतैं अतिशय करि भ्रमते जे जीव तिनकौं जिनेंद्रके चरणनिकी जो वंदना सो अतिशय करि दुर्लभ है ऐसा जो पुरुष हृदय विषैं मानै है ॥ ११-१२-१३ ॥

बहुरि कहैं हैं—

अनर्थकारिणः कांता जननी जनकादयः ।
स्वस्योपकारिणो योऽलं बुध्यते परमेष्ठिनः ॥ १४ ॥

अर्थ—स्त्री माता पितादिकनिकौं अनर्थके करनेवाले मानैं हैं अर आपके उपकार करनेवाले पंच परमेष्ठीनकौं मानैं है ॥ १४ ॥

बहुरि कैसे हैं—

सर्वाणि गृहकार्याणि, परकार्याणि पश्यति ।
शुद्धधीर्धर्मकार्याणि, निजकार्याणि यः सदा ॥ १५ ॥
यौवनं जीवितं भिष्णमैश्वर्यं जनपूजितम् ।
नश्वरं वीक्षते सर्वं, शारदभ्रमिवानिम् ॥ १६ ॥
दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयं भवकानने ।
जानीते दुर्लभं भूयो भ्रष्टं रत्नमिवांबुधौ ॥ १७ ॥
मयूरस्येव मेघौघे, वियुक्तस्येव बांधवे ।
तृषार्तस्येव पानीये, विबद्धस्येव मोक्षणे ॥ १८ ॥
सन्याधेरिव कल्पद्रुमे, विहष्टेरिव लोचने ।
जायते यस्य सन्तोषो, जिनवक्त्रविलोकने ॥ १९ ॥
परीषहसहः शांतो जिनसूत्रविशारदः ।
सम्यग्दृष्टिरनाविष्टो, गुरुभक्तः प्रियंवदः ॥ २० ॥

आवश्यकमिदं धीरः, सर्वकर्मनिषूदनम् ।
सम्यक्कर्तुमसौ योग्यो, नापरस्यास्ति योग्यता ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुरि जो सर्व गृह सम्बन्धी कार्यनकों परके कार्य मानै है, अर सुबुद्धी धर्म कार्यनकों सदा अपने कार्य मानै है ॥ १५ ॥

बहुरि जो यौवनकों जीवनकों घरकों अर लोकमान्य ऐश्वर्यकों सबकों शरदके मेघ समान निरन्तर विनाशिक देखे है ॥ १६ ॥

बहुरि संसार वनमैं दर्शनज्ञान चारित्रके त्रितयकों जैसैं समुद्र विषैं पड्या रत्न फेर दुर्लभ है तैसैं मानै है ॥ १७ ॥

बहुरि मेघनके समूह विषैं मयूरनके हर्ष होय तथा विछुरे पुरुषकै बांधव विषैं हर्ष होय तथा प्यासकरि पीडित पुरुषकै जल विषैं हर्ष होय वा बंधेकै छूटने विषैं हर्ष होय ॥ १८ ॥

वा रोग सहितकै नीरोगपनेमैं हर्ष होय अन्धेकै नेत्र विषैं हर्ष होय तैसैं जाकै जिनेन्द्रके मुख देखने विषैं हर्ष होय है ॥ १९ ॥

बहुरि क्षुधादि परीषहनिका सहनेवाला होय शांत होय जिनसूत्र विषैं प्रवीण होय सम्यग्दृष्टि होय मानरहित होय गुरुभक्त होय प्रिय बोलनेवाला होय ॥ २० ॥

सो यहु धीर पुरुष सर्व कर्मका नाश करनेवाला जो यहु आवश्यक ताहि करने योग्य है, और पुरुषकैं आवश्यक करनेकी योग्यता नाहीं; ऐसा जानना ॥ २१ ॥

आगैं फेर कहैं हैं;—

औचित्यवेदकः श्राद्धो, विधान करणोद्यतः ।
कर्मनिर्जरणाकांक्षी, स्ववशीकृतमानसः ॥ २२ ॥
भक्तिको बुद्धिमानर्थी, बहुमानपरायणः ।
पठन श्रवणे योग्यो, विनयोद्यमभूषितः ॥ २३ ॥

अर्थ—उचितपनेका जाननेवाला होय।

भावार्थ—यह कालादिक आवश्यकके उचित है ऐसा जाकै ज्ञान होय, बहुरि श्रद्धावान होय, अर आवश्यकके विधान करनेमैं उद्यमी होय, अर कर्मकी निर्जराका वांछक होय, अर अपने वश किया है मन जानैं ऐसा होय ॥ २२ ॥

बहुरि भक्तिमान् होय, बुद्धिमान होय, धर्मार्थी होय महाविनयमैं तत्पर होय, अर पढ़ने विषैं सुनने विषैं योग्य होय, अर विनय सहित आवश्यकके उद्यम करि भूषित होय ॥ २३ ॥

आगैं फेर कहैं हैं;—

गुणाय जायते शांते, जिनेन्द्रवचनामृतम्।
उपशांतज्वरे पूतं, भैषज्यमिव योजितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—राग द्वेषकी मंदतातैं शांतभया जो पुरुष ताविषैं जिनेन्द्रका वचनामृत गुणके अर्थ होय है, जैसैं उपशांत भया है ज्वर जाका ऐसा पुरुष विषैं योजित किया औषध जैसे गुणकै अर्थ होय तैसैं ॥ २४ ॥

अयोग्यस्य वचो जैनं, जायतेऽनर्थहेतवे।
यतस्ततः प्रयत्नेन मृग्यो योग्यो मनीषिभिः ॥ २५ ॥

अर्थ—जातैं अयोग्य पुरुषकै जिनेन्द्रका वचन अनर्थ निमित्त होय है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जिन वचनका प्रयोजन न जानि उलटा एकांत पकड़ि अपना बिगाड़ करै है, तातैं पंडितनि करि यत्नसहित योग्य पुरुष हेरना योग्य है ॥ २५ ॥

कषायाकुलिते व्यर्थं, जायते जिनशासनम्।
सन्निपातज्वरालीढे, दत्तं पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

अर्थ—कषाय करि आकुलित पुरुष विषै जिनशासन निरर्थक

होय है, जैसें संनिपात ज्वरसहित पुरुष विषैं दिया हितरूप औषध व्यर्थ होय तैसे ।

भावार्थ—तीव्र कषायीकौं जिन वचन न रुचै है, ऐसा जानना ॥ २६ ॥

आगैं आवश्यक करनेवाले चिह्न कहैं हैं:—

सत्कथा श्रवणानन्दो, निंदाश्रवणवर्जनम् ।
अलुब्धत्वमनालस्यं, निंद्यकर्मव्यपोहनम् ॥ २७ ॥
कालक्रम व्युदासित्वमुपशांतत्वमार्दवम् ।
विज्ञेयानीति चिह्नानि, षडावश्यककारिणः ॥ २८ ॥

अर्थ—भली कथाके सुननेमैं तौ आनंद, अर परनिंदाके सुननेका त्याग, अर निर्लोभपना, अर आलस्य रहितपना, अर निंद्य कर्मका त्याग ॥ २७ ॥

अर कालके उलंघनेका त्यागीपना, अर मान रहितपना, इत्यादिक चिह्न हैं ते षट् आवश्यकका करनेवाला जो पुरुष ताके जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥

आगैं छह आवश्यकके नाम कहैं हैं:—

सामायिकं स्तवः प्राज्ञैर्वन्दना सप्रतिक्रमा ।
प्रत्याख्यानं तनूत्सर्गः, षोढावश्यकमीरितम् ॥ २९ ॥

अर्थ—सामायिक १, स्तवन १, वन्दना १, प्रतिक्रमण १, प्रत्याख्यान १, कायोत्सर्ग १ ऐसैं छह प्रकार आवश्यक पंडितनि करि कह्या है ॥ २९ ॥

द्रव्यतः क्षेत्रतः सम्यक्कालतो भावतो बुधैः ।
नामतो स्थापनातो ज्ञात्वा, प्रत्येकं तन्नियुज्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—द्रव्यतैं, क्षेत्रतैं, कालतैं, भावतैं, नामतैं, स्थापनातैं, भलेप्रकार जानकर सो आवश्यक एक-एक प्रति लगाइए है ।

भावार्थ—सामायिकादि छहौं क्रियानमैं नामादिक छह छह लगाइए है, जैसैं—द्रव्यसामायिक, क्षेत्रसामायिक, कालसामायिक, भावसामायिक, नामसामायिक, स्थापनासामायिक। ऐसैं ही स्तवादि विषैं लगाय लेना ॥ ३० ॥

आगें सामायिकका स्वरूप कहैं हैं:—

जीविते मरणे योगे, वियोगे विप्रिये प्रिये ।
शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे, साम्यं सामायिकं विदुः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जीवनेमैं अर मरनेमैं, संयोगमैं अर वियोगमैं, अप्रियमैं अर प्रियमैं, शत्रुमैं अर मित्रमैं, सुखमैं अर दुःखमैं, समभावकौं सामायिक कहैं हैं।

भावार्थ—सर्व ही जीवना मरणा आदिको ज्ञेयपने करि समान जान करि रागद्वेष न करना सो सामायिक कहिए ॥ ३१ ॥

आगैं स्तवका स्वरूप कहैं हैं;—

जिनानां जितजेयाना, मनंतगुणभागिनाम् ।
स्तवोऽस्तावि गुणस्तोत्रं, नामनिर्वचनं तथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—जीते हैं जितने योग्य कर्म जिननैं ऐसे जे जिन अर्हन्त तिनका जो गुणनिका स्तोत्र तथा नामकी निरुक्ति करना सो स्तव कह्या है, कैसे हैं जिन अनन्त गुणके भजनेवाले ऐसे हैं।

भावार्थ—जिनदेवके अनंतज्ञानादि गुणनिका स्तोत्र पढ़ना "तथा कर्म वैरीनिकौं जीतै सो जिन" इत्यादि नामनिकी निरुक्ति करना सो स्तव कहिए ॥ ३२ ॥

आगैं वन्दनाका स्वरूप कहैं हैं—

कर्मारण्यहुताशानां, पंचानां परमेष्ठिनाम् ।
प्रणतिर्वन्दनाऽवादि, त्रिशुद्धया त्रिविधा बुधैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—कर्मवनकौं अग्नि समान जे पंचपरमेष्ठी तिनकौं नमस्कार करना सो मन, वचन, कायकी शुद्धि ताकरि तीन प्रकार वन्दना पंडितनि करि कही।

भावार्थ—पंचपरमेष्ठीकौं प्रणाम करना सो वन्दना कहिए॥३३॥

आगैं प्रतिक्रमणका स्वरूप कहैं हैं—

द्रव्यक्षेत्रादिसम्पन्नदोषजालविशोधनम्।
निंदागर्हाक्रियालीढं, प्रतिक्रमणमुच्यते॥ ३४॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र आदि शब्दतैं काल अर भाव इन विषैं लगे जे दोष तिनके समूहका विशेष शोधना निन्दा गर्हादि क्रिया सहित सो प्रतिक्रमण कहिए है।

भावार्थ— निंदा गर्हासहित लगे दोषनकौं याद करि निराकरण करन सो प्रतिक्रमण करना सो प्रतिक्रमण कहिए॥ ३४॥

आगैं प्रत्याख्यानका स्वरूप कहैं हैं—

नामादीनामयोग्यानां, षण्णां त्रेधा विवर्जनम्।
प्रत्याख्यानं समाख्यातमागम्यागोनिषिद्धये॥ ३५॥

अर्थ—अयोग्य जे नामादिक कहिए नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव छहौंनकौं आगामी पापके निषेधके अर्थ मन, वचन, काय करि त्याग करना सो प्रत्याख्यान कह्या है।

भावार्थ—आगामी पापका त्याग करनेकै अर्थि अयोग्य द्रव्यादिका त्याग करना सो प्रत्याख्यान कहिए॥ ३५॥

आगैं कायोत्सर्गकौं कहैं हैं—

आवश्यकेषु सर्वेषु, यथाकालमनाकुलः।
कायोत्सर्गस्तनूत्सर्गः, प्रशस्तध्यानवर्द्धकः॥ ३६॥

अर्थ—सर्व आवश्यक क्रियाव विषैं जिस काल चाहिए तिस ही

काल आकुलता रहित शरीर विषैं ममत्वका त्याग सो प्रशस्त ध्यानका बढ़ावनेवाला कायोत्सर्ग है ।

भावार्थ—सामायिकादि क्रियानि विषैं यथाकाल शरीरसैं ममत्व त्यागना सो कायोत्सर्ग कहिए ॥ ३६ ॥

आगैं आवश्यक क्रियानिमैं आसनादिकका विधान कहैं हैं—

ज्ञेयस्तत्रासनं स्थानं, कालो मुद्रा तनूत्सृतिः ।
नामावर्त्तप्रमा दोषा, षडावश्यककारिभिः ॥ ३७ ॥

अर्थ—छह आवश्यक करनेवाले पुरुषनि करि तहां आसन १ स्थान, १ काल, १ मुद्रा, १ कायोत्सर्ग, १ प्रणाम, १ आवर्त्त, १ प्रमाण दोष इतनी वस्तुका जानना योग्य है ॥ ३७ ॥

आगैं आसनका वर्णन करैं हैं;—

आस्यते स्थीयते यत्र, येन वा वंदनोद्यतैः ।
तदासनं विबोद्धव्यं, देशपद्मासनादिकम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—वन्दना करनेमैं उद्यमी जे पुरुष तिनकरि जाविषैं वा जाकरि आस्यते कहिये स्थिररूप हूजिए सो देश कहिए क्षेत्र अर पद्मासनादिक आसन जानने योग्य हैं। ऐसे आसन शब्दकी निरुक्ति करी ॥ ३८ ॥

आगैं आवश्यक करनेके अयोग्य क्षेत्रनिकौं कहै हैं:—

संसक्तः प्रचुरच्छिद्रस्तृणपांश्वादिदूषितः ।
विक्षोभको हृषीकाणां, रूपगन्धरसादिभिः ॥ ३९ ॥
परीषहकरो दंशशीतवातातपादिभिः ।
असंबद्धजनालापः सावद्यारम्भगर्हितः ॥ ४० ॥
आर्द्रीभूतो मनोऽनिष्टः समाधाननिषूदकः ।
योऽशिष्ट जनसंचारः प्रदेशं तं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ—संसक्त कहिये स्त्रीपुरुष नपुंसकादिकनिकी भीड़ जहां होय। बहुरि बहुत छिद्रनकरि युक्त होय, अर तृण धूलि आदि करि दूषित होय, बहुरि रूप गन्धरस इत्यादिकनि करि इन्द्रियनिकों विशेष क्षोभ करनेवाला होय ।. ३८ ।। बहुरि शीत वात दंश आताप आदि करि परीषहका करनेवाला होय, बहुरि असंबद्ध कहिए सम्बन्धरहित नि:प्रयोजन मनुष्यनिका जहां वचनालाप होय, बहुरि पापसहित आरम्भ करि निंदित होय ।। ४० ।। चालो होय, मनकों अनिष्ट होय, समाधानका नाश करनेवाला होय, अर नीच लोकका जहां संचार होय ऐसा होय ता क्षेत्रकों त्यागैं ।। ४१ ।।

भावार्थ—आवश्यक करनेवाला पूर्वोक्त क्षेत्रकों चित्तकों क्षोभकारी जानि परित्याग करै ।।

आगैं आवश्यक योग्य स्थानकों कहै हैं—

> विविक्तः प्रासुकः सेव्यः, समाधानविवर्द्धकः ।
> देवर्जुदृष्टिसंपातवर्जितो, देवदक्षिणः ।। ४२ ।।
> जनसंचारनिर्मुक्तो, ग्राह्यो देशो निराकुलः ।
> नासन्नो नातिदूरस्थः, सर्वोपद्रववर्जितः ।। ४३ ।।

अर्थ—एकांत होय, अर प्रासुक होय, सेव्य कहिए व्रतीनके सेवने योग्य होय, अर समाधानका बढ़ावनेवाला होय, अर देव कहिए जिन चैत्यादिक तिनकी सूधी दृष्टिके पड़नेकरि रहित होय।

भावार्थ—प्रतिमादिकके सन्मुख न होय, अर जिन चैत्यादिकके दाहना होय ।। ४२ ।। अर मनुष्यनिके आने जानेकरि रहित होय अर न अति निकट न अति दूर होय, सर्व उपद्रव करि वर्जित होय, ऐसा निराकुल क्षेत्र ग्रहण करना योग्य है।

भावार्थ—ऐसे क्षेत्रमैं सामायिक करै ।। ४३ ।।

आगें जापें बैठे ताका स्वरूप कहै हैं—

स्थेयोऽच्छिद्रं सुखस्पर्शं, विशब्दकमजन्तुकम् ।
तृणकाष्ठादिकं ग्राह्यं विनयस्योपबृंहकम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—थिर होय, छिद्र रहित होय, सुखरूप होय स्पर्श जाका ऐसा होय, शब्द रहित होय, जीवरहित होय, वैराग्यका बढ़ावनेवाला होय, ऐसा तृणकाष्ठादिकका आसन ग्रहण करना योग्य है ॥ ४४ ॥

आगें आसनका स्वरूप कहैं हैं—

जंघाया जंघयाश्लेषे, समभागे प्रकीर्तितम् ।
पद्मासनं सुखाधायि, सुसाध्यं सकलैर्जनैः ॥ ४५ ॥

अर्थ—समभाग विषैं जंघाकरि जंघाका आश्लेष कहिए गाढा चिपटना होय सो सुखका आधार समस्त जननि करि सुखतें साधने योग्य सो पद्मासन कह्या है ॥ ४५ ॥

बुधैरुपर्यधोभागे, जंघयोरुभयोरपि ।
समस्तयोः कृते ज्ञेयं पर्यंकासनमासनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—सर्व दोऊ जंघानको ऊपर अर अधोभागमैं करे संते पंडितजननिकरि पर्यंकासन नामका आसन जानने योग्य है ॥४६॥

ऊर्वोरुपरि निक्षेपे, पादयोर्विहिते सति ।
वीरासनं चिरं कर्त्तुं शक्यं वीरैर्न कातरैः ॥ ४७ ॥

अर्थ—दोऊ चरणनिकौं ऊरू कहिए जांघ ऊपरि धरे संते वीरासन आसन होय है। या वीरासनकौं बहुत काल तांई वीर पुरुष ही करनेकौं समर्थ हैं, कायर समर्थ नहीं है; ऐसा जानना ॥ ४७ ॥

युतपार्ष्णिभवे योगे, स्मृतमुत्कुटुकासनम् ।
गवासनं जिनैरुक्तमार्याणां यतिवंदने ॥ ४८ ॥

अर्थ—दोऊ एडीनके योगमैं उत्कुटकासन जानना। बहुरि आर्यिका जब मुनिनकौं वन्दना करै है तब जिनभगवान करि गवासन नामका आसन कह्या है ॥ ४८ ॥

विनयासक्तचित्तानां, कृतिकर्मविधायिनाम् ।
न कार्यव्यतिरेकेण, परमासनमिष्यते ॥ ४९ ॥

अर्थ—विनयविषैं आसक्त चित्त जिनका ऐसे जे कृतिकर्म करनेवाले पुरुष तिनको कार्य विना और आसन न कहिए है ।

भावार्थ—पद्मासन और कायोत्सर्ग इन आसननि विना और आसन किछू कार्य विशेष होय तौ करै, कार्य विना दोय ही आसन करना जोग्य है, ऐसा मानना ॥ ४९ ॥

ऐसैं आसनका वर्णन किया । आगैं स्थानका स्वरूप कहै हैं:—

स्थीयते येन तत् स्थानं, द्विःप्रकारमुदाहृतम् ।
वन्दना क्रियते यस्मादूर्ध्वीभूयोपविश्य वा ॥ ५० ॥

अर्थ—जा करि स्थिर हूजिए सो स्थान दोय प्रकार कह्या है तातैं वन्दना है, सो खड़े रहकरि वा बैठकरि करिये है ।

भावार्थ—खड़े रहना वा बैठना ऐसा दोय प्रकार स्थान जानना ॥ ५० ॥

आगैं कालका स्वरूप कहै हैं—

घटिकानां मतं षट्कं, संध्यानां त्रितये जिनैः ।
कार्यस्यापेक्षया कालः, पुनरन्यो निगद्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—संध्यानिका कालत्रय कहिए प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल इन तीनों संध्यानविषै छह घड़ी काल जिनदेवनिनैं आवश्यकका कहिए है । बहुरि कार्यकी अपेक्षा करि और कहिए है ।

भावार्थ—मुख्य काल तौ छह घड़ी ही काल कह्या है, बहुरि कार्यकी अपेक्षा करि दोय घड़ी आदि भी कह्या है ॥ ५१ ॥

आगैं मुद्राका स्वरूप कहै हैं—

जिनेन्द्रवन्दनायोगमुक्ताशुक्तिविभेदतः ।
चतुर्विधोदिता मुद्रा, मुद्रामार्गविशारदैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रमुद्रा १ वन्दना मुद्रा १ योगमुद्रा १ मुक्ताशुक्तिमुद्रा १ इन भेदनिकरि मुद्राके मार्गविषैं प्रवीण जे पुरुष तिन करि च्यार प्रकार मुद्रा कही है ॥ ५२ ॥

आगैं जिनमुद्राका स्वरूप कहै हैं—

जिनमुद्रांतरं कृत्वा, पादयोश्चतुरंगुलम्।
ऊर्द्धजानोरवस्थानं, प्रलंवितभुजद्वयम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—दोऊ पादनका चार अंगुल अन्तर करिकै घुटनेके ऊपर स्थित ऐसी लम्बायमान दोऊ भुजा जानै सो जिनमुद्रा जानना ॥५३॥

आगैं वन्दना मुद्राका स्वरूप कहै हैं—

मुकुलीभूतमाधाय, जठरोपरि कर्पूरम्।
स्थितस्य वन्दना मुद्रा, करद्वन्द्वं निवेदितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—मुकुलीभूत कहिए कमलकी डोडा समान अर पेटके ऊपर है कुटनी जाविषैं, ऐसैं विनती करनेवाला हस्त युगलकौं धारिकै तिष्ठया जो पुरुष ताकै वन्दना मुद्रा कही है ॥ ५४ ॥

आगैं योग मुद्राका स्वरूप कहैं हैं—

जिनाः पद्मासनादीनामंकमध्ये निवेशनम्।
उत्तानकरयुग्मस्य, योगमुद्रां बभाषिरे ॥ ५५ ॥

अर्थ—ऊँचा है हथेलीनका मुख जाका ऐसा हस्त युगलकौं पद्मासनादिकनिकी ओलीके मध्य विषैं जो धारना ताहि जिन जे अर्हंतादिक ते योगमुद्रा कहैं हैं ॥ ५५ ॥

आगैं मुक्ताशुक्तिमुद्राका स्वरूप कहैं हैं—

मुक्ताशुक्तिर्मता मुद्रा, जठरोपरि कूर्परम्।
ऊर्द्धजानोः कर द्वंद्वं, संलग्नांगुलि सूरिभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पेटके ऊपर है कूर्पर कहिए कुहनी जाविषैं अर घुटनेनके

ऊपर हैं हस्त युगल जाके अर भले प्रकार लग रही है अंगुली जाकी सो मुक्तामुक्तिमुद्रा आचार्यनि करि कही है ॥ ५६ ॥

आगैं कायोत्सर्गका स्वरूप कहैं हैं—

त्यागो देहममत्वस्य, तनूत्सृतिरुदाहृता ।
उपविष्टोपविष्टादिविभेदन चतुर्विधा ॥ ५७ ॥

अर्थ—शरीरके ममत्वका जो त्याग सो कायोत्सर्ग उपविष्टोपविष्टादि भेद करि च्यार प्रकार कह्या है ॥ ५७ ॥

तहाँ प्रथम उपविष्टोपविष्ट कायोत्सर्गकौं कहैं हैं—

आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिन्त्यते ।
उपविष्टोपविष्टाख्या, कथ्यते सा तनूत्सृतिः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जाविषैं आर्त्त रौद्रध्यान दोनौं बैठ करि चिंतिए सो उपविष्टोपविष्ट नामा कायोत्सर्ग कहिए है ।

भावार्थ—जामैं जीवके परिणाम वा शरीर दोनौं पड़ते हैं तातैं उपविष्टोपविष्ट कह्या है ॥ ५८ ॥

आगैं उपविष्टोत्थित कायोत्सर्गकौं कहैं हैं—

धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिन्त्यते ।
उपविष्टोत्थितां संतस्तां, वदन्ति तनूत्सृतिम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जाविषैं धर्म अर शुक्ल दोनौं बैठ करि चिंतिए ताहि सन्त जन उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग कहैं हैं ।

भावार्थ—इसमैं शरीर तो बैठा है अर परिणाम चढतैं हैं, तातैं उपविष्टोत्थित कह्या है ॥ ५९ ॥

आगैं उत्थितोपविष्ट कायोत्सर्ग कहैं हैं—

आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते ।
तामुत्थितोपविष्टाह्वां, निगदंति महाधियः ॥ ६० ॥

अर्थ—जाविषैं आर्त्तरौद्र ध्यान ठाढे होय करि करिए ताकूं महाबुद्धि पुरुष उत्थितोपविष्ट नाम कायोत्सर्ग कहैं हैं—

भावार्थ—जा विषैं परिणाम तो पड़ते हैं अर शरीर खड़ा है, तातैं उत्थितोपविष्ट कह्या है ॥ ६० ॥

आगैं उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहैं हैं—

धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते ।
उत्थितोत्थितनामानं, तं भाषंते विपश्चितः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जा विषैं धर्म शुक्ल दोनों ध्यान ठाढे होय करि करिए ताकौं उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहैं हैं—

भावार्थ—जा विषैं परिणाम चढत हैं अर शरीर भी खडा है तातैं उत्थितोत्थित कह्या है, ऐसा जानना ॥ ६१ ॥

एकद्वित्रिचतुः पंचदेहांशप्रतेर्मतः ।
प्रणामः पंचधा देवैः, पादानतनरामरैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—एक दोय तीन च्यार पांच जे शरीरके अंग तिनके नमनतैं पांच प्रकार प्रणाम जिनदेवनिनैं कह्या है, जिनदेव कैसे हैं जिनके चरननकौं सर्व तरफतैं देव अर मनुष्य नमैं है ॥ ६२ ॥

एकांगः शिरसो नामे, द्व्यंगः करयोर्द्वयोः ।
त्रयाणां मूर्द्धहस्तानां, त्र्यंगो नमने मतः ॥ ६३ ॥
चतुर्णां करजानूनां. नमने चतुरंगकः ।
करमस्तकजानूनां पंचाग: पंचक्ष नते ॥ ६४ ॥

अर्थ—एक मस्तकहीके नमावने विषैं एकांग नमस्कार कहिए अर दोऊ हाथनके नमावनेमैं द्व्यंग कहिए दोय अंगनि करि नमस्कार कहिए, अर मस्तक अर दोय हाथके नमावनमैं त्र्यंग कहिए तीन अंग करि नमस्कार कह्या है ॥ ६३ ॥ अर दोय हाथ अर दोय घुटने

इन च्यारों नमनमैं च्यार अंगनिकरि नमस्कार कह्या है, अर दोय हाथ अर एक मस्तक अर दोय घूंटे इन पांचनकौं नमाये संते पंचांग नमस्कार है । ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

आगैं आवर्त्तकका स्वरूप कहैं हैं—

कथिता द्वादशावर्त्ता, वपुर्वचनचेतसाम् ।
स्तवसामायिकाद्यंतपरावर्त्तनलक्षणाः ॥ ६५ ॥

अर्थ—शरीर वचन चित्त इनका स्तवन अर सामायिकके आदि अंतमैं आवर्त्तन कहिए फेरना है लक्षण जिनका ऐसे बारह आवर्त्त कहे हैं ।

भावार्थ—सामायिकादिकके आदि अंतमैं मन वचन कायके योगकौं हाथ जोडिकै तीन बार भक्ति सहित पलटना तब एक बार मस्तक नमावना, ऐसैं च्यार बार मस्तक नमावनेमैं बारह आवर्त्त जानना ॥ ६५ ॥

आगैं कायोत्सर्गकी संख्या कहैं हैं—

अष्टविंशतिसंख्यानाः, कायोत्सर्गा मता जिनैः ।
अहोरात्रगताः सर्वे, षडावश्यककारिणाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—छह आवश्यक करनेवालेनके रात्रिदिन विषैं सर्व अठ्ठाईस कायोत्सर्ग जिनदेवनैं कहे हैं ॥ ६६ ॥

आगैं ते अठ्ठाईस कायोत्सर्ग कहां कहां होय हैं तिनका स्वरूप कहैं हैं—

स्वाध्याये द्वादश प्राज्ञैर्वंदनायां षडीरिताः ।
अष्टौ प्रतिक्रमे योगभक्तौ तौ द्वावुदाहृतौ ॥ ६७ ॥

अर्थ—पंडितनिनैं स्वाध्याय विषैं बारह कायोत्सर्ग कहे हैं, अर वंदनामैं छह कहे हैं अर प्रतिक्रमण विषैं आठ कहे हैं अर

योगभक्ति विषैं ते दोय कायोत्सर्ग कहे हैं। ऐसैं सर्व अठाईस कायोत्सर्ग करनेका अवसर जानना ॥ ६७ ॥

आगैं कौन कायोत्सर्ग कितने उच्छ्वास ताईं करना ताका प्रमाण कहैं हैं—

अष्टोत्तरशतोच्छ्वासः, कायोत्सर्गः प्रतिक्रमे।
सांध्ये प्राभातिके वार्द्धमन्यस्तत्सप्तविंशतिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—एकसौ आठ उछ्वासमात्र कायोत्सर्ग संध्या सम्बन्धी प्रतिक्रमणमैं कह्या है, अर प्रभात सम्बन्धी प्रतिक्रमणमें अर्द्ध कहिए चौवन उच्छ्वास मात्र कायोत्सर्ग कह्या है, बहुरि और कायोत्सर्ग सत्ताईस उछ्वास मात्र कह्या है ॥ ६८ ॥

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः, संसारोन्मूलनक्षमे।
संति पंचनमस्कारे, नवधा चिंतिते सति ॥ ६९ ॥

अर्थ—संसारके नाश करनेमैं समर्थ जो पंचनमस्कार मंत्र ताका नव प्रकार चिंतवन करे संते सत्ताईस उच्छ्वास होय है।

भावार्थ—एक णमोकार मंत्रका जाप तीन उच्छ्वासमैं करे ऐसैं नव णमोकार जापमैं सत्ताईस उच्छ्वास जानना ॥ ६९ ॥

प्रतिक्रमद्वयं प्राज्ञैः, स्वाध्यायानां चतुष्टयम्।
वन्दना त्रितयं योगभक्तिद्वितयमिष्यते ॥ ७० ॥

अर्थ—प्रतिक्रमण दोय, स्वाध्याय च्यार, वन्दना तीन, योग-भक्ति दोय पंडितनि करि कहिए है ॥ ७० ॥

उत्कृष्टश्रावकेणैते विधातव्याः प्रयत्नतः।
अन्यैरेते यथाशक्ति संसारांते यियासुभिः ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे प्रतिक्रमणादि पूर्वैं कहे ते उत्कृष्ट श्रावक करि भले

प्रकार जतनतैं करना योग्य है, बहुरि और जे संसारके पार जानेके इच्छुक हैं तिन करि प्रतिक्रमणादिक जैसी शक्ति होय तैसें करना योग्य है ॥ ७१ ॥

इच्छाकारं समाचारं, संयमासंयमस्थितिः।
विशुद्धवृत्तिभिः सार्द्धं, विदधाति प्रियंवदाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—संयमासंयम विषैं है स्थिति जाकी, भावार्थ—एक ही समय त्रसहिंसाका त्यागी अर स्थावर हिंसाका त्यागी ऐसा देशव्रती, प्रिय वचनका बोलनेवाला, सो निर्मल है प्रवृत्ति जिनकी ऐसे जे आचार्यादिक तिनकै साथ इच्छाकार नामा समाचारकौं करै है।

भावार्थ—श्रावक है सो आचार्यदिकके उपदेशमें इच्छा करै है, कहै है कि हे भगवन्! आप कह्या सो मैं इच्छूं हूँ। ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

वैराग्यस्य परां भूमिं, संयमस्य निकेतनम्।
उत्कृष्टः कारयत्येष, मुंडनं तुंडमुंडयोः ॥ ७३ ॥

अर्थ—उत्कृष्ट श्रावक है सो वैराग्यकी परम भूमिका अर संयमका ठिकाना ऐसा, तुंड कहिये मुख डाढ़ी मूंछका अर मुंड कहिए मूंडके बालका मुंडन जो मूडना ताहि करावै ही है।

भावार्थ—ग्यारह प्रतिमाका धारी उत्कृष्ट श्रावक डाढ़ी मूछके बाल कतरावे है, ऐसा जानना ॥ ७३ ॥

केवलं वा सवस्त्रं वा, कौपीनं स्वीकरोत्यसौ।
एकस्थानान्नपानीयो, निंदगर्हापरायणः ॥ ७४ ॥

अर्थ—यहु उत्कृष्ट श्रावक है सो केवल कौपीन वा वस्त्रसहित कौपीनकौं अंगीकार करै है, कैसा है यहु एक स्थान विषै ही है अन्न-पानीका लेना जाकै अर आपकी निंदा अर गर्हा विषैं तत्पर है ॥७४॥

स धर्मलाभशब्देन, प्रतिवेश्म सुधोपमम् ।
सपात्रो याचते भिक्षां, जरामरणसूदनीम् ॥ ७५ ॥

अर्थ—सो श्रावक पात्रसहित घर घर प्रति अमृत समान धर्म-लाभ शब्द करि जरा मरणकी नाश करनेवाली भिक्षाकौं याचै है, ऐसा जाना ॥ ७५ ॥

आगैं वन्दनाके बत्तीस दोषनिका वर्णन करैं हैं:—

समस्तादरनिर्मुक्तो, मदाष्टकवशीकृतः । प्रतीक्ष्य पीडताकारी, कूर्चमूर्द्धजकुंचकः ॥ ७६ ॥ चलयन्निखिलं कायं, दोलारूढ इवाभितः । अग्रतः पार्श्वतः पश्चाद्रिंषन् कूर्म इवाभितः ॥७७॥ करटी वांकुशारूढः कुर्वन् मूर्द्धनतोन्नती । क्षिप्रं मत्स्य इवोत्प्लुत्य परेषां निपतन् पुरः ॥७८॥ कुर्वन् वक्षोभुजद्वंद्वं, विश्लर्षी द्राविडीमिव । पूज्यात्मासादनाकारी, गुर्वादिजनभीषितः ॥ ७९ ॥ भयसप्तकवित्रस्तः, परिवारर्द्धिगर्वितः । समाजतो बहिर्भूय किंचिल्लज्जाकुलाशयः ॥८०॥ प्रतिकूलो गुरोर्भूत्वा, कुर्वाणो जल्पनादिकम् । कस्यचिदुपरि क्रुद्धस्तस्याकृत्वा क्षमा त्रिधा ॥८१॥ ज्ञास्यते वंदना कृत्वा भ्रमयंस्तजनामिति । हसनोद्वदने कुर्वन्, भृकुटी कुटिलालकः ॥८२॥ निकटीभूय गुर्वादे, राचार्यादिभिरीक्षितः । करदानं गणेर्मत्वा, कृत्वा दृष्टिपथं गुरोः ॥ ८३ ॥ लब्ध्वोपकरणादीनि, तेषां लाभाशयापि च । असंपूर्णविधानेन, सूत्रा-दितपिधायकम् ॥ ८४ ॥ कुर्वन् मूक इवात्यर्थं, हुँकारादि पुरः सरः । वंदारूणां स्वशब्देन परेषां छादयन् ध्वनिम् ॥ ८५ ॥ गुर्वादेरग्रतो भूत्वा, मूर्द्धोपरिक्रमभ्रमी । द्वात्रिंशदिति मोक्तव्या दोषा वंदन-कारिणाम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—समस्त आदर रहित क्रियाकर्म करना सो अनादृत दोष है । १–बहुरि जात्यादि अष्टमदके वशीभूत भया वंदना करै सो स्तब्ध

दोष है, २–बहुरि प्रतीक्ष्य कहिए देखकरि अंगनकौं पीडै दावै सो पीडित दोष है, ३–बहुरि डाढ़ीके वा मूंछके सिरके बालनकौं मरोडै सो कुंचित दोष है, ४–बहुरि डोलामैं बैठेकी ज्यौं समस्त शरीर चलावतासंता वंदना करै सो दोलायित दोष है, ५–बहुरि आगेतैं पसवाडेतैं पंछेतैं कछवेकी ज्यौं तरफसैं चेष्टा करै अंग संकोचै वा विस्तारै सो कच्छपैंगित दोष है, ६–बहुरि हाथके अगूठाकौं मस्तक विषैं अंकुशकी ज्यौं लगाय करकै बाकी ज्यौं मस्तककौं नीचा ऊँचा करै सो अंकुशित दोष है, ७–बहुरि मच्छकी ज्यौं उछलकरि औरनके आगै पडै वा मछलीकी ज्यौं तडफडावै सो मत्स्योद्वर्त्त दोष है, ८–बहुरि द्रविड देशके पुरुषकी विनती समान वक्षस्थलपैं दोऊ हाथ करकै वंदना करै सो द्राविडी विज्ञप्ति दोष है तथा याहीका नाम वेदिकाबद्ध दोष है, ९–बहुरि आचार्यादिक पूज्य पुरुषनकी विराधना करता वंदना करै सो आसादना दोष है, १०–बहुरि गुरु आदिकके

भयत वंदना करै सो विभीत दोष है, ११–बहुरि जो मरणादिक सात भयकरि भयभीत भया वंदना करै सो भय दोष है, १२–बहुरि परिवारऋद्धि करि गर्वित भया संता वंदना करै सो ऋद्धिगौरव दोष है, १३–बहुरि साधर्मीनके समाजतैं बाहिर होय करि मानौं लज्जातैं किंचित् आकुल भया वंदना करै सो लज्जित दोष है, १४–बहुरि गुरुकै प्रतिकूल होय करि वंदना करै सो प्रतिकूल दोष है, १५–बहुरि वचनालाप आदि करता संता वंदना करै सो शब्ददोष है, १६–बहुरि काहूकै ऊपर क्रोधरूप भया तामैं मन वचन काय करि क्षमा न करायकै वंदना करै सो प्रदुष्ट दोष है, १७–बहुरि कोई जाणैगा ऐसैं वंदना करि अंगुलीकौं भमावै सो मनो दुष्ट दोष है, १८–बहुरि हंसना अर अंग घिसना इनकौं करता संता वन्दना करै सो हंसनोद्घट्टन दोष

है, १९—बहुरि भौंह टेडी करि वन्दना करे सो भ्रूकुटीकुटिल दोष है, २०—बहुरि गुरु आदिकनिके अतिनिकट होय करि वंदना करे सो प्रविष्ट दोष है, २१—बहुरि आचार्यादिकनि करि देख्या संता वन्दना करै,—

भावार्थ—आचार्यादिकनिकै आगैं तौ भले प्रकार करे अन्यथा यद्वा तद्वा करे सो दृष्टदोष है, २२—संघविषैं करदान मानकरि वन्दना करे, संघके खुशी रहनेके अर्थ वा संघतें भक्त्यादिककी वांछा करि वन्दना करे सो करमोचन दोष है, २३—बहुरि गुरुनकी आंख्यां छिपाय वन्दना करै सो अदृष्ट दोष है, २४—बहुरि उपकरणादि पाय करि वन्दना करै सो आलब्ध दोष है, २५—बहुरि तिन उपकरणादिकनके मिलनेके वांछा करि वन्दना करै सो अनालब्ध दोष है, २६—बहुरि असम्पूर्ण विधान करि कहिए काल शब्द अर्थ इत्यादिक करि हीन वन्दना करै सो हीन दोष है, २७—बहुरि सूत्रके अर्थकौं ढांक करि वन्दना करै सो पिधायिक दोष है, २८—बहुरि गूंगेकी ज्यौं अतिशय करि हुंकारादि करता वन्दना करै सो मूक दोष है, २९—बहुरि और वन्दना करनेवालेनके शब्दनकौं ढांपक वन्दना करै, सो दर्दुर दोष है, ३०—बहुरि गुरु आदिकनिकै आगैं होय करि वन्दना करै सो अग्र दोष है, ३१—बहुरि अन्तमैं वन्दनाकी चूलिकामैं क्रम भूलि जलदी करै।

भावार्थ—जब वन्दना थोड़ीसी बाकी रहै तब जलदी जलदी करै क्रम भूलि जाय सो उत्तर चूलिक दोष है, ३२—या प्रकार बत्तीस दोष वंदना करनेवालेनकौं त्यागने योग्य हैं ॥ ६८ ॥

क्रियमाणा प्रयत्नेन, क्षिप्रं कुभिरिवेप्सितम्।
निराकृतमला दत्ते, वन्दना फलमुल्बणम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—दूर करे हैं मल जाके ऐसी यत्नतैं करि भई जो वन्दना सो वांछित महाफलकों देय है, जैसैं दूर करे हैं तृण कण्टकादि मल जाके ऐसी यत्न करि करी भई खेती महाफल देय तैसैं, ऐसा जानना ॥ ८७ ॥

आगैं कायोत्सर्गके बत्तीस दोष कहैं हैं—

स्तब्धाकृतैकपादस्य, स्थानमश्वपतेरिव। चलनं वातधूताया, लताया इव सर्वतः ॥८८॥ श्रयणं स्तंभकुड्यादेः, पट्टकाद्युपरिस्थितिः। उपरि मालमालंब्य, शिरसावस्थितिः कृता ॥ ८९ ॥ निगडेनेव बद्धस्य, विकटांघ्रिस्थिति। कराभ्यां जघनाच्छादः, किरातयुवतेरिव ॥९०॥ शिरसो नमनं कृत्वा, विधायोन्नमनस्थितिः। उन्नमय्य स्थितिर्वक्षः, शिशोर्धात्र्या इव स्तनम् ॥९१॥ काकस्येव चलाक्षस्य, सर्वतः पार्श्ववीक्षणम्। उर्द्धाधः कम्पनं मूर्ध्नः, खलीनार्त्तहरेरिव ॥ ९२ ॥ स्कंधारूढगजस्येव, कृतग्रीवानतोन्नती। सकपित्थकरस्येव, मुष्टिबन्धनकारिणः ॥ ९३ ॥ कुर्वतः शिरसः कम्पं, मूकसंज्ञाविधायिनः। अंगुलीगणनादीनि, भ्रूनृत्यादिककल्पनम् ॥ ९४ ॥ मदिराकुलितस्येव घूर्णनं दिगवेक्षणम्। ग्रीवोर्द्धनयनं भूरि, ग्रीवाधोनयनादिकम् ॥९५॥ निष्ठीवनं बहुस्पर्शः, प्रपंचबहुला स्थितिः। सूत्रोदितविधेर्नूनं, वयोपेक्षाविवर्जनम् ॥ ९६ ॥ कालापेक्षव्यतिक्रांति, व्याक्षेपासक्तचित्तता। लोभाकुलितचित्तत्वं, पापकार्योद्यमः परः ॥ ९७ ॥ कृत्याकृत्यविमूढत्वं, द्वात्रिंशदिति सर्वथा। कायोत्सर्गविधेर्दोषास्त्याज्या निर्जरणार्थिभिः ॥९८॥

अर्थ—घोड़ेकी ज्यौं एक पांव उठाय करि खडै रहना सो घोटक दोष है, १—बहुरि पवनकरि हली जो लता ताकी ज्यौं सर्व तरफ चलना सो लता दोष है, २—बहुरि थम्भ भीत आदिका आसरा लेना सो स्तम्भकुड्य दोष है, ३—बहुरि पाट आदिके ऊपर तिष्ट करि

कायोत्सर्ग करै सो पट्टिका दोष है, ४—बहुरि सिरके ऊपर मालाकौं अवलम्बकैं तिष्टना सो माला दोष है।

५—बहुरि बेडीकरि बन्धे पुरुषकी ज्यौं टेढे चरण धारि तिष्टना सो निगड दोष है, ६—बहुरि भीलकी स्त्रीकी ज्यौं हाथन करि जंघानकौं ढांपना सो किरातयुवति दोष है, ७—बहुरि शिरकौं नमाय करि तिष्टना सो शिरोनमन दोष है, ८—बहुरि ऊँचा शिर करकै तिष्टना सो उन्नमन दोष है, ९—बहुरि बालककौं धायके स्तनकी ज्यौं छातीकौं ऊँची करकै तिष्टना सो धात्री दोष है।

१०—बहुरि कागलाकी ज्यौं चंचल नेत्रका सर्व तरफ पसवाडे-नका देखना सो वायस दोष है, ११—बहुरि लगाम करि पीडित घोडेकी ज्यौं ऊपर नीचैं मस्तकका नमावना सो खलीन दोष है, १२—बहुरि कंधापर आरूढ है पुरुष जाके ऐसे गजकी ज्यौं ग्रीवाका नमावना ऊँचा करना सो गज दोष है वा याहीका नाम युग दोष है, १३—बहुरि कैंथ सहित हस्तकी ज्यौं मूठी बंधन करनेवालेके सो कपित्थ दोष है, १४—बहुरि सिरका कंपावना सो शिरः प्रकंपित दोष है।

१५—बहुरि गूंगेकी ज्यौं नासिकादि अंगनिकी सैनानी करने-वालेकै मूक दोष है, १६—बहुरि कायोत्सर्गमैं भृकुटी नचावना आदि करै सो भ्रूदोष है, १८—बहुरि मदिरा करि आकुलित पुरुषकी ज्यौं घूमैं सो मदिरा पायी दोष है, १९—बहुरि कायोत्सर्गमैं दशौं दिशान प्रति देखना सो दिगविक्षण दोष है॥ २०॥

२०—बहुरि ग्रीवाकौं बहुत ऊपर करना सो ग्रीवोर्द्धनयन दोष है, २१—बहुरि ग्रीवाकौं नीची करना इत्यादि ग्रीवाधोनयनादि दोष हैं, २२—बहुरि खकारना सो निष्टीवन दोष है, २३—बहुरि अंगका

स्पर्शना सो वपुःस्पर्शन दोष है, २४—बहुरि माया करि बहुत प्रपंच-सहित तिष्ठना प्रपंचबहुल दोष है, २५—बहुरि सूत्रभाषित विधिकी हीनता करनी सो विधिन्यून दोष है, २६—बहुरि वृद्धादि वयकी अपेक्षा-दिकका त्यागना।

भावार्थ—अपनी अवस्था विना देखे कायोत्सर्ग करना सो वयोपेक्षादिवर्जन दोष है, २७—बहुरि कालकी अपेक्षाका उल्लंघन करना कायोत्सर्गके काल कायोत्सर्ग न करना सो कालापेक्ष व्यतिक्रात दोष है, २८—बहुरि चित्तकी विक्षिप्तताके कारणमैं आसक्त चित्तपनां सो आक्षेप सक्तचित्तता दोष है, २९—बहुरि लोभ करी आकुलित चित्तपनां सो लोभाकुलित दोष है, ३०—बहुरि कायोत्सर्ग विषैं पाप कार्यमैं परम उद्यम करना सो पापकार्योद्यम दोष है, ३१—बहुरि करने योग्य न करने योग्य विषैं मूढपना सो मूढ दोष है, ३२—या प्रकार कायोत्सर्गकी विधिके बत्तीस दोष हैं, ते निर्जराके अर्थी जे पुरुष हैं तिनकरि सर्वथा त्यागना योग्य है॥ ९७–९८॥

समाहितमनोवृत्तिः, कृतद्रव्यादिशोधनः। विविक्तं स्थानमास्थाय, कृतेर्यापथशोधनः॥ ९९॥ गुर्वादिवंदनां कृत्वा, पर्यंकासनमास्थितः। विधाय वंदनामुद्रां, सामान्योक्तनमस्कृतिः॥ १००॥ ऊर्द्ध्वः सामा-यिकस्तोतं, समुक्तामुक्तमुद्रकः। पठित्वा वर्त्तितावर्त्तो, विदधाति तनूत्सृतिम्॥ १०१॥ कृत्वाजैनेश्वरीं मुद्रां, ध्यात्वा पंचनमस्कृतिम्। उक्त्वा तीर्थकरस्तोत्रमुपविश्य यथोचितम्॥ १०२॥ चैत्यभक्ति समुच्चार्य, भूयः कृत्वा तनूत्सृतिम्। उक्त्वा पंचगुरुस्तोत्रं, कृत्वा ध्यानं यथाबलम्॥ १०३॥ विधाय वंदनां सूरेः कृतिकर्मपुरः सराम्। गृहीत्वा नियमं शक्त्या, विधत्ते साधुवंदनाम्॥१०४॥ आवश्यकमिदं प्रोक्तं नित्यं व्रतविधायिनाम्। नैमित्तिकं पुनः कार्यं, यथागम-मतं,द्वितैः॥ १०५॥

अर्थ—एकाग्र है मनकी वृत्ति जाकी अर करि है द्रव्यादिकनकी सोधना जानैं सो एकांत स्थानपैं तिष्ठकरि करया है ईर्यापथका शोधन जानैं ॥ ९९ ॥

गुरु आदिकनिकी वन्दना करकै पर्यंकासनपरि तिष्ठ्या वन्दना मुद्राकों रचिकै सामान्यपनैं कह्या है नमस्कार जानैं ॥ १०० ॥

ता उपरांत सामायिक स्तोत्रकों भले प्रकार कहिकै छोड़ी है मुद्रा जानें सो पाठ पढकै जान्या है आवर्त्त जानें ऐसा पुरुष सो कायोत्सर्गकों करे है ॥ १०१ ॥

बहुरि जैनश्वरी मुद्राकौं करिकै अर पंच नमस्कार मंत्रका ध्यान करकै अर तीर्थंकरनिका स्तोत्र कहिकै यथायोग्य बैठकरि ॥ १०२ ॥

चैत्य भक्तिका उच्चारन करि फेर कायोत्सर्ग करिकै बहुरि पंच गुरुनिके स्तोत्रकों कहिकै बहुरि जैसा बल होय तैसा ध्यान करिकैं ॥ १०३ ॥

बहुरि कृतिकर्म पूर्वक आचार्यकी वन्दनाकौं करिकैं फेर शक्ति माफिक नियमकौं ग्रहण करि साधु वन्दनाकौं करैं ॥ १०४ ॥

यहु आवश्यक व्रत करनेवालेनकौं नित्य कहा । आलस्य रहित पुरुषनि करि नैमित्तिक कहिए पूर्व आदिका निमित्त पाया सो जैसा आगममैं कह्या तैसा करना योग्य है ॥ १०५ ॥

भावार्थ—एकाग्र चित्त होयकै अर द्रव्यक्षेत्रादिक शोधन करि एकांत स्थानमैं तिष्ठकै प्रथम ईर्यापथ दंडक पढ़ै, फेर गुरु आदिकनिकी वन्दना करकै पर्यंकासन तिष्ठिकैं पूर्वोक्त वंदना मुद्रा रचिकैं कायोत्सर्ग करै, फेर पूर्वोक्त जैनेश्वरी मुद्रा करिक पंचनमस्कारका ध्यान करै फेर तीर्थंकरनिका स्तोत्र पढ़कैं यथायोग्य बैठै, फेर पंचपरमेष्ठीनिका स्तोत्र पढकै शक्तिमाफिक ध्यान करै फेर नमस्कार शिरोनति आवर्त्त-

पूर्वक आचार्य वन्दना करै फेर शक्तिसारू नियमकों ग्रहण करि साधु वन्दना करै; या प्रकार यहु आवश्यक तो नित्य ही करै। बहुरि अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व विषैं तथा और भी निमित्त पाय जैसैं आगममैं कह्या तैसैं आवश्यक करना योग्य है ॥ ९९–१०५ ॥

येन केन स सम्पन्नं, कालुष्यं दैवयोगतः।
क्षमयित्वैव तं त्रेधा, कर्त्तव्याऽऽवश्यकक्रिया ॥ १०६ ॥

अर्थ—कर्मयोगतैं जिस किसी पुरुष करि परिणामनिमैं मलिनपना कलुषपना उपज्या होय ता पुरुषसौं मन वचन कायकरि क्षमा कराय आवश्यक क्रिया करनी योग्य है ॥ १०६ ॥

क्रियां पक्षभवां मूढश्चतुर्मासभवां च यः।
विधत्तेऽक्षमयित्वासौ, न तस्याः फलमश्नुते ॥ १०७ ॥

अर्थ—जो मूढ़ विना क्षमा कराये पक्षजनित क्रियाकौं बहुरि चतुर्मासजनित क्रियाकौं करै है सो यहु ता क्रियाके फलकौं न पावै है।

भावार्थ—पंद्रह दिनमैं प्रतिक्रमणादि करिए सो पक्षकी क्रिया कहिए, चार महिनामैं करिए सो चातुर्मासिक क्रिया कहिए सो इन क्रियानकौं जासैं कलुषता भई होय तासैं क्षमा कराये विन करै तो परिणामनिकी शल्यतैं क्रियाके फलकौं न पावै ॥ १०७ ॥

देवनराद्यैः कृतमुपसर्गं, वन्दनकारी सहति समस्तम्।
कम्पनमुक्तो गिरिरिव धीरो, दुष्कृतकर्मक्षपणमवेक्ष्य ॥ १०८ ॥

अर्थ—वन्दना करनेवाला मनुष्य है सो पाप कर्मकी निर्जराकौं विचारिकै देव मनुष्यादिकनि करि कर्या समस्त उपसर्गकौं सहै है, कैसा है? पर्वतकी ज्यों कम्परहित है धीर है ॥ १०८ ॥

आगैं अधिकारकौं संकोचै है—

इत्थमदोषं सततमनूनं, निर्मलचित्तो रचयति नूनम्।
यः कृतिकर्मामितगतिदृष्टं, याति स नित्यं पदमनदृष्टम् ॥१०९॥

अर्थ—जो निर्मलचित्त पुरुष या प्रकार निर्दोष न्यूनता रहित निरंतर कृतिकर्म कहिए आवश्यक क्रिया ताहि कर है सो नित्य अर देखनेमें न आवै ऐसा जो मोक्षपद ताहि प्राप्त होय है, कैसा है कृतिकर्म अमितगति कहिए अनंत है ज्ञान जाका ऐसा जो सर्वज्ञ देवता करि कह्या है; ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

अडिल्ल छन्द ।

रागद्वेष तजि सामायिक भजि, कीजे तीर्थंकर गुणगान ।
पंच परमगुरु चरण वन्दि, नित पूर्वदोषको करि अवसान ॥
आगामी अघत्यागि देहसौं, ममताभाव निवारि सुजान ।
षट आवश्यक साधि जीव इम, लहै अमितगति पद निरवान ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषै
अष्टम परिच्छेद समाप्त भया ।

नवम परिच्छेद ।

दानं पूजा जिनै, शीलमुपवासश्चतुर्विधः ।
श्रावकाणां मतो धर्मः संसारारण्यपावकः ॥ १ ॥

अर्थ—दान १ पूजा २ शील ३ उपवास ४ यहु संसारवनकौं अग्नि समान चार धर्म श्रावकनिका जिनदेवनिनैं कह्या है ।

तहां प्रथम ही दानका स्वरूप कहै हैं:—

दानं विनरता दाता, देयं पात्रं विधिर्मतिः ।
फलैषिणाऽवबोद्धव्यानि, धीमता पंच तत्त्वतः ॥ २ ॥

अर्थ—फलका वांछक अर बुद्धिसहित ऐसा जो दान देनेवाला पुरुष ताकरि दाता १ देने योग्य वस्तु २ पात्र ३ विधि ४ मति ५ ये पांच स्वरूप सहित जानना योग्य हैं ।

भावार्थ—दान देनेवाले करि पूर्वोक्त पंच वस्तुका स्वरूप जानना योग्य है ॥ २ ॥

तहां दाताका स्वरूप कहै हैं—

भाक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं, सविज्ञानमलोलुपम् ।
सात्विकं क्षमकं सन्तो, दातारं सप्तधा विदुः ॥ ३ ॥

अर्थ—संतजन है ते दाताकौं सात प्रकार कहै हैं; सात कौन? प्रथम तौ भक्ति सहित १ अर प्रसन्नचित्त २ अर श्रद्धासहित ३ अर विज्ञान सहित ४ अर लोलुपता रहित ५ अर सात्विक कहिये शक्तिमान ६ अर क्षमावान ७ ऐसा जानना ॥ ३ ॥

आगैं भाक्तिक आदिका स्वरूप कहै हैं—

यो धर्मधारिणां धत्ते, स्वयं सेवापरायणः ।
निरालस्योऽशठः शांतो, भक्तिकः स मतो बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो पुरुष धर्मके धारनेवालेनकी सेवामैं तत्पर भयासंता स्वयं कहिये अपेक्षा रहित आप ही धारै है सो पंडितनि करि आलस्यरहित बुद्धिमान शांतचित्त ऐसा भाक्तिक कहिये भक्तिसहित कह्या है।

भावार्थ—धर्मात्मानकी सेवा करै सो भाक्तिक कहिए ॥ ४ ॥

तुष्टिर्दत्तवतो यस्य, ददतश्च प्रवर्त्तते ।
देयासक्तमतेः शुद्धास्तमाहुस्तौष्टिकं जिनाः ॥ ५ ॥

अर्थ—जिसकं आगैं देता भया ताकै वा वर्तमानमैं देतेकैं हर्ष प्रवर्त्तै है ताहि कर्ममलरहित जे शुद्ध जिनदेव हैं ते तौष्टिक कहिए हर्षसहित कहैं हैं, कैसा है सो देने योग्य वस्तु विषैं नाहीं है लोभरूप बुद्धि जाकी ॥ ५ ॥

साधुभ्यो ददता दानं, लभ्यते फलमीक्षितम् ।
यस्यैषा जायते श्रद्धा, नियं श्राद्धं वदंति तम् ॥ ६ ॥

अर्थ—साधुनके अर्थ दान देता जो पुरुष ताकरि वांछित फल पाइए है यहु जाके नित्य ही श्रद्धा प्रतीति है ता पुरुषकों आचार्य श्रद्धावान कहैं हैं ॥ ६ ॥

द्रव्यं क्षेत्रं सुधीः कालं, भावं सम्यक् विविच्य यः।
साधुभ्यो ददते दानं, सविज्ञानमिमं विदुः ॥ ७ ॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भावकों भले प्रकार विचारकै साधूनकै अर्थ सुबुद्धि दान देय है इसकों आचार्य सविज्ञान कहैं हैं ॥ ७ ॥

त्रिधापि याचते किंचिद्यो, न सांसारिकं फलम्।
ददानो योगिनां दानं, भाषंते तमलोलुपम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो योगीनकों दान देता सन्ता मन, वचन, काय करि भी सांसारिक फलकों न याचै है ताहि आचार्य अलोलुप कहैं हैं॥८॥

स्वल्पवित्तोऽपि यो दत्ते, भक्तिभारवशीकृतः।
स्वाढ्याश्चर्यकरं दानं, सात्विकं तं प्रचक्षते ॥ ९ ॥

अर्थ—जो थोड़ा धनवान भी भक्तिके भार करि वश किया सन्ता धनवानकों आश्चर्य करनेवाला दानकों देय है ताहि आचार्य सात्विक कहैं हैं।

भावार्थ—जो धनरहित भी भक्ति करि दान देय है जाकों देखकै धनवान भी आश्चर्य मानै जो धन्य है यह सो ऐसा दान देय है ता पुरुषकों सात्विक कहिए है ॥ ९ ॥

कालुष्यकारणे जाते, दुर्निवारे महीयसि।
यो न कुप्यति केभ्योऽपि क्षमकं कथयंति तम् ॥ १० ॥

अर्थ—क्रोधरूप मलिन परिणामका दुर्निवार महान् कारण उपजे सन्तैं जो किसीतैं भी क्रोध न करै है ताहि आचार्य क्षमावान कहैं हैं ॥ १० ॥

आगैं उत्तम मध्यम जघन्य दातानिका स्वरूप कहैं हैं:—

सर्वैरलंकृतो वर्यो, जघन्यो वर्जितो गुणैः ।
मध्यमोऽनेकधाऽवाचि, दाता दानविचक्षणैः ॥ ११ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त भक्ति तुष्टि आदि गुण वा आगै कहैंगे तिन सर्व गुणनि करि भूषित है सो तो उत्कृष्ट दाता है अर तिन गुणनि करि रहित है सो जघन्य दाता है। बहुरि दान विषैं विचक्षण जे पुरुष तिन करि मध्यमदाता अनेक प्रकार कह्या है ॥ ११ ॥

आगैं दाताका विशेष गुण कहै हैं:—

विनीतो धार्मिकः सेव्यस्तत्कालक्रमवेदकः । जिनेशशासनाभिज्ञो भोगनिस्पृहमानसः ॥ १२ ॥ दयालुः सर्वजीवानां रागद्वेषादिवर्जितः संसारासारतावेदी समदर्शी महोद्यम ॥ १३ ॥ परीषहसहो धीरो निर्जिताक्षो विमत्सरः । परात्मसमयाभिज्ञः प्रियवादी निरुत्सुका ॥ १४॥ वासितो व्रतिनां पूतैः परासाधारणैर्गुणैः । लोकलोकोत्तराचारविचारी संघवत्सलः ॥ १५ ॥ आस्तिको निरहंकारो वैयावृत्यपरायणः । सम्यक्त्वालंकृतो दाता जायते भुवनोत्तमः ॥ १६ ॥

अर्थ—विनयवान होय, धर्मात्मा होय, क्रूरतादिकके अभावतैं औरन करि सेवने योग्य होय, तत्काल क्रमका जाननेवाला होय ।

भावार्थ—जिस कालमैं जैसी वस्तु आदि चाहिये तैसा जानता होय; अर जिनेन्द्रके उपदेशका ज्ञाता होय, बहुरि भोगनि विषैं वांछा रहित चित्त जाका ऐसा होय ॥ १२ ॥ सर्व जीवनि पर दया सहित होय, रागद्वेषादि रहित होय, संसारकी असारताका जाननेवाला होय, अर समान देखनेवाला होय,

भावार्थ—कोऊका इष्टानिष्टपनें करि हीनाधिक देखनेवाला न होय, अर उद्यमी होय ॥ १३ ॥ परीषहनिका सहन करनेवाला

होय, धीर होय, अर जीती हैं इंद्रिया जानैं ऐसा होय, बहुरि मत्सरता रहित होय अर श्रेष्ठ अध्यात्म शास्त्रका जाननेवाला होय, प्रियवचन बोलनेवाला होय, विषयनिकी वांछा रहित होय ॥ १४ ॥ बहुरि व्रतीनके औरनिविषैं न पाइए ऐसे असाधारण पवित्र गुणनिकरि पवित्र गुणनिकरि वासित होय।

भावार्थ—व्रतीनके गुणनिमैं अनुरागी होय, बहुरि लौकिक आचार वा लोकोत्तर कहिए परमार्थ आचार ताका विचार सहित होय, अर च्यार प्रकार संघ विषैं वच्छासे गौकी ज्यों प्रीति सहित होय ॥ १५ ॥ बहुरि अस्तिक कहिए परलोकादिक हैं ऐसी अस्ति बुद्धि सहित होय।

भावार्थ—परलोक नाहीं पुण्य नाहीं इत्यादिक जो नास्तिक बुद्धि ता करि रहित होय, अहंकार रहित होय, धर्मात्मानकी टहल चाकरीमैं तत्पर होय अर सम्यक्त करि भूषित होय ऐसा दाता लोक विषैं उत्तम होय है,

भावार्थ—पूर्वोक्त गुणनिसहित होय सो उत्तमदाता जानना॥ १६॥

आगैं और भी कहैं हैं—

> आत्मीयं मन्यते द्रव्यं, यो दत्तं व्रतवर्त्तिनाम्।
> शेषं पुत्रकलत्राद्यैस्तस्करैं, रिव लुंठितम्॥ १७॥

अर्थ—जो दाता व्रतीनकूं दिया जो द्रव्य ताहि अपना माने है बहुरि बाकी रह्या जो द्रव्य ताहि पुत्र स्त्री चौरन करि मानौ लूट लिया तैसा मानै है।

भावार्थ—पात्रनिकूं दानमैं जो धन लग्या सो तो पुण्यबंधके कारण तैं इस भवमैं वा पर भवमैं आपकौं सुखदायी हैं तातैं अपना है अर पुत्र स्त्री आदिकनिनैं सो पाप बंधके कारणतैं दोऊ भवमैं दुख-

दायी है तातैं अपना नाहीं चौरन करि लूट लिए समान है, ऐसा जानना ॥ १७ ॥

ये लोकद्वितये सौख्यं, कुर्वते मम साधवः।
बांधवा दारुणं दुःखमिति पश्यति चेतसा ॥ १८ ॥

अर्थ—ये साधुजन हैं ते मेरे इस भव विषैं वा परभव विषैं सुखकौं करैं हैं अर बांधव हैं ते भयानक दुःखकौं करैं हैं, ऐसा दाता मन विषैं विचारै है ॥ १८ ॥

योऽत्रैव स्थावरं वेत्ति, गृहकार्ये नियोजितम्।
सहगामि परं वित्तं, धर्मकार्ये यथोचितम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जो पुरुष घरके कार्यमैं लगाया जो द्रव्य ताहि इहांही रहनेवाला मानै है अर केवल धर्म कार्यमैं लगाया योग्य द्रव्य ताहि संग जानेवाला मानै है।

भावार्थ—विवाहादि कार्यमैं द्रव्य लगाया सो तो इस लोकमैं रह्या बाकी धर्म कार्यमैं लगाया सो द्रव्य पुण्यबंधके कारणतैं आपके साथ जाय है ऐसा जानना ॥ १९ ॥

शरदभ्रसमाकारं, जीवितं यौवनं धनम्।
यो जानाति विचारज्ञो, दत्ते दानं स सर्वदा ॥ २० ॥

अथ—जो पुरुष शरदकालके बादले समान अथिर जीवनकौं अर जोबनकौं अर धनकौं जानै है सो विचारका जाननेवाला सदाकाल दानकौं देय है ॥ २० ॥

यो न दत्ते तपस्विभ्यः, प्रासुकं दानमंजसा।
न तस्याऽऽत्मंभरेः, कोऽपि विशेषो विद्यते पशोः ॥ २१ ॥

अर्थ—जो पुरुष तपस्वीनके अर्थि प्रासुक दानकौं भले प्रकार न देय है तिस आपापोषीकै अर पशूकै किछू विशेष नाहीं है।

भावार्थ—दान न देय है सो पशु समान है जातैं अपना उदर तो पशु भी भर लेय है, मनुष्यपनेकी विशेषता तो दानहीतैं है ॥२१॥

गृहं तदुच्यते तुंगं, तर्प्यंते यत्र योगिनः।
निगद्यते परं प्राज्ञैः, शारदं घनमंडलम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जिस विषैं योगीश्वर तृप्त कीजिए हैं योगीश्वरनिकौं दान दीजिए है सो ऊँचा घर कहिए है अर दान रहित केवल घर है सो पंडितनिकरि सरदकालके बादलानिका मंडल कहिए है ॥ २२ ॥

धौतपादांभसा सिक्तं, साधूनां सौधमुच्यते।
अपरं कर्दमालिप्तं, मर्त्यचारकबंधनम् ॥ २३ ॥

अर्थ—साधूनके धोये जे चरण तिनके जलकरि सींच्या जो घर ताहि सौध कहिए है, अर सिवाय दूजा घर है सो कीचकरि लिप्या मनुष्यरूप चरनेवालेका बंधन है ॥ २३ ॥

स गेही मन्यते भव्यो, यो दत्ते दानमंजसा।
न परो गेहयुक्तोऽपि, पतत्रीव कदाचन ॥ २४ ॥

अर्थ—जो भले प्रकार दान देय है सो भव्य पंडितनिकरि गृही मानिये है अर दान रहित गृह सहित भी पक्षीकी ज्यों गृही न मानिए है।

भावार्थ—दान देय सो गृहस्थ है अर दान रहित केवल घर तो पक्षीकै भी होय है, तातैं दान विना गृहहीतैं गृहस्थ न कहिये ऐसा जानना ॥ २४ ॥

किं द्रव्येण कुबेरस्य, किं समुद्रस्य वारिणा।
किमन्धसा गृहस्थस्य, भुक्तिर्यत्र न योगिनाम् ॥ २५ ॥

अर्थ—जहां योगीश्वरनिका भोजन नाहीं तिस कुबेरके द्रव्य करि कहा अर समुद्रके जलकरि कहा अर गृहस्थके भोजन करि कहा।

भावार्थ—जहां दान नाहीं तिन बहुत द्रव्यादिकनि करि कहा साध्य है किछू साध्य नाहीं, ऐसा जानना ॥ २५ ॥

ध्यानेन शोभते योगी, संयमेन तपोधनः ।
सत्येन वचसा राजा, गृही दानेन चारुणा ॥ २६ ॥

अर्थ—योगी तो ध्यानकरि सोहै है अर तपोधन जो तपस्वी है सो संयमकरि सोहै है अर सत्य वचन करि राजा सोहै है अर गृहस्थ सुन्दर दानकरि सोहै है ॥ २६ ॥

तपोधनं गृहायात यो न गृह्णाति भक्तितः ।
चिन्तामणि करप्राप्तं स, कुधीस्त्यजति स्फुटम् ॥ २७ ॥

अर्थ—घर प्रति आया जो तपोधन साधु ताहि जो भक्तितैं न पडगाहै है सो कुबुद्धि हस्तविषैं आया जो चिन्तामणि ताहि प्रकटपनैं तजै है ॥ २७ ॥

विद्यमानं धनं धिष्ण्ये, साधुभ्यो यो न यच्छति ।
स वंचयति मूढात्मा, स्वयमात्मानमात्मना ॥ २८ ॥

अर्थ—घरविषैं विद्यमान जो धन ताहि जो साधुनके अर्थ न देय है सो मूढात्मा आप ही आपकरि आपकौं ठगै है । घरमैं धन होतें मुनीनकौं आहारादि दान न देय है सो आपकौं ठगै है ॥ २८ ॥

स भण्यते गृहस्वामी, यो भोजयति योगिनः ।
कुर्याणां गृहकर्माणि, परं कर्मकरं विदुः ॥ २९ ॥

अर्थ—जो योगीनकौं भोजन करावै है सो घरका स्वामी कहिये है अर दान विना केवल घरके कार्यकौं करै है ताहि पंडित हैं ते गुलाम कहै है, ऐसा जानना ॥ २९ ॥

यः सर्वदा क्षुधां धृत्वा, साधुवेलां प्रतीक्षते ।
सः साधूनामलाभेऽपि, दानपुण्येन युज्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—जो सदा क्षुधा धारणकरि साधूनिके आहारकी वेलाकी प्रतीक्षा करै है अर आहार वेला टले पीछैं भोजन करै है सो पुरुष साधूनका अलाभ होतें भी दानके पुण्यकरि युक्त होय है ॥ ३० ॥

भवने नगरे ग्रामे, कानने दिवसे निशि।
यो धत्ते योगिनश्चित्तं, दत्तं तेऽभ्योऽमुना ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो पुरुष घरविषैं नगरविषैं ग्रामविषैं वनविषैं दिवसविषैं रात्रिविषैं योगीश्वरनिकौं चित्तविषैं धारै है, सो इस पुरुष करि निश्चयतें मुनिनके अर्थ दान दिया।

भावार्थ—जो सदा मुनीश्वरनिकी भक्तिका परिणाम राखै है ताकै मुनीनका मिलना न होतैं भी भावनाकी शुद्धितातें दानका पुण्य होय है ॥ ३१ ॥

यः सामान्येन साधूनां, दानं दातुं प्रवर्त्तते ।
त्रिकालगोचरास्तेन, योगिनो भोजिताः स्तुताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो सामान्यपने करि साधूनके दान देनेकौं प्रवर्तै है ता पुरुषकरि भूत भविष्यत वर्तमान कालके सर्व योगीश्वर जिमाए अर स्तुतिगोचर किये।

भावार्थ—जाके मुनिमात्रके दानमैं हर्ष है प्रकृति है ताकै सर्व ही मुनीनिकी भक्ति होनेतें सर्वकौं दान दिया अर सर्वहीकी स्तुति करी, ऐसा जानना ॥ ३२ ॥

दत्ते दूरेऽपि यो गत्वा, विमृश्य व्रतशालिनः ।
स: स्वयं गृहमायाते कथं दत्ते न योगिन ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो दूर जायकरि भी व्रतीनकौं हेर करि दान देय है सो आप ही योगीश्वरनिकौं घर आये सन्ते दान कैसैं न देय है? देय ही है ॥ ३३ ॥

सद्रव्याद्रव्ययोर्मध्ये यः, पात्रं प्राप्य भक्तितः ।
ददानः कथ्यते दाता, न दाता भक्तिवर्जितः ॥ ३४ ॥

अर्थ—एक तो द्रव्य सहित पुरुष अर एक द्रव्य रहित पुरुष इन दोउनिके मध्य जो पात्रकौं पायकै भक्तितैं दान देय है सो दाता कहिये है अर भक्तिरहित है सो दाता न कहिए है, ऐसा जानना ॥३४॥

पात्रे ददाति योऽकाले, तस्य दानं निरर्थकम् ।
क्षेत्रेऽप्युप्तं विना कालं, कुत्र बीजं प्ररोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ—बहुरि जो अकालमैं पात्रि विषै दान देय है ताका दान निष्प्रयोजन है। जैसैं विना काल क्षेत्र विषैं बोया भी बीज कहूं ऊगै है? नाहीं ऊगै है, ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

काले ददाति योऽपात्रे, वितीर्णं तस्य नश्यति ।
निक्षिप्तमूषरे बीजं, किं कदाचिदवाप्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—बहुरि जो दानके कालमैं भी अपात्र विषैं दान देय है ताका दान नाशकौं प्राप्त होय है। जैसैं ऊसर भूमि विषैं बोया बीज कहा कहीं पाइए है अपितु नाहीं पाइए है । ३६ ॥

प्रक्रमेण विना वंध्यं, वितीर्णं पात्रकालयोः ।
फलाय किमसत्कारं, निक्षिप्तं क्षेत्रकालयोः ॥ ३७ ॥

अर्थ—बहुरि पात्र अर काल इन दोऊन विषैं दिया दान भी दानकी विधि विना निष्फल है। जैसैं सुन्दर क्षेत्र अर योग्यकाल विषै भी धरतीका जोतना आदि संस्कार रहित बोया बीज है सो कहा फलके अर्थ होय है? अपितु नाहीं होय है ॥ ३७ ॥

कालं पात्रं विधिं ज्ञात्वा, दत्तं स्वल्पमपि स्फुटम् ।
उप्तं बीजमिव प्राज्ञैर्विधत्ते, विपुलं फलम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—कालकौं पात्रकौं अर विधिकौं जानिकै थोड़ा भी दिया

जो दान है सो बोये बीजकी ज्यों प्रकटपणे विस्तीर्ण फलकौं धारन करै है, ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

देयं स्तोकादपि स्तोकं, व्यपेक्षो न महोदयः ।
इच्छानुसारिणी शक्तिः, कदा कस्य प्रजायते ॥ ३९ ॥

अर्थ—थोडेत भी थोडा देना योग्य है अर महा उदयकी अपेक्षा करनी योग्य नाहीं जातैं इच्छानुसारिणी शक्ति कहीं कोईकै होय है ? अपितु नाहीं होय है ।

भावार्थ—आपकै थोडा भी धन होय है थोडेमैंसे थोडा धन दानमैं लगावना । ऐसी न विचारना जो हमारे बहुत धन हो गया जब दान करैंगे, जातैं जितनी इच्छा है तितना धन तौ कहीं कोईकै होय नाहीं; ऐसा जानना ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा दानमतिर्वर्यो, भण्यते वीक्ष्य मध्यमः ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा च यो दत्ते, न दानं स जघन्यकः ॥ ४० ॥

अर्थ—दान देतेकौं सुनकरि दान देनेमैं जाकी बुद्धि होय सो उत्कृष्ट पुरुष है अर दान देतेकुं देखकरि जाकी दान देनेकी बुद्धि होय सो मध्यम पुरुष है अर सुनकरि देखकरि भी जो दान न देय है सो जघन्य पुरुष कहिए अधम है ॥ ४० ॥

ताडनं पीडनं स्तेयं, रोषणं दूषणं भयम् ।
यः कृत्वा ददते दानं, स दाता न मतो जिनैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो और जीवनिकी ताडना करिकैं वा पीडना करिकैं वा चोरी करिकैं वा रोष करिकैं वा तृष्णादि दूषण करिकैं वा भय करिकैं जो दानकौं देय है सो जिन देवनिन दाता नाहीं कह्या है ॥ ४१ ॥

गृहीयमा सदा दानं, प्रदेयं प्रियवादिना ।
प्रियेण रहितं दत्तं, परमं वैरकारणम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रिय वचन सहित बुद्धिमान पुरुष करि सदा दान देना योग्य है जातैं प्रिय वचन विना दिया बहुत दान है सो वैरका कारण है।

भावार्थ—दान देना सो मीठे वचनसहित देना अर मीठे वचन विना दान भी वैरका कारण है, जातैं कटुक वचन सबकों बुरा लागै है ।। ४२ ।।

य: शमायाकृतं वित्तं, विश्राणयति दुर्मतिः ।
कलिं गृह्णाति मूल्येन, दुर्निवारमसौ ध्रुवम् ।। ४२ ।।

अर्थ—जो दुर्बुद्धि पुरुष समभाव रहित धनकों देय है सो यहु निश्चयतैं मोल करि दुर्निवार कहिये दुःखसैं निवारण करिने योग्य पापकों ग्रहण करै है ।

भावार्थ—क्रोधसहित दान देनेमैं उलटा पापबन्ध होय है तातैं समतासहित दान देना योग्य है ।। ४३ ।।

आगैं दान देना योग्य वस्तुकों सामान्यपनै कहै हैं:—

जीवा येन निहन्यंते, येन पात्रं विनश्यते ।
रागो विवर्द्धते येन, यस्मात् संपद्यते भयम् ।। ४४ ।।
आरम्भा येन जन्यंते, दुखितं यच्च जायते ।
धर्मकामैर्न तद्देयं, कदाचन निगद्यते ।। ४५ ।।

अर्थ—जा करि जीव हनिये अर जाकरि पात्रजनका नाश कीजिए अर जा करि राग बढ़ाईए अर जातैं भय उपजै ।। ४४ ।। अर जाकरि आरम्भ उपजै अर जातैं दुखी होय सो वस्तु धर्मके वांछक पुरुषनि करि देने योग्य कदाच नाहीं कहिये है ।। ४५ ।।

आगैं तिन न देने योग्य वस्तुनिके विशेष कहै हैं:—

हलैर्विदार्यमाणायां, गर्भिण्यामिव योषिति ।
म्रियन्ते प्राणिनो यस्यां, सा भूः किं ददते फलम् ।। ४६ ।।

अर्थ—हलनि करि विदारी भई गर्भिणी स्त्री सिष जसैं जाविषैं प्राणी मरै है सो पृथ्वी कहा फल देय अपितु नाहीं देय हैं।

भावार्थ—जैसैं गर्भिणी स्त्रीके गर्भमैं बालक है तैसे पृथ्वीके गर्भमैं अनेक जीव वसै है ता पृथ्वीकौं हलनि करि अनेक जीवनिकी हिंसा होय तातैं भूमिदानमैं पुण्य नाहीं, पाप ही है; ऐसा जानना ।।४६।।

सर्वत्र भ्रमता येन, कृतांतेनेव देहिनः ।
विपाद्यंते न तल्लोहं, दत्तं कस्यापि शांतये ।। ४७ ।।

अर्थ—जा करि सर्व जायगा भ्रमण करने करि यमकी ज्यों जीव विनाशिये हैं सो लोह दिया भया काईकू भी शांतिके अर्थ नाहीं।

भावार्थ—लोह जहां ही जाय तहां ही हिंसा होय तातैं लोह-दान पुण्यके अर्थ नाहीं पापहीके अर्थ है ।। ४७ ।।

यदर्थं हिंस्यते पात्रं, यत्सदा भयकारणम् । संयमा येन हीयंते, दुष्कालेनेव मानवाः ।। ४८ ।। रागद्वेषमदक्रोध, लोभमोहमनोभवाः । जन्यंते तापका येन, काष्ठेनेव हुताशनाः ।। ४९ ।। तद्धनाष्टापदं यस्य, दीयते हितकाम्यया । स तस्याष्टापदं मन्ये, दत्ते जीवितशांतये ।।५०।।

अर्थ—जिसके अर्थ पात्रकी हिंसा कीजिए अर जो सदा भयका कारण अर दुर्भिक्ष करि मनुष्य जैसैं हीन होय तैसैं जा करि संयम हीन होय ।। ४८ ।। अर जैसैं काष्ठ करि अग्नि उपजै है तैसैं संताप-कारी राग-द्वेष, मद, क्रोध, लोभ, मोह, काम जा करि उपजै हैं ।।४९।। सो अष्टापद कहिये सुवर्ण जा करि जिसकौं हितकी वांछा करि दीजिए सो तिसकी जीवनेकी शांतिके अर्थ अष्टापदनामा क्रूर हिंसक जीव तानें दिया ऐसा मैं मानूं हूं।

भावार्थ—जैसैं कोऊ जीवनेके अर्थ काहूकौं अष्टापद नाम हिंसक जीवकौं देय तो ताका मरन ही होय है तैसें धर्मके अर्थ मिथ्यादृष्टीनकौं

दिया जो सुवर्ण तातैं हिंसादिक होनेतैं परके वा आपके ही पाप होय, ऐसा जानना ॥ ५० ॥

संसजंत्यंगिनो येषु, भूरिशस्त्रसकायिकाः ।
फलं विश्राणने तेषां, तिलानां कल्मषं परम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिन विषैं घने त्रसकायिक जीव उपजैं है तिन तिलनके देने विषैं फल केवल पाप है ।

भावार्थ—तिल देनेमैं त्रसकायिक जीवनिकी हिंसातैं केवल पाप ही है पुण्य नाहीं ॥ ५१ ॥

प्रारंभा यत्र जायंते, चित्राः संसारहेतवः ।
तत्सद्म ददतो घोरं, केवलं कलिलं फलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिस विषैं संसारके कारण नाना प्रकार आरंभ होय है तिस घरके देनेवालेके फल केवल घोर पाप होय है ॥ ५२ ॥

पीडा संपद्यते यस्या, वियोगे गोनिकायतः । यया जीवा निहन्यंते, पुच्छशृङ्गखुरादिभिः ॥ ५३ ॥ यस्यां च दुह्यमानायां, तर्णकः पीड्यतेतराम् । तां गां वितरता श्रेयो, लभ्यते न मनागपि ॥ ५४ ॥

अर्थ—जिसकौं गौनके समूहतैं वियोग होनेकी पीडा उपजै है अर जाकरि पूंछ सींग खुर आदिकनि करि जीव हनिए हैं अर जाका दुहे संतैं वच्छा अतिशय करि पीडिए है तिस गौके देनेवाले पुरुष करि किछू भी पुण्य न पाइए है ।

भावार्थ—गौ देनेमैं पुण्यका अंश भी नाही, पाप ही होय है ॥ ५३-५४ ॥

या सर्वतीर्थदेवानां, निवासीभूतविग्रहा ।
दीयते गृह्यते सा गौः, कथं दुर्गतिगामिभिः ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो गौ सर्व अर देवनिके बसनेका स्थान है शरीर जाका

सो गौ दुर्गतिके जानेवालेन करि कैसैं दीजिए है और कैसैं ग्रहण करिय है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टि गौके शरीरमैं सर्व तीर्थ अर देव बसते मानैं हैं, ऐसी गौं कौं पापी कैसैं देय हैं अर कैसैं लेय हैं; ऐसी तर्क करी है ॥ ५५ ॥

तिलधेनुं घृतधेनुं, कांचनधेनुं च रुक्मधेनुं च ।
परिकल्प्य भक्षयंत, श्चांडालेभ्यस्तरां पापाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—तिलनिकी गौ घृतकी गौं सुवर्णकी गौ रूपेकी गौ बनाय बनाय करि जे भखैं हैं ते चांडालतैं भी अधिक पापी हैं।

भवार्थ—चांडाल गौ तो न खाय है अर इन मिथ्यादृष्टिननैं तिलादिककी बनाय करी गौ भी खाय लीनी तातैं ते चांडालतैं भी सिवाय पापी हैं, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

या धर्मवनकुठारी, पातकवसतिस्तपोदया चौरी । वैरायासासूया विषादशोकश्रमक्षोणी ॥ ५७ ॥ यस्यां सक्ता जीवा दुःखतमान्नोत्तरंति भवजलधेः । कः कन्यायां तस्यां, दत्तायां विद्यते धर्मः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो कन्या धर्मवनके काटनेकौं कुल्हारी समान अर पापकी वसती अर तपश्चरण दया की चौरनेवाली अर वैर प्रयास ईर्षा शोक खेद इनकी भूमिका है ॥ ५७ ॥ अर जा विषैं आसक्त जीव हैं ते अतिशय करि दुःखस्वरूप जो संसारसमुद्र तातें न उतरें हैं तिस कन्याकौं दिये संतें कहा धर्म होय है ? पाप ही होय है।

भावार्थ—कन्यादानतें पूर्वोक्त पापनिका संतान बढै है तातें पाप ही है धर्म नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

सर्वारम्भकरं ये वीवाहं, कारयन्ति धर्माय ।
ते तरुखण्डविवृद्ध्यै, क्षिपंति वह्निं ज्वलज्ज्वालम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो पुरुष सर्व हिंसादिक आरम्भका करनेवाला जो विवाह ताहि धर्मके अर्थ करावे है ते वृक्षनके वनकौं बढ़ावनेके अर्थि जाज्वल्यमान है ज्वाला जाकी ऐसी अग्निकौं खेपै हैं।

भावार्थ—जैसैं अग्नितैं वन बढ़े नाहीं उलटा जल जाय तैसैं विवाह कराये धर्म नाहीं धर्मका नाश ही है॥ ५९॥

य: संक्रांतौ ग्रहणे वारे, वित्तं ददाति मूढमतिः।
सम्यक्त्ववनं छित्वा, मिथ्यात्ववनं वपत्येषः॥ ६०॥

अर्थ—जो मूढ़बुद्धी पुरुष संक्रांति विषैं आदित्यवारादि वार विषैं धनकौं देय है सो सम्यक्त वनकौं छेदिकै मिथ्यात्व वनकौं बावै है॥ ६०॥

ये ददते मृततृप्तये बहुधा, दानानि नूनमस्तधियः।
पल्लवयितुं तरुं ते, भस्मीभूतं निषिंचंति॥ ६१॥

अर्थ—जे निर्बुद्धि पुरुष मरे जीवकी तृप्तिके अर्थ बहुत प्रकार दान देय है ते निश्चय करि अग्नि करि भस्मरूप भए वृक्षकौं पत्रसहित करनेकौं सींचैं है।

भावार्थ—जैसैं भस्म भए वृक्षकौं सींचै फेर हरा न होय सींचना निष्फल है तैसैं मरे पितरनकी तृप्तिके अर्थ दान देना वृथा है, मिथ्यात्व पुष्ट होनेतैं पाप ही है॥ ६१॥

विप्रगणे सति भुक्ते, तृप्तिः संपद्यते यदपि नृणाम्।
नान्येन घृते पीते, भवति तदान्यः कथं पुष्टः॥ ६२॥

अर्थ—ब्राह्मणके समूहकौं भोजन कराये सन्ते जो पितरके तृप्तिता होय तो और करि घी पिये सन्तैं और पुष्ट कैसैं न होय॥६२॥

दाने दत्ते पुत्रैर्मुच्यंते, पापतोऽत्र यदि पितरः।
विहिते तदा चरित्रे, परेण मुक्तिं परो याति॥ ६३॥

अर्थ—पुत्रनि करि दान दिये सते जो पितर पापनें छूटें हैं तो और करि चारित्र करे संतैं और मुक्तिकौं प्राप्त होय ॥ ६३ ॥

गंगागतेऽस्थिजाले भवति, सुखी यदि मृतोऽत्र चिरकालं।
भस्मीकृतस्तदांभः सिक्तः, पल्लवयते वृक्षः ॥ ६४ ॥

अर्थ—हाड़नके समूहकौं गंगानदी विषै गये सन्तैं जो यहु प्राणी बहुत सुखी होय है तो भस्म करया वृक्ष सींच्या भया हरया होय है ॥ ६४ ॥

उपयाचंते देवान्नष्टधियो, ये धनानि ददमानाः।
ते सर्वस्वं दत्त्वा नूनं, क्रीणंति दुःखानि ॥ ६५ ॥

अर्थ—जे नष्ट बुद्धि दान देते सन्ते देवनि प्रति धननिकौं याचैं हैं ते निश्चयकरि सर्व अपना धन देकरि दुःखनिकौं खरीदैं हैं ॥६५॥

पूर्णे काले देवैर्न रक्ष्यते, कोऽपि नूनमुपयातैः।
चित्रमिदं प्रतिबिंबैरचेतनैः, रक्ष्यते तेषाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—कालकौं पूर्ण भये सन्ते निश्चय करि कोई भी पुरुष निकट आये जे देव तिन करि नाहीं रक्षिए है, बहुरि तिन देवनिके अचेतन प्रतिबिम्बनि करि रक्षा मानिये सो यहु बड़ा आश्चर्य है।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टि कुदेवनिकी प्रतिमा बनाय तिनकै आगै अपना जीवना वांछै है तहां आचार्य कहैं हैं कि आयु पूर्ण भये साक्षात् देव भी रक्षा न करि सकै है तो तिनके अचेतन प्रति-बिंबनितैं जीवितव्य वांछना यहु बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ६६ ॥

मांसं यच्छन्ति ये मूढा, ये च गृह्णंति लोलुपाः।
द्वये वसन्ति ते श्वभ्रे, हिंसामार्गप्रवर्त्तिनः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जे मूढ मांसकौं देय है अर जे लोलुपी मांसका ग्रहण करैं हैं ते दोऊ हिंसा मार्गके प्रवर्त्तावनहारे नरक विषैं वास करैं हैं॥६७॥

धर्मार्थं ददते मांसं, ये नूनं मूढबुद्धयः ।
जिजीविषंति ते दीर्घं, कालकूटविषाशने ॥ ६८ ॥

अर्थ—जे मूढबुद्धी धर्मके अर्थ मांसकौं देय हैं ते निश्चयकरि कालकूट विषकौं खाय करि जिये चाहैं हैं ॥ ६८ ॥

तादृशं यच्छतां नास्ति, पापं दोषमजानताम् ।
यादृशं गृह्णतां मांसं, जानतां दोषमूर्जितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—दोषके स्वरूपकौं न जानते ऐसे दानके देनेवाले तिनकौं तैसा पाप नांही जैसा महापाप दोषकौं जानते जे मांसकौं ग्रहण करनेवाले तिनकौं है ।

भावार्थ—कुदानका देनेवाला अज्ञानतैं धर्म जानि दान देय है सो पापी तो है ही परन्तु जो जानकरि दोष सहित दान ग्रहण करै है सो ताहू तैं महापापी है तातैं भोले जीवतैं जानिकैं प्रपंच करै ताकै कषाय अधिक है, ऐसा जानना ॥ ६९ ॥

दाता दोषमजानानो, दत्ते धर्मधियाऽखिलम् ।
यः स्वीकरोति तद्दानं, पात्रं त्वेष न सर्वथा ॥ ७० ॥

अर्थ—दाता है सो तो दोषकौं न जानता संता धर्मबुद्धिकरि सर्व दान देय है अर जो ता कुदानकौं अंगीकार करै है सो सर्वथा पात्र नाही ॥ ७० ॥

बहूनि तानि दानानि, विधेयैषा न शेमुषी ।
विपद्यतेतरां प्राणी, भूरिभिर्भक्षितैर्विषैः ॥ ७१ ॥

अर्थ—पूर्वे कहे ते बहुत प्रकार दान हैं ऐसी यह वाणी कहना योग्य नाहीं, जातैं बहुत खाये भये जे विष तिनकरि जीव है सो अतिशयकरि नाश कीजिए है ।

भावार्थ—पहले कहे जे बहुत कुदान ते दान हैं ऐसे कहना

भी योग्य नाहीं बहुत कुदान किये पाप ही है जैसैं बहुत विष खाये प्राणीका विशेषतैं मरण ही है तैसैं ॥ ७१ ॥

अल्पं जिनमतं दानं, वदंतीमं न कोविदाः ।
पीयूषेणोपभुक्तेन, किं नाल्पेनापि जीव्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह जिनमतका कह्या दान है सो अल्प है ऐसैं पंडितजन न कहैं हैं, जातैं खाया भया थोड़ा भी अमृत करि कहा न जिवाइए है जिवाइए ही है ।

भावार्थ—कोई कहै कि जैनमतका दान तो थोड़ा है जातैं कहा भला होय ताकौं आचार्यनैं कह्या है जो सुदान थोड़ा भी महा-पुण्य उपजावै है, जैसैं अमृत थोड़ा है सो भी जिवावै है तैसैं जिन-भाषित दान थोड़ा न जानना ॥ ७२ ॥

ग्रहीतुः कुरुते सौख्यं दानैस्तैरखिलैर्यतः ।
पुण्यभागी ततो दाता नेदं वचनमंचितम् ॥ ७३ ॥
आपाते लभ्यते सौख्यं विपाके दुःखमुल्बणम् ।
अपथ्यैरिव तैर्दानैर्दुर्जरैर्जननिंदितैः ॥ ७४ ॥
आपाते सुखदैः पुण्यमंते दुःखावतारिभिः ।
भूमिदानादिभिर्दत्तैर्न किं पाकफलैरिव ॥ ७५ ॥

अर्थ—जातैं पहले कहे जे समस्त दान तिनकरि दान ग्रहण करनेवालेकै सुख करिए है तातैं दाता पुण्यका भजनेवाला होय है ऐसा वचन योग्य नाहीं ॥७३॥ जातैं वर्त्तमानमैं तो तिन कुदाननि करि कुप-थ्यकी ज्यों सुख पाइए है अर तिनके विपाकविषैं अत्यंत दुःख होय है, कैसे है कुपथ्य दुःख करै है पचना जिनका अर लोककरि निंदित है तैसेही कुदान है ऐसा जानना ॥७४॥ वर्तमानमैं सुखदायक अर अन्तमैं दुःखके बढ़ावनेवाले ऐसे किंपाप फल समान जे दिये भये बहुत कुदानादि तिनकरि पुण्य नाहीं होय है ।

भावार्थ—कोऊ कहै कि पृथ्वीदानादि लेनेवाला सुखी होय है तातैं दाताकौं पुण्य होय है ताकौं कह्या है कि जैसे कुपथ्य वर्त्तमानमैं तो मीठा लागै, परन्तु प्राण ही हरै है अर किंपाकका फल खाते तो मीठा लागै पाछै प्राण हरै है तैसैं पृथ्वी आदि दाननिविषैं वर्त्तमानमैं सुखसा भासैं परन्तु आगामी हिंसादिकके योगतैं नरकादिकमैं लेने-वालेकौं तीव्र दुःख उपजायै है, तातैं देनेवालेकै पुण्य नाहीं पाप ही है ॥ ७५ ॥

प्रचुरोऽपात्रसंघाते मर्दयित्वाऽपि पोषिते ।
पात्रे संपद्यते धर्मो, नैषा भाषा प्रशस्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ—जीवनके समूहकौं नाशकैं भी पात्रकौं पोखे संते प्रचुर धर्म होय है ऐसी वाणी सराहने योग्य नाहीं ॥ ७६ ॥

ताका दृष्टान्तः—

निहत्य भेकसंदर्भं यः, प्रीणाति भुजंगमम् ।
सोऽश्नुते यादृशं पुण्यं, नूनमन्योऽपि तादृशम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—मीडंकानिके समूहकौं हनिकैं जो सर्पकौं पोखै है सो पुरुष जैसा पुण्यकौं ग्रहण करै है तैसा ही पुण्य निश्चयकरि और भी ग्रहण करै है ।

भावार्थ—जैसैं अनेक मीडँकानिकौं हनिकैं कोई सर्पकौं पोखै ताकै पाप होय तैसैं और जीवनकौं मारकै ब्राह्मणादिकनिके पोषनेतैं पाप होय है, पुण्य नाहीं; ऐसा जानना ॥ ७७ ॥

आत्मीकरोति यो दानं, जीवमर्दन सम्भवम् ।
आकांक्षन्नात्मनः सौख्यं, पात्रता तस्य कीदृशी ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो आपकै सुख वांछता संता जीवनिके घाततैं उपज्या जो दान ताहि ग्रहण करै है, ताकै पात्रता कैसी ।

भावार्थ—अयोग्य दान लेय सो पाप काहेका, वह तो अपाप ही है ॥ ७८ ॥

न सुवर्णादिक देयं न, दाता तस्य दायकः ।
न च पात्रं ग्रहीताऽस्य, जिनानामीति शासनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—सुवर्णादिक तो देने योग्य वस्तु नाहीं अर तिस सुवर्णादिकका देनेवाला दाता नाहीं अर इस दानका ग्रहण करनेवाला पात्र नाहीं, या प्रकार जिनदेवनिका शासन कहिए आज्ञा है ॥७९॥

पात्रं विनाशितं तेन, तेनाधर्मः प्रवर्तितः ।
येन स्वर्णादिकं दत्तं, सर्वानर्थविधायकम् ॥ ८० ॥

अर्थ—तिसनैं पात्रका तो विनाश किया अर तिसनैं अधर्म प्रवर्त्ताया जाकरि सर्व अनर्थनिका करनेवाला सुवर्णादिक दिया तानैं ।

भावार्थ—सुवर्णादिकत हिंसादिक पाप उपजै है तातैं लेनेवालेका तो नाश किया अर अधर्म प्रवर्त्ताया, तातैं कुदान देना योग्य नाहीं ॥ ८० ॥

आगैं देनेयोग्य वस्तुका वर्णन करै हैः—

रागो निपूयते येन येन धर्मो विवर्द्धयते ।
संयमः पोष्यते येन विवेको येन जन्यते ॥ ८१ ॥
आत्मोपशम्यते येन येनोपक्रियते परः ।
न येन नाश्यते पात्रं तद्दातव्यं प्रशम्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—जाकरि राग नाशकौं प्राप्त होय अर जाकरि धर्म वृद्धिकौं प्राप्त होय अर जाकरि संयम पुष्ट होय अर जाकरि विवेक उपजै ॥८१॥ अर जाकरि आत्मा उपशांत होय अर जाकरि परका उपकार होय अर जाकरि पात्रका बिगाड़ न होय सो देने योग्य वस्तु सराहिए है ॥८२॥

आगैं देनेयोग्य वस्तुके विशेष कहैं हैं—

अभयान्नौषधज्ञानभेदतस्तच्चतुर्विधम् ।
दानं निगद्यते सद्भिः प्राणिनामुपकारकम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—अभयदान १ अन्नदान २ औषधदान ३ ज्ञानदान ४ इन भेदनितैं प्राणिनिका उपकार करनेवाला दान सन्तन करि च्यार प्रकार कहिए है ॥ ८३ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां, जीवितव्ये यतः स्थितिः ।
तद्दानतस्ततो दत्तास्ते, सर्वे संति देहिनाम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जा कारणतैं धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी स्थिति जीवतव्य होत सन्तैं होय है तातैं जीवनकौं जीवितव्यके दानतैं धर्म अर्थ काम मोक्ष सर्व दिये ।

भावार्थ—जानैं जीवनकौं अभयदानादि दिया तानैं धर्म अर्थ काम मोक्ष दिये तातैं धर्मादिकका आधार जीवना ही है तातैं ॥८४॥

देवैरुक्तो वृणीष्वैकं, त्रैलोक्यप्राणितव्ययोः ।
त्रैलोक्यं वृणुते कोऽपि, न परित्यज्य जीवितम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—तीन लोक अर जीवितव्य इन दोऊनिमैंसैं एक ग्रहण कर ऐसैं देवनिकरि कह्या पुरुष जीवितव्यकौं छोड़ करि कहा तीन-लोककौं ग्रहण करै है, अपि तु नाहीं करै है ।

भावार्थ—जीवितव्यकैं आगै तीन लोककी सम्पदा कछू नाहीं जातैं जीवितव्यकौं छोड़करि कोऊ भी तीन लोककौं न चाहै है ॥८५॥

त्रैलोक्यं न यतो मूल्यं, जीवितव्यस्य जायते ।
तद्रक्षता ततो दत्तं, प्राणिनां किं च कांक्षितम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—जातैं जीवितव्यका माल तीन लोक न होय है तातैं जीवितव्यकी रक्षा करता जो पुरुष ताकरि प्राणीनिकौं कहा वांछित वस्तु न दिया, अपि तु सर्व ही दिया ॥ ८६ ॥

नाभीतिदानतो दानं, समस्ताधारकारणम् ।
महीयो निर्मलं नित्यं, गगनादिव विद्यते ।। ८७ ।।

अर्थ—आकाशकी ज्यौं समस्त आधारका कारण अर बड़ा अर निर्मल अर नित्य ऐसा अभयदानकै सिवाय और कोऊ दान नाहीं है ।। ८७ ।।

आगैं आहारदानका वर्णन करैं हैं—

आहारेण विना पुंसां, जीवितव्यं न तिष्ठति ।
आहारं यच्छता दत्तं, ततो भवति जीवितम् ।। ८८ ।।

अर्थ—आहार विना पुरुषनिका जीवितव्य न तिष्ठै है, तातैं आहारकौं देता जो पुरुष ताकरि जीवितव्य दिया ही होय हैं ।।८८।।

नेत्रानंदकरं सेव्यं, सर्वचेष्टाप्रवर्त्तिनम् ।
अन्धसा धार्यते देहं, जीवितेनेव जन्मिनाम् ।। ८९ ।।

अर्थ—जैसैं नेत्रनिकौं आनन्दकारी सेवने योग्य चेष्टाका प्रवर्त्तन करनेवाला आयुकरि जीवनिकै देह धारिये है तैसैं भोजनकरि देह धारिए हैं ।। ८९ ।।

कांतिः कीर्तिर्मतिः क्षांतिः शांति र्नीतिर्गती रतिः ।
उक्तिः शक्तिर्द्युतिः प्रीतिः प्रतीतिः श्रीर्व्यवस्थितिः ।। ९० ।।
आहारवर्जितं देहं सर्वे मुंचन्ति तत्वतः ।
द्राविणापाकृतं मर्त्यं वेश्या इव मनोरमाः ।। ९१ ।।

अर्थ—कांति, कीर्ति, बुद्धि, क्षमा, शांति, नीति, गति, रति, वाणी, शक्ति, दीप्ति, प्रीति, प्रतीति, लक्ष्मी, स्थिरता ये सर्व आहार रहित देहकौं निश्चयतैं छोड़ै हैं, जैसैं मनकौं प्यारी जे वेश्या ते द्रव्य रहित पुरुषकौं छोड़ै है ।। ९०–९१ ।।

शमो दमो दया धर्मः, संयमो विनयो नयः ।
तपो यशो वचोदाक्ष्यं, दीयतेऽन्नप्रदायिना ॥ ९२ ॥

अर्थ—कषायनकी मंदतारूप शम अर इंद्रियनिका दमन अर दया अर धर्म संयम अर विनय अर नय अर तप अर वचनका चतुर-पना ये सर्व अन्न देनेवाले पुरुषकरि दीजिए है ॥ ९२ ॥

क्षुद्रोगेण समो व्याधिराहारेण समौषधिः ।
नासीन्नास्ति न चाभावि, सर्वव्यापारकारिणी ॥ ९३ ॥

अर्थ—क्षुधारोग समान तो रोग अर भोजन समान औषधि सर्व व्यापारकी करावनेवाली न तौ आगैं भई अर न है अर न होयगी ॥ ९३ ॥

दुर्गंधिकुथितं शीर्णं, विवर्णं नष्टचेष्टितम् ।
भोजनेन विना गात्रं, जायते मृतकोपमम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—दुर्गंधरूप बिगड़ा सड़ा और वर्णकौं प्राप्त भया अर नष्ट भई है चेष्टा जाकी ऐसा शरीर है सो भोजन विना मृतक समान होय है ॥ ९४ ॥

न पश्यति न जानाति, न श्रणोति न जिघ्रति ।
न स्पृशति न वा वक्ति, भोजनेन विना जनः ॥ ९५ ॥

अर्थ—भोजन विना मनुष्य है सो न देखे है न जानै है न सुनै है न सूंघे है न स्पर्शै है अर न बोलै है सर्व चेष्टा नष्ट होय है ॥ ९५ ॥

प्रविक्रीयान्न कृच्छ्रेषु, कांताकन्यातनूभुवः ।
आहारं गृह्णते लोका, वल्लभानपि निश्चितम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—अन्नके कष्ट होने करि लोक हैं ते स्त्री कन्या पुत्र इन प्यारेनकूं भी बेचकरि आहारकौं निश्चयतैं ग्रहण करै है ॥ ९६ ॥

यया खादंत्यभक्ष्याणि, क्षुधया क्षपिता जनाः।
सा हन्यतेऽशनेनैव, राक्षसीव भयंकरा ॥ ९७ ॥

अर्थ—जिस क्षुधाकरि पीडित जन है ते अभक्षकौं खाय है सो क्षुधा राक्षसीकी ज्यों भयंकर भोजन करि ही नाश कीजिए है ॥९७॥

यथैवाहारमात्रेण शरीरं, रक्ष्यते नृणाम्।
चामीकरस्य कोटीभिर्वह्वीभिरपि नो तथा ॥ ९८ ॥

अर्थ—जैसी आहारमात्र करि मनुष्यनिके शरीरकी रक्षा करिए है तैसी बहुत कोटि सुवर्ण करि भी रक्षा न करिए है ॥ ९८ ॥

क्षिप्रं प्रकाश्यते सर्व माहारेण कलेवरम्।
नभो दिवाकरेणैव, तमोजालावगुंठितम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—जैसें अन्धकार करि व्याप्त जो आकाश सो सूर्यकरि प्रकाशिये है तैसें सर्व शरीर आहारकरि शीघ्र प्रकाशिए है ॥ ९९ ॥

न शक्नोति तपः कर्त्तुं, सरोगः संयतो यतः।
ततो रोगापहारार्थं देयं, प्रासुकमौषधम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जातैं रोग सहित संयमी है सो तप करनेकौं समर्थ न होय है तातैं रोगके दूर करनेके अर्थ प्रासुक औषधि देना योग्य है ॥१००॥

न देहेन विना धर्मो न, धर्मेण विना सुखम्।
यतोऽतो देहरक्षार्थं, भैषज्यं दीयते यतेः ॥ १०१ ॥

अर्थ—जातैं देह विना धर्म नाहीं अर धर्म विना सुख नाहीं जातैं देहकी रक्षाके अर्थ साधुकौं औषध देना योग्य है ॥१०१॥

शरीरं संयमाधारं, रक्षणीयं तपस्विनाम्।
प्रासुकैरौषधैः पुंसा, यत्नतो मुक्तिकांक्षिणा ॥ १०२ ॥

अर्थ—संयमका आधार जो तपस्वीनका शरीर सो मुक्तिका वांछक जो पुरुष ताकरि यत्नतें प्रासुक औषधनि करि रक्षा करनी योग्य है ॥ १०२ ॥

आगे शास्त्रदानका वर्णन करें हैं ।

विवेको जन्यते येन संयमो येन पाल्यते ।
धर्मः प्रकाश्यते येन मोहो येन विहन्यते ॥ १०३ ॥
मनो नियम्यते येन रागो येन निकृत्यते ।
तद्देयं भव्यजीवानां शास्त्रं निर्धूतकल्पषम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—जाकरि विवेक उपजाइए अर जाकरि संयम पालिए अर जाकरि धर्म प्रकाशिए अर जाकरि मोह हनिए ॥१०३॥ अर जाकरि मन निश्चल कीजिए अर जाकरि छेदिए तो नाश किया है पाप जानैं ऐसा शास्त्र भव्यजीवनिकौं देना योग्य है ॥१०४॥

विवेको न विना शास्त्रं, तमृते न तपो यतः ।
ततस्तपोविधानाथ देयं, शास्त्रमनिंदितम् ॥ १०५ ॥

अर्थ—जातैं शास्त्रविना विवेक नाहीं अर विवेकविना तप नाहीं तात तप करनेके अर्थि अनिंदित शास्त्र देना योग्य है ॥१०५॥

आग और भी दान देनेयोग्य वस्तुनिकों कहैं हैं ।

वस्त्रापात्राश्रयादीनि पराण्यपि यथोचितम् ।
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयवृद्धये ॥ १०६ ॥
वर्यमध्यजघन्यानां पात्राणामुपकारकम् ।
दानं यथायथं देयं वैयावृत्यविधायिना ॥ १०७ ॥

अर्थ—वस्त्र पात्र अर वसतिका इत्यादि कभी रत्नत्रयकी वृद्धिके अर्थ विधानसहित यथायोग्य देनायोग्य है ॥ १०६ ॥ वैयावृत्यका करनेवाला जो पुरुष ताकरि उत्तम मध्यम जघन्य पात्रनिका उपकार करनेवाला दाय यथायोग्य देनायोग्य है ॥ १०७ ॥

भावार्थ—पंच महाव्रतके धारक साधु तो उत्तम पात्र हैं, अर देशव्रती श्रावक मध्यम पात्र हैं, अर अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं

सो इनकौं यथायोग्य दान कहिए साधूनकौं साधूनके योग्य आहारादिक देना, श्रावकनकौं तथा अविरत सम्यग्दृष्टिनकौं योग्य वस्त्रपात्रादिक देना। ऐसैं जा पदमैं जो वस्तु देनायोग्य होय सो देना, ऐसा जानना ॥ १०८ ॥

आगैं अधिकारकौं संकोचैं हैं;

पोष्यंते येन चित्राः सकलसुखफलस्तोमरोपप्रवीणाः,
सम्यक्त्वज्ञानचर्यायमनियमतपोवृक्षजातिप्रबंधाः ।
भव्यक्षोणीषु तद्यः क्षतनिखिलमलं मुंचते दानतोयं,
तुल्यस्तस्योपकारी मधुरप्रकृतो भव्यमेघस्य नान्यः ॥१०८॥

अर्थ—समस्त सुखरूप फलनिके समूहके धारणेमैं प्रवीण जे नानाप्रकार ऐसा सम्यक्त ज्ञान चारित्र यम नियम तप रूप वृक्षनिकी जातिनके प्रबंध ते जाकरि पुष्ट कीजिए हैं, ऐसा जो दानरूप जल ताहि जो भव्यजीवरूप पृथ्वीनिविषैं त्यागै है वरसै है कैसा है जल नाश किये हैं समस्त मल जानैं ऐसा, सो उपकारी पुरुष मधुर शब्द करनेवाला जो मेघ ताके समान है अन्य ताके समान नाहीं।

भावार्थ—दान देनेवाला पुरुष मेघके समान है पूर्वोक्त मेघके विशेषण दाताके सम्भवै है अन्य कृपणके न सम्भवै हैं, ऐसा जानना ॥ १०८ ॥

वात्सल्यासक्तचित्तो नयविनयपरो दर्शनालंकृतात्मा ।
देयादेये विदित्वा वितरति विधिना यो यतिभ्योऽत्र दानं ॥
कीर्त्तिं कुन्दावदातामभितगतिमतां पूरयन्तीं त्रिलोकम् ।
लब्ध्वा क्षिप्रं प्रयाति क्षपितभवभयं मोक्षमक्षीणसौख्यं ॥१०९॥

अर्थ—वात्सल्य कहिए प्रीतिभाव तामैं है आसक्त चित्त जाका बहुरि नीति अर विनय विषैं परायण अर सम्यग्दर्शन करि भूषित है आत्मा जाका ऐसा जो पुरुष देने योग्य न देने योग्य वस्तुकौं जान-

करि विधिसहित यतीनके अर्थ दान देय है सो इस भवविषें तीनलोककौं पूरती ऐसी अनंतज्ञानीनि करि कही जो कुन्दके फूलसमान निर्मल कीर्त्ति ताहि पाय करि शीघ्र मोक्षकौं प्राप्त होय है, कैसा हैं मोक्ष दूर किया है संसारका भय जानें अर अक्षीण है सुख जाविषें।

भावार्थ—दानी पुरुष इन भवमैं तौ निर्मलकीर्ति पावै है अर परंपराय मोक्षकौं प्राप्त होय है यह दानका फल है ऐसा जानना॥१०९

छप्पय।

धर्म मांहि अतिप्रीति विनयजुत रीतिनीतिमति।
सम्यग्दर्शनविमलरत्नभूषित पुनीत अति॥
जोग अजोग विचार देत जो दानसहितविधि।
साधु जननिके अर्थि देखि गुणमणिअपारनिधि॥
सो तीनलोकमैं विमलजस पाय अमितगति जिनकथित।
पुनि लहै मोक्षपद अखयसुख ज्ञानमयी भवभयरहित॥

इत्युपासकाचारे नवमः परिच्छेदः।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं नवम परिच्छेद समाप्त भया।

दशम परिच्छेद।

आगैं पात्र कुपात्र अपात्रकौं कहै हैः—

पात्रकुपात्रापात्राण्यवबुद्ध्यः फलार्थिना सदा देयम्।
क्षेत्रमनवबुद्ध्योप्तं बीजं न हि फलति फलमिष्टम्॥ १॥

अर्थ—फलका अर्थी जो पुरुष ताकरि पात्र कुपात्र अपात्र इनकौं जानकरि सदा दान देना योग्य है, तातें क्षेत्रकौं विना जाने बोया जो बीज सो वांछित फलकौं नाहीं फलै है॥ १॥

तहां पात्रनिका स्वरूप कहै हैं:—

पात्रं तत्वपटिष्ठैरुत्तममध्यमजघन्यभेदेन।

त्रेधा क्षेत्रमिवोक्तं विविधफलनिमित्ततो ज्ञात्वा॥ २॥

अर्थ—*तत्वज्ञानीनतें तीनप्रकार फलके कारणतें जानकरि उत्तम* मध्यम जघन्य भेदकरि क्षेत्रकी ज्यों पात्र तीन प्रकार कह्या है॥२।

उत्तममुत्तमगुणतो मध्यमगुणतोऽथ मध्यमं पात्रम्।

विज्ञेयं बुद्धिमता जघन्यगुणतो जघन्यं च॥ ३॥

अर्थ—बुद्धिमान पुरुषकरि उत्तम गुणतें उत्तमपात्र जानना योग्य है, बहुरि मध्यमगुणतें मध्यम पात्र जानना योग्य है, अर जघन्य गुणतें जघन्य पात्र जानना योग्य है॥ ३॥

तत्रोत्तम तपस्वी विरताविरतश्च मध्यमं ज्ञेयम्।

सम्यग्दर्शनभूषः प्राणी पात्र जघन्यं च॥ ४॥

अर्थ—तहां तपस्वी मुनि तो उत्तम पात्र जानना योग्य है अर विरताविरत श्रावक मध्यम पात्र जानना योग्य है, अर सम्यग्दर्शन युक्त प्राणी है सो जघन्य पात्र जानना॥ ४॥

आगैं उत्तम पात्रका स्वरूप कहैं हैं—

जीवगुणमार्गणविधि विधानतो यो विबुध्य निःशेषम्।

रक्षति जीवनिकायं सवितेव परोपकारपरः॥ ५॥

पथ्यं तथ्यं श्रव्यं वचनं हृदयंगमं गुणगरिष्ठम्।

यो ब्रूते हितकारी परमानसतापतो भीतः॥ ६॥

निर्माल्यकमिव मत्वा पर वित्तं यस्त्रिधापि नाऽऽदत्ते।

दन्तांतरशोधनमपि पतितं दृष्ट्वाप्यदत्तमतिः॥ ७॥

तिर्यङ्मानवदेवाचेतनभेदां चतुर्विधां योषाम्।

परिहरति यः स्थिरात्मा मारीमिव सर्वथा घोराम्॥ ८॥

त्रिविधं चेतनजातं संगं चेतनमचेतनं त्यक्त्वा ।
यो नाऽऽदत्ते भूयो वांतमिवान्न त्रिधा धीरः ॥ ९ ॥
त्रिविधालंबनशुद्धिः प्रासुकमार्गेण यो दयाधारः ।
युगमात्रांतरदृष्टिः परिहरमाणोऽगिनो याति ॥ १० ॥
हृदयं विभूषयन्तीं वाणीं तापापहारिणीममलाम् ।
मुक्तानामिव मालां यो ब्रूते सूत्रसंबद्धाम् ॥ ११ ॥
षट्चत्वारिं शद्दोषापेढां यो विशुद्धनवकोटीम् ।
मृष्टामृष्टक्षमान भुक्तिं विदधाति विजिताक्षः ॥ १२ ॥
द्रव्यं विकृतिपुरः परमंगिग्रामप्रपालनासक्तः ।
गृह्णाति यो विमुंचति यत्नेन दयांगमाश्लिष्टः ॥ १३ ॥
निर्जंतुकेऽविरोधे दूरे गूढे विसंकटे क्षिपति ।
उच्चारप्रश्रवणश्लेष्माद्यं यः शरीरमलम् ॥ १४ ॥
जिनवचनपंजरस्थं विधाय बहुदुःखकारणं क्षिप्रम् ।
विदधाति यः स्ववश्यं मर्कटमिव चंचलं चित्तम् ॥ १५ ॥
यो वचनौषधमनर्घं जरामरणरोगहरणपरम् ।
बहुशो मौनविधायी ददाति भव्यांगिनां महितम् ॥ १६ ॥
कायोत्सर्गविधायी कर्मक्षयकारणाय भवभीतः ।
कृत्याकृत्यपरो यः कार्यं वितनोति सूत्रमतम् ॥ १७ ॥
यस्येत्थं स्थेयस्य सम्यग्व्रतसमितिगुप्तयः संति ।
प्रोक्तः स पात्रमुत्तममुत्तमगुणभाजनं जैनैः ॥ १८ ॥

अर्थ—जो जीवस्थान गुणस्थान मार्गणास्थानके भेदनकौं विधानतैं जानकरि जीवनके समूहकी रक्षा करै है अर सूर्यकी ज्यौं पराये उपकारमें तत्पर है ।

भावार्थ—जो जैसें सूर्य अपेक्षारहित जीवनिकौं प्रकाश करै है

तैसैं अपेक्षा विना जो परके उपकारमैं तत्पर है ॥ ५ ॥ बहुरि जो हितरूप सत्यार्थ सुननेयोग्य हृदयकौं प्यारा गुणनिकरि गरुवा ऐसे वचनकौं बोलै है, कैसा है सो हितका करनेवाला अर परके मनकौं ताप उपजावनेतैं भयभीत है ॥ ६ ॥ बहुरि जो परधनकौं निर्माल्यवत् मानकरि दांतनका अन्तर शोधन मात्र तृणादिक भी मन वचन काय करि ग्रहण नाहीं करै है कैसा है सो पड़े द्रव्यकौं देखकर भी अदत्तकी है बुद्धि जाकै।

पड़ी वस्तुकौं भी देखकर अदत्त मानकर ग्रहण न करै है ॥७॥ बहुरि थिर है आत्मा जाका ऐसा जो तिर्यंचणी मनुष्यणी देवांगना अचेतन पुतली आदि भेदरूप ऐसी च्यार प्रकार स्त्रीकौं भयानक मारी रोगकी ज्यौं सर्वथा त्यागै है ॥ ८ ॥ बहुरि जो धीर नाना प्रकार चेतनतैं उपज्या चेतन परिग्रह स्त्री पुत्रादिक अर अचेतन परिग्रह धन धान्यादिक ताहि त्याग करि फेरि वमन किये अन्नकी ज्यौं ग्रहण नाहीं करै है ॥ ९ ॥ बहुरि प्रासुक मार्ग करि जीवनिकौं बचावता गमन करै है कैसा है सो तीन प्रकार मन, वचन, कायके आलंबनतैं है शुद्धि जाकै, बहुरि दयाका आधार, युग प्रमाण आंतरै है दृष्टि जाकी।

च्यार हाथ तांई क्षेत्र देखकरि चालै है ऐसा है ॥१०॥ बहुरि जो हृदयकौं भूषित करती आतापकौं हरनेवाली अर सूत्रकरि भले प्रकार बन्धी ऐसी मोतीनकी माला समान जो वानी ताहि बोलै है।

मोतीकी माला हृदयकौं शोभित करै है सो यह वाणी भी हृदय जो चित्त ताकौं शोभित करै है अर माला आताप हरै है अर माला सूत्र कहिये डोरा तासूं बन्धी है अर वाणी जिनभाषित सूत्रसूं बंधी है ऐसी समान उपमा जाननी ॥११॥

बहुरि जो छयालीस दोष रहित अर नवकोटी शुद्ध आहार ताहि ग्रहण करै है, भले बुरे आहारमें है समान बुद्धि जाकी अर जीती है इन्द्रिय जानैं ॥ १२ ॥ बहुरि जो विकृति कहिये हस्त धोवनादि कार्यके अर्थ भस्म अर आदि शब्द करि पीछी कमंडलु सांथरा इत्यादि वस्तुकौं यत्नसहित ग्रहण करै है, जीवनके समूहके पालनेमैं आसक्त है चित्त जाका अर दयाके अंग प्रति लिपट रह्या है ॥ १३ ॥

बहुरि जो जीवरहित अर विरोध रहित बहुरि दूर गुप्त अर संकट रहित विस्तीर्ण ऐसे क्षेत्र विषैं मल मूत्र कफ आदि शरीरके मलकौं क्षेपे हैं ॥ १४ ॥ बहुरि जो बहुत दुःखका कारण वादरा समान चञ्चल जो चित्त ताहि जिन वचन रूप पींजरेमें बैठाय करि शीघ्र अपने वश करै है ॥ १५ ॥

बहुरि जो जन्मजरामरणरूप रोगके हरणेमैं तत्पर ऐसी निर्दोष अर पूजित जो वचनरूप औषधि ताहि भव्यजीवनकौं देय है सो बहुधा मौनका धारनेवाला है।

भावार्थ—मुख्यपनैं तौ मौन ही धारै है अर कदाच बोलै है, तौ सबका हितकारी वचन बोलै है। ऐसा जानना ॥ १६ ॥ बहुरि जो कर्मनिके क्षयके अर्थ कायोत्सर्ग करै है अर संसारतैं भयभीत है अर जो करनेयोग्य न करने योग्यका ज्ञाता जिनसूत्रभाषित कार्यकौं करै है ॥ १७ ॥ जा मुनिकै या प्रकार सम्यक् पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति है सो उत्तम पात्र उत्तम गुणनिका भाजन जैनीनि करि कह्या है ॥ १८ ॥

इन तेरह श्लोकनिमैं तेरह प्रकार चारित्रका वर्णन किया, जो इनकौं धारै है सो उत्तम पात्र जानना, आगैं इस ही उत्तम पात्रका विशेष स्वरूप कहैं हैं—

राग द्वेषो मोहो लोभः क्रोधो मदः स्मरो माया ।
यं परिहरंति दूरं दिवाकरमिवांधकारचयाः ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसें सूर्यकौं अंधकारके समूह दूर त्यागैं है तैसें जा मुनिकौं राग द्वेष मोह क्रोध लोभ मान काम माया दूर परिहरै है ।

भावार्थ—जाकै रागादिकका अभाव भया है ॥ १९ ॥

दर्शनबोधचरित्रत्रितयं यस्यास्ति निर्मलं हृदये ।
आनंदितभव्यजनं विमुक्तिलक्ष्मीवशीकरणम् ॥ २० ॥

अर्थ—जाके हृदय विषैं निर्मल दर्शनज्ञान चारित्रका त्रितय है, कैसा है दर्शन ज्ञानचारित्रका त्रितय आनंदकौं प्राप्तकिये हैं भव्यजीव जानैं अर मुक्तिलक्ष्मीका वश करनेवाला है ॥ २० ॥

यस्यानवद्यवृत्तेरंगममिव मंदिरं तपोलक्ष्म्याः ।
कायक्लेशैरुग्रैर्वशीकृतं राजते गात्रम् ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुरि जिस मुनिका शरीर उग्र कायक्लेशनि करि कृश किया चालता तप लक्ष्मीका मंदिर समान सोहै है, कैसा है सो मुनि पाप रहित है प्रवृत्ति जाकी ॥ २१ ॥

यैर्विजिता जगदीशा, विविधा विपदः सदा प्रपद्यन्ते ।
तानींद्रियाणि सद्यो, महीयसा येन जीयन्ते ॥ २२ ॥

अर्थ—जिन इंद्रियनि करि जीते जे इंद्रादिक ते नाना प्रकार विपदानकौं सदा प्राप्त होय हैं ते इंद्रिय जिस महात्मा करि तत्काल जीतिए है ।

भावार्थ—वे साधू इंद्रियनिके वस करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

पूजायामपमाने सौख्ये, दुःखे समागमे विगमे ।
क्षुभ्यति यस्य न चेतो, पात्रमसावुत्तमः साधुः ॥ २३ ॥

अर्थ—पूजा विषैं तथा अपमानविषैं, सुखविषैं अर दुःखविषैं,

लाभविषैं अलाभविषैं, जाका चित्त रागद्वेषकौं न प्राप्त होय है सो यह साधु उत्तम पात्र है ॥ २३ ॥

यस्य स्वपरविभागो न विद्यते निर्ममत्वचित्तस्य ।
निर्बाधबोधदीपप्रकाशिताशेषतत्वस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस मुनिकै स्वपरका विभाग नाहीं है कैसा है सो मुनि पर वस्तुमैं ममता रहित है चित्त जाका अर बाधारहित ज्ञान दीपक करि प्रकाशे हैं समस्त पदार्थ जानैं ।

भावार्थ—जिस मुनिकै मोहके अभावसैं परद्रव्यमैं यह मेरा है यह पराया है ऐसा भेद नाहीं सबनिकौं ज्ञेय मात्र करि जानै है ॥२४॥

संसारवनकुठारं दातुं, कल्पद्रुमफलमभीषम् ।
यो धत्ते निरवद्यं क्षमादिगुणसाधनं धर्मम् ॥ २५ ॥

अर्थ—जो मुनि निर्दोष क्षमादि गुण हैं साधन जाके ऐसे धर्मकौं धारै है, कैसा है धर्म संसार वनके छेदनकौं कुठार समान है, अर वांछित फल देनेकौं कल्पवृक्ष समान है ॥ २५ ॥

लोकाचारनिवृत्तः कर्ममहाशत्रुमर्दनोद्युक्तः ।
यो जातरूपधारी संयतपात्रं मतं वर्यम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जो मुनि लौकिक आचारतैं निवृत्त है अर कर्मरूप महा-शत्रुके नाश करनेमैं उद्यमी है अर जातरूप कहिए माताके गर्भतैं जैसा उपज्या तैसा नग्नरूपका धारी मुनि उत्तम पात्र कह्या है ॥२६॥

ऐसैं उत्तम पात्रका स्वरूप कह्या, आगैं मध्यम पात्रका स्वरूप कहैं हैं—

राकाशशांकोज्ज्वलदृष्टिभूषः, प्रवर्द्धमानव्रतशीललक्ष्मीः ।
सामायिकारोपितचित्तवृत्ति, निरन्तरोपोषितशोषितांगः ॥ २७ ॥
सचेतनाहारनिवृत्तचित्तो, वैरंगिको मुक्तदिनव्यवायः ।
निरस्तशश्वद्गमितोपभोगो, निराकृतासंयमकारि कर्मा ॥ २८ ॥

निवारिताशेषपरिग्रहेच्छः, सावद्यकर्मानुमतेरकर्त्ता।
औद्देशिकाहारनिवृत्तबुद्धि, दुरंतसंसारनिपातभीतः ॥ २९ ॥
उपासकाचारविधिप्रवीणो, मंदीकृताशेषकषायवृत्तिः।
उत्तिष्ठते यो जननव्यपाये, तं मध्यमं पात्रमुदाहरन्ति ॥ ३० ॥

अर्थ—पूर्णमासीके चन्द्रमा समान निर्मल जो सम्यग्दर्शन सोही है आभूषण जाके, बहुरि वर्द्धमान है पंच अणुव्रत अर सात शील इनकी लक्ष्मी जाके, बहुरि सामायिकविषैं आरोपित करी है चित्तकी वृत्ति तानैं अर सदा प्रोषधोपवास करि सोह्या है अंग जानैं ॥२७॥ सचित्त आहारतैं निवृत्त है चित्त जाका अर विमुक्तरूप है, तथा छेड्या है दिनविषैं मैथुन जानैं, अर दूर किया है। निरन्तर स्त्रीका उपभोग जानैं अर दूर किये हैं असंयमके करनेवाले कार्य जानैं॥२८॥ बहुरि विनाशी है समस्त परिग्रहकी इच्छा जानैं, बहुरि पाप सहित कार्यमैं अनुमोदनैनाकौं नाहीं करै है। बहुरि आपके उद्देशकरि किया जो आहार ता विषै निवृत्त है बुद्धि जाकी ऐसा जो ससार ताके पडनेतैं भयभीत है ॥ २९ ॥ उपासकाचारकी विधिमैं प्रवीण अर मंद करी है समस्त कषायनिकी प्रवृत्ति जानैं ऐसा जो पुरुष संसारके नाश विषैं उद्यमी है ताहि मध्यम पात्र कहैं हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इति दर्शनादि उद्दिष्टाहारविरतिपर्यंत ग्यारह प्रतिमानकूं जो धारै है सो श्रावक मध्यम पात्र जाननां। इहां इतना और जानना। पहली दर्शन प्रतिमा तो अवश्य चाहिए ताके होतैं बाकी दोय प्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमा पर्यंत श्रावक ही है ॥ २७–३० ॥

ऐसैं मध्यम पात्रका स्वरूप कह्या, आगैं जघन्य पात्रका स्वरूप कहैं हैं—

कुमुदबांधवदीधितिदर्शनो, भवजरामरणार्तिविभीलुकः।
कृतचतुर्विध संघहिते हितो, जननभोगशरीरविरक्तधीः ॥ ३१ ॥

भवति यो जिनशासनभासकः, सततनिंदनगर्हणचंचुरः ।
स्वपरतत्वविचारण कोविदो, व्रतविधाननिरुत्सुकमानसः ॥ ३२ ॥
जिनपतिरिततत्वविचक्षणो, विपुलधर्मफलेक्षणतोषितः । .
सकलजन्तुदयार्द्रितचेतन, स्तमिह पात्रमुशंति जघन्यकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—चन्द्रमाकी किरण समान निर्मल है सम्यग्दर्शन जाका बहुरि जन्म जरा मरणकी पीडातैं भय है अर करुणा है च्यार प्रकार संघके हितविषै हित कहिये प्रीतिरूप भाव जानैं अर संसारके भोग शरीरविषैं विरक्त है बुद्धि जाकी ॥ ३१ ॥ बहुरि जो जिन शासनका प्रकाशक है, अर निरन्तर अपनी निंदा गर्हा विषैं प्रवीण है, बहुरि आत्मतत्व अर परतत्व इनके विचारमैं पंडित है, बहुरि व्रतनिके आचरणविषैं निरुत्सुक है मन जाका। भावार्थ व्रत न धार सकै है ॥ ३२ ॥ बहुरि जिनभाषित तत्वविषैं विचक्षण है, अर बड़ा जो धर्मका फल ताके देखनेतैं सन्तुष्ट है।

भावार्थ—धर्मका मुख्य फल जो मोक्ष ता सिवाय अन्य फल न चाहै है, अर समस्त प्राणीनिकी दया करि भीज रह्या है चित्त जाका ऐसा जो अविरत सम्यग्दृष्टी ताहि इहां जघन्यपात्र कहैं हैं ॥ ३३ ॥

आगैं कुपात्रका स्वरूप कहैं हैं—

चरति यश्चरणं परदुश्चरं, विकटघोरकुदर्शनवासितः ।
सकलसत्वहितोद्यतचेतनो, वितथकर्कशवाक्यपराङ्मुखः ॥ ३४ ॥
धनकलत्रपरिग्रहनिस्पृहो, नियमसंयमशीलविभूषितः ।
कृतकषायहृषीकविनिर्जयः, प्रजिगदंति कुपात्रमिमं बुधाः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो परकौं कठिन है आचरण जाका ऐसे आचरणकौं आचरै है, अर विकट अर भयानक ऐसे मिथ्यादर्शन करि वासित है, बहुरि सर्व जीवनिके हितमैं उद्यमी है मन जाका, अर झूंठ अर

कठोर ऐसे वचनतैं पराङ्मुख है ।। ३४ ।। बहुरि धन स्त्री परिग्रहतैं निस्पृही है, अर नियम संयमशील इन करि भूषित है, बहुरि करथा है कषाय अर इंद्रियनिका पराजय जानैं ऐसा है, इस पुरुषकौं पंडितजन हैं ते कुपात्र कहैं हैं ।। ३५ ।।

भावार्थ—जो कायक्लेशादि करै है अर व्रत धारै अर कषाय इंद्रियनिकौं भी जीतै है अर सम्यक्त रहित है सो कुपात्र है ऐसा जानना ।। ३४-३५ ।।

आगैं अपात्रका स्वरूप कहैं हैं—

गतकृपाः प्रणिहन्ति शरीरिणो, वदति यो वितथं परुषं वचः ।
हरति वित्तमदत्तमनेकधा, मदनबाणहतो भजतेऽगनाम् ।। ३६ ।।
विविधदोषविधायिपरिग्रहः, पिबति मद्यमयंत्रितमानसः ।
कृमिकुलाकुलितं भसते पलं, कलिलकर्मविधानविशारदः ।। ३७ ।।
दृढकुटुंबपरिग्रहपंजरः, प्रशमशीलगुणव्रतवर्जितः ।
गुरुकषायभुजंगमसेवितं, विषयलोलमपात्रमुशंति तम् ।। ३८ ।।

अर्थ—जो दयारहित जीवनकौं हनै है, बहुरि झूँठ अर कठोर वचनकौं बोलै है, अर बिना दिये धनकौं अनेक प्रकार हरै है, अर कामबाण करि पीड़ित भया सन्ता स्त्रीकौं सेवै है ।।३६।। अर नाना दोषनिका करनेवाला जो परिग्रहता सहित है, अर नाहीं है वशीभूत मन जाका ऐसा भया सन्ता मदिराकौं पीवै है, अर कीड़ाके समूहकरि व्याप्त जो मांस ताहि अर पाप कर्म करणे विषैं प्रवीण है ।।३७।। अर दृढ़ कुटुम्ब परिग्रहके पींजरा सहित है, बहुरि समता-शील गुणव्रत इन करि वर्जित है तिस विषय-लोलुपीकौं आचार्य अपात्र कहैं हैं, कैसा है सो तीव्र-कषायरूप सर्पकरि सेवित हैं ।।३८।।

भावार्थ—सम्यक्त अर व्रतादिक इन दोऊनि करि रहित है सो अपात्र है ।

विबुद्धय पात्रं बहुधेति पंडितै, विशुद्धबुद्धया गुणदोषभाजनम्।
विहाय गर्ह्यं परिगृह्य पावनं, शिवाय दानं विधिना वितीर्यते ॥३९॥

अर्थ—या प्रकार पंडितकरि निर्मल बुद्धिकरि गुण अर दोषनिका भाजन जो बहुत प्रकार पात्र ताहि जानकै अर निंदनीककौं त्यागिकै अर पवित्रकौं ग्रहण करकैं मोक्षके अर्थ विधि सहित दान दीजिए है।

भावार्थ—या प्रकार गुण दोषनतैं पात्र अर अपात्रकौं जानिकैं मोक्षकै अर्थ अपात्रनिकौं त्यागकै पात्रनिकौं दान देना योग्य है ॥३९॥

आगैं उत्तम पात्रनिकौं आहार देनेकी विधि कहैं हैं—

कृतोत्तरासंगपवित्रविग्रहो, निजालयद्वारगतो निराकुलः।
ससंभ्रमं स्वीकुरुते तपोधनं, नमोऽस्तु तिष्ठेति कृतध्वनिस्ततः ॥ ४० ॥
सुसंस्कृते पूज्यतमे गृहांतरे, तपस्विनं स्थापयते विधानतः।
मनीषितानेकफलप्रदायकं, सुदुर्लभं रत्नमिवास्तदूषणम् ॥ ४१ ॥
अनेकजन्मार्जितकर्मकर्त्तिन, स्तपोनिधेस्तत्र पवित्रवारिणा।
स सादरः क्षालयते पदद्वयं, विमुक्तये मुक्तिसुखाभिलाषिणः ॥ ४२ ॥
प्रसूनगन्धाक्षतदीपकादिभि, प्रपूज्य मर्त्यामरवर्गपूजितम्।
मुदा मुमुक्षोः पदपंकजद्वयं, स वंदते मस्तकपाणिकुड्मलः ॥ ४३ ॥
मनोवचः कायविशुद्धिमंजसा, विधाय विध्वस्तमनोभवद्विषः।
चतुर्विधाहारमहार्यनिश्चयो, ददाति सः प्रासुकमात्मकल्पितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—करया है उज्ज्वल धोवती दुपट्टा सहित पवित्र शरीर जानैं, बहुरि अपने घरके द्वारमें प्राप्त भया आकुलता रहित ऐसा भया सन्ता मुनिराजकौं अंगीकार करै है, कैसा है सो नमस्कार होऊं, हे मुनीन्द्र इहां तिष्ठौ ऐसैं करया है शब्द जानैं ॥ ४० ॥ बहुरि ता पीछैं भले प्रकार किया है संस्कार जाका।

भावार्थ—दया सहित लगा है चौका आदि जहां ऐसे अतिशय

करि प्रशंसा योग्य घरके भीतर तपस्वीकौं विधानतैं स्थापित करै, कैसा है तपस्वी वांछित अनेक फलका देनेवाला है, अर दूषण रहित रत्नकी ज्यों भले प्रकार दुर्लभ है ॥ ४१ ॥ अनेक जन्मकरि उपार्जे जे कर्म तिनका काटनेवाला ऐसा जो तपोधन मुनि ताके तहां पवित्र जल करि सो आदर सहित चरण युगलकौं मुक्तिके अर्थ प्रक्षालन करै है, कैसे हैं मुनि मुक्तिके सुखकी है अभिलाषा जाकै ॥ ४२ ॥ बहुरि मनुष्य अर देवनके समूहकरि पूजित जो मोक्षभिलाषी मुनिका चरणयुगल ताहि पुष्प गन्ध अक्षत दीपक इत्यादि द्रव्यनि करि हर्ष सहित वंदे है, अर मस्तकसे लगाए हैं हस्तकमल जानें ॥ ४३ ॥ बहुरि नाश किया है कामरूप वैरी जानें ऐसे मुनिकौं मन, वचन, कायकी विशुद्धिता भले प्रकार करके आपके अर्थ किया जो चार प्रकार प्रासुक आहार ताहि देय है, कैसा है सो पुरुष नाहीं हरणे योग्य है निश्चय जाका ।

भावार्थ—दृढ़ है श्रद्धान जाका ऐसा है ॥ ४४ ॥

अनेन दत्तं विधिना तपस्विनां, महाफलं स्तोकमपि प्रजायते ।
वसुन्धरायां वटपादपस्य किं, न बीजमुप्तं परमेति विस्तरम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—इस विधि सहित तपस्वीनकौं थोडा दिया जो दान सो महाफल उपजावै है। जैसैं पृथ्वीविषैं बोया जो वटवृक्षका बीज सो कहा उत्कृष्ट विस्तारकौं प्राप्त न होय है, होय ही है ॥ ४५ ॥

निवेशितं बीजमिलातलेऽनघे, विना विधानं न फलावहं यथा ।
तथा न पात्राय वितीर्णमंजसा, ददाति दानं विधिना विना फलम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जैसैं निर्दोष पृथ्वीतल विषैं बोया भया बीज है सो विधान जो जतन आदि क्रिया ता बिना फलदाता न होय है तैसैं पात्रके अर्थ भले प्रकार दिया भया दान है सो विधि जो पडगाहन आदि ता बिना फलकौं न देय है ॥ ४६ ॥

सदाऽतिथिभ्यो विनयं वितन्वता, निजं प्रदेयं प्रियजल्पिना धनम् ।
प्रजायते कर्कशभाषिण: स्फुटं, धनं वितीर्णं गुरुवैरकारणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—विनयको विस्तारता अर मिष्ट वचन बोलता जो पुरुष ताकरि पात्रनिके अर्थ अपना धन कहिये यथायोग्य अहारादि वस्तु देना योग्य है जातैं कठोर वचन बोलनेवालेकै दिया भया वस्तु है सो प्रकटपने महावैरका कारण होय है ॥ ४७ ॥

निगद्य य: कर्कशमस्तचेतनो, निजं च दत्ते द्रविणं शठत्वत: ।
सुखाय दु:खोदयकारणं परं, मूल्येन गृह्णाति स दुर्मन: कलिम् ॥४८॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी कठोर वचनकौं बोलकै अर मूर्खपनातैं अपना द्रव्य देय है सो दुष्टचित सुखके अर्थ केवल दु:खके उदयका कारण जो पाप कलह ताहि मूल्यतैं ग्रहण करै है ।

भावार्थ—जो खोटा वचन बोलकै दान देय है सो उलटा पाप बन्ध करै है ॥ ४८ ॥

सम्यग्भक्तिं कुर्वत: संयतेभ्यो, द्रव्यं भावं कालमालोक्य दत्तम् ।
दातुर्दानं भूरि पुण्यं विधत्ते, सामग्र्या: सर्वकार्यप्रसिद्धि: ॥ ४९ ॥

अर्थ—भले प्रकार भक्तिकौं करता जो दाता ताके द्रव्य भाव काल इनकौं विचारकै दिया भया दान है सो घने पुन्यकौं उपजावै है जातैं सर्व कार्यकी प्रसिद्धि है सो सामग्रीतैं होय है ।

भावार्थ—भक्ति सहित द्रव्यादिक पूर्व कहे प्रमाण विचारकै पात्रनिके अर्थ थोड़ा भी दिया दान है सो बहुत पुण्य बन्धकौं करै है, इहां द्रव्य भाव काल तो कहे अर क्षेत्र पात्रनिकौं जान लेना॥४९॥

बलाहकादेकरसं विनिर्गतं, यथा पयो भूरिरसं निसर्गत: ।
विचित्रमाधारमवाप्य जायते, तथा स्फुटं दानमपि प्रदातृत: ॥५०॥

अर्थ—जैसें मेघतैं निकस्या जो एक रसरूप जल सो स्वभावहीतैं

नाना प्रकार आधारकौं पाय करि अनेक स्वरूप होय है तैसैं दातातैं निकस्या दान भी प्रकटपने नाना प्रकार पात्रनिकौं पाय अनेक प्रकार रूप परिणमै है।

भावार्थ—जैसें पात्रकौं दान दीजिए तैसा ही कर्मबन्ध स्वयमेव होय है, ऐसा जानना ॥ ५० ॥

घटे यथाऽऽमे सलिलं निवेशितं, पलायते क्षिप्रमसौ च भिद्यते।
तथा वितीर्णं त्रिगुणाय निष्फलं, प्रजायते दानमसौ च नश्यति ॥५१॥

अर्थ—जैसें काचे घट विषैं धरया जो जल है सो शीघ्र निकल जाय है अर घट भी फूट जाय है तैसें गुण रहित पुरुषके अर्थ दिया भया दान है सो निष्फल होय है अर वो लेनेवाला भी नाशकौं प्राप्त होय है, पापबंध करै है, ऐसा जानना ॥ ५१ ॥

विना विवेकेन यथा तपस्विता, यथा पटुत्वेन विना सरस्वती।
तथा विधानेन विना वदान्यता, न जायते शर्मकरी कदाचन ॥५२॥

अर्थ—जैसें विना विवेक तपस्वीपना अर चातुर्यपना विना सरस्वती कदाचित् सुखकारी न होय है तैसें पूर्वोक्त विधान विना दान देना कदाच सुखकारी नाहीं ॥ ५२ ॥

यथा वितीर्णं भुजङ्गाय पावनं, प्रजायते प्राणहरं विषं पयः।
भवत्यपात्राय धनं गुणोज्ज्वलं, तथा प्रदत्तं बहुदोषकारणम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—जैसें सर्पके अर्थ दिया भया जो पवित्र दूध सो प्राणनका हरनेवाला विष होय है तैसें अपात्रके अर्थ गुणनि करि उज्ज्वल जो धन सो दिया भया बहुत दोषका कारण होय है ॥ ५३ ॥

वितीर्य यो दानमसंयतात्मने, जनः फलं कांक्षति पुण्यलक्षणम्।
वितीर्य बीजं ज्वलिते स पावके, समीहते सस्यमपास्तदूषणम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य असंयत मनुष्यके अर्थ दान देकरि पुण्य है

लक्षण जाका ऐसे फलकों चाहै है सो जलती अग्निविषें बीजकों बोय करि दूषण रहित धान्यकों वांछै है ।

भावार्थ—विषय कषायनि सहित मदोन्मत्त मिथ्यादृष्टीनकों दान देकै पुण्य चाहै है सो नाहीं होय है । बहुरि इहां असंयमीकों दान निषेध्या सो दुःखित जीवनिकों करुणा दान नाहीं निषेध्या है, ऐसा जानना ॥ ५४ ॥

विमुच्य यः पात्रमवद्यविच्छिदे, कुधीरपात्राय ददाति भोजनम् ।
स कर्षितं क्षेत्रमपोह्य सुन्दरं, फलाय बीजं क्षिपते बतोपले ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो पुरुष पापके नाशके अर्थ पात्रकों छोड़कै अपात्रकों भोजन देय है तहां आचार्य कहैं हैं बड़े खेदकी बात है, जो सुन्दर जोते भये खेतकों छोड़करि पत्थर विषें बीजकों खेपै है ॥ ५५ ॥

यथा रजोधारिणि पुष्टिकारणं, विनश्यति क्षीरमलावुनि स्थितम् ।
प्ररूढमिथ्यात्वमलाय देहिने, तथा प्रदत्तं द्रविणं विनश्यति ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसें पुष्टिकारी जो दूध सो धूरकी धारनेवाली जो तूंबडी ताविषें धरया भया नाशकों प्राप्त होय है तैसें फैल रह्या है मिथ्यात्वरूप मल जाकै ऐसे प्राणीकों दिया भया द्रव्य है सो नाशकोंप्राप्त होय है।

भावार्थ—जैसैं धूल भरी कटुक तूँबडी विषैं भरया दूध नाशकों प्राप्त होय अर कटुक परिणमैं तैसें मिथ्यादृष्टीकों दिया धन नाशकों प्राप्त होय है अर पापबन्ध करै है, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

नो दातारं मन्मथाक्रान्तचित्तः, संसारार्तेः पाति पापावलीढः ।
अम्भोराशेर्दुस्तरा लोहमय्या, नावा लोहं तार्यमाणं न दृष्टम् ॥५७॥

अर्थ—कामकरि व्याप्त है चित्त जाका ऐसा पापरूप पुरुष सो दाताकों संसारकी पीडातें न बचावै है, जातें दुस्तर समुद्रतें लोहमयी नावकरि लोह तिराया न देख्या है ॥ ५७ ॥

ग्रन्थारम्भक्रोधलोभादि पुष्टो, ग्रन्थारम्भक्रोधलोभादिपुष्टम् ।
जन्माराते रक्षितुं तुल्यदोषो, नूनं शक्तो नो गृहस्थो गृहस्थम् ॥५८॥

अर्थ—आचार्य तर्क करि कहैं हैं-अहो ! जो परिग्रह आरम्भ क्रोध, लोभ इत्यादिकनि करि पुष्ट है, परिग्रहकरि गुरु है सो परिग्रह आरम्भ क्रोध लोभ आदि करि पुष्ट जो गृहस्थ ताहि संसार वैरीतैं रक्षा करनेकौं समर्थ नाहीं, कैसा है सो गुरु गृहस्थ समान है दोष जा विषैं ।

भावार्थ—परिग्रहादि दोषनि करि तैसा दाता तैसा ही पात्र सो दोष सहित पात्रका कैसैं भला करै ऐसी आचार्यनैं तर्क करी है, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

लोभमोहमदमत्सरहीनो, लोभमोहमदमत्सरगेहम् ।
पातिजन्मजलधेरपरागो, रागवन्तमपहस्तितपापः ॥ ५९ ॥

अर्थ—दूर किया है पाप जानै ऐसा वीतराग लोभ मोह मद भावकरि रहित पात्र है सो लोभ मोह मद मत्सर भावनिका घर जो रागी पुरुष ताहि संसार-समुद्रतैं रक्षा करै है ।

भावार्थ—रागी जीवनकौं तारनेकौं वीतराग ही समर्थ है अन्य नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५९ ॥

सर्वदोषनिचिताय फलार्थी, यो ददाति धनमस्तविचारः ।
तद्दधाति स मलिम्लुचहस्ते, कानने पुनरपि ग्रहणाय ॥६०॥

अर्थ—जो विचाररहित पुरुष फलका अर्थी दोषनि करि व्याप्त पुरुषके अर्थ धनकौं देय है सो वन विषैं चौरनके हाथमें फेर पाछा लेनेकै अर्थ धन सौंपै है ॥ ६० ॥

दानं यतिभ्यो ददता विधानतो, मतिर्विधेया भवदुःखशांतये ।
दुरंतसंसारपयोधिपातिनी, न भोगबुद्धिर्मनसाऽपि धीमता ॥ ६१ ॥

अर्थ—विधान सहित यतीनके अर्थि दान देत

ताकरि संसार दुःखकी शांतिके अर्थि बुद्धि करनी योग्य है, अर दूर है अन्त जाका ऐसा जो संसार-समुद्र ताविषै पटकनेवाली जो भोगनिकी बुद्धि सो बुद्धिवानकरि मनकरि भी करनी योग्य नाहीं ।

भावार्थ—दान देकरि परमार्थहीकी बुद्धि करनी, भोगनिकी अभिलाषा न करनी ॥ ६१ ॥

प्रदाय दानं व्रतिनां महात्मनां, यो याचते भोगमनर्थकारणम् ।
मनीषितानेकसुखप्रदं मणिं, प्रदाय गृह्णाति स दुर्जरं विषम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो पुरुष महात्मा व्रतीनकौं दान देकरि अनर्थका कारण जो भोग ताहि वांछै है सो वांछित अनेक सुखका देनेवाला जो रत्न ताहि देकरि दुर्जर विषकौं ग्रहण करै है ॥ ६२ ॥

पन्नागानामिव प्राणिवित्रासिना, मर्जने रक्षणे पोषणे सेवने ।
याति घोराणि दुःखानि येषां जनः, संति भोगाः कथं ते मतः धीमताम् ॥

अर्थ—प्राणीनकौं दुःख देनेवाले सर्पनके समान जो भोग तिनके उपजावने विषैं रक्षणविषै पोषणविषैं सेवनेविषैं भयानक दुःखनिकौं जीव प्राप्त होय है ते भोग बुद्धिवाननिके मने भए कैसे होय।

भावार्थ—भोगनिकौं बुद्धिमान सुखकारी कैसें मानै, अपि तु नाहीं मानै ॥ ६३ ॥

श्रद्धीयमाणा अपि वंचयंते, निषेव्यमाणा अपि मारयंते ।
ये पोष्यमाणा अपि पीडयंते, ते संति भोगाः कथमर्थनीयाः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जे भोग प्रीति करे भए भी ठिगै हैं अर सेये भये भी मारै है अर पोषे भए भी पीडा उपजावै है ते भोग कैसे वांछने योग्य होय हैं, अपि तु नाहीं होय हैं ॥ ६४ ॥

उत्पद्यमाना निलयं स्वकीयं, ये हव्यवाहा इव धार्यमाणाः ।
अप्लोषयंते हृदयं ज्वलंत, स्ते याचनीयाः कथमिंद्रियार्थाः ॥ ६५ ॥

अर्थ—जैसें जाज्वल्यमान उपजी भई अग्नि हैं ते अपने स्थानकों जलावें तैसें वे भोग इच्छा करि घेरेभए मन विषें जलते संते हृदयकों जलावे हैं ते इंद्रियनिके भोग कैसें वांछने योग्य होय ॥ ६५ ॥

दत्तप्रलापभ्रमशोकमूर्च्छाः, संतापयंतः सकलं शरीरम्।
ये दुर्निवारां जनयंति तृष्णां, ज्वरा इवैते न सुखाय संति ॥ ६६ ॥

अर्थ—दिया है प्रलाप कहिए वृथा वकवाद अर भ्रमकहिये औरका और जानना अर शोक अर अचेतनपना जिननें, बहुरि समस्त शरीरकों संताप उपजावते अर दुर्निवार तृष्णाकों उपजावे हैं ऐसे ज्वरनिके समान जे भोग ते सुखके अर्थ नाहीं हैं ॥ ६६ ॥

विश्राणय दानं कुधियो यतिभ्यो, ये प्रार्थयंते विषयोपभोगम्।
ते लांगलैगा खलु कांचनीयै, र्विलिख्य किंपाकवनं वपंति ॥ ६७ ॥

अर्थ—जे कुबुद्धि यतीनके अर्थ दान देकरि विषयभोगकों चाहैं हैं ते पुरुष सुवर्णमयी हलनि करि पृथ्वीकों जोत करि किंपाक-निके वनकों बावें हैं।

भावार्थ—किंपाकका फल खानेमैं तो प्रिय लागै है अर पाछै प्राण हरै है तैसें विषय भी भोगते तो नीके लागें हैं अर परिपाकमैं महादुःख देय हैं, तातें यह दृष्टांत दिया है ॥ ६७ ॥

भिन्दन्ति सूत्राय मणिं महर्घं, काष्ठाय ते कल्पतरुं लुनन्ति।
नावं च लोहाय विपाटयन्ते, भोगाय दानं ननु ये ददन्ते ॥ ६८ ॥

अर्थ—आचार्य तर्क करै हैं जो जे पुरुष अर्थ दान देय है ते डोराके अर्थ महामोल रत्नकों फोरै है, अर काष्ठके अर्थ कल्पवृक्षकों काटै हैं अर लोहके अर्थ जहाजकों तोड़ें हैं ॥ ६८ ॥

परैरशक्यं दमितेन्द्रियाश्वा, श्चरन्ति धर्मं विषयार्थिनो ये।
पाषाणमाधाय गले महान्तं, विशन्ति ते तोरमलभ्यपारम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—दमे है इंद्रिय रूप घोड़े जिननें ऐसे जे पुरुष औरनि करि अशक्य जो धर्म ताहि विषयार्थी भए सन्ते आचरें है ते बड़े बड़े पाषाणकों गले विषें धारकै नाहीं लेने योग्य है पार जाका ऐसा जो जल ता प्रति प्रवेश करै है ॥ ६९ ॥

दिने दिने ये परिचर्यमाणा, विवर्द्धमानाः परिपीडयन्ते ।
ते कस्य रोगा इव संति भोगा, विनिंदनीया विदुषोऽर्थनीयाः ॥ ७० ॥

अर्थ—जे भोग दिन दिनविषें परिचार किये भए वर्द्धमान भए संते जैसें रोग पीड़ा उपजावै तैसें पीड़ा उपजावें हैं ते निंदने योग्य भाग कौन पंडित जनकौं वांछने योग्य होय है, अपितु नाहीं होय है ॥७०॥

प्रयच्छन्ति सौख्यं सुराधीश्वरेभ्यो, न ये जातु भोगाः कथं ते परेभ्यः ।
निशुंभंति ये मत्तमत्र द्विपेन्द्रं, न कंठीरवास्ते कुरंगं त्यजंति ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे भोग सुरनिके नायक जो इन्द्र तिनके अर्थ ही कदाचित् सुख न देय हैं ते औरनके अर्थि सुख कैसें देय । इहां दृष्टांत कहै है—जे सिंह इहां लोकमैं मतवारे गजेन्द्रकौं मारें हैं ते हिरणकौं नाहीं छोड़े हैं ॥ ७१ ॥

न याचनीयाविदुषेति दोषं, विज्ञाय रोगा इव जातु भोगाः ।
किं प्राणहारित्वमवेक्षमाणो, जिजीविषुः खादति कालकूटम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—या प्रकार दोषकौं जानिकैं पंडितजन करि रोग समान जे भोग ते कदाचित् वांछने योग्य नाहीं । इहां दृष्टांत कहैं हैं—प्राणहारीपणेकौं देखता जीवनेका वांछक जो पुरुष है सो कहा कालकूटकौं खाय है, अपि तु नाहीं खाय है ॥ ७२ ॥

भोगाः संपद्यमानाः सुरमनुजभवाश्चिंतितप्राप्तसौख्या
याच्यंते लब्धुकामैः कथमपविपदं धर्मतो मुक्तिकांताम् ।

सस्यं स्वीकर्तुकामाः क्षुदुरुतरतमस्कांडविच्छेददक्षं ।
स्वीकर्तुं किं पलालं फलममलधियः कुर्वते कर्षणं हि ।। ७३ ।।

अर्थ—धर्मतें मुक्ति स्त्रीकौं प्राप्त होनेकी है इच्छा जिनके ऐसे पुरुषनि करि वांछित प्राप्त किये हैं सुख जिननें ऐसे प्राप्त भए जे देव मनुष्य जनित भोग ते विपदा रूप कोई प्रकार याचिए है अपितु नाहीं याचिए है; जातें धान्यकौं अंगीकार करनेके वांछक जे निर्मल बुद्धि पुरुष है ते कहा प्यार फलकौं अंगीकार करनेकौं खेती करै हैं, अपितु नाहीं करै हैं, कैसा है धान्य पीड़ा रूप जो बड़ा अन्धकारका समूह ताके छेदने विषें प्रवीण है।

भावार्थ—जैसें खेतमें मुख्य फल तौ धान्य है अर पियार आदि स्वयमेव उपजै है तैसें धर्मका फल तौ मोक्ष है। इन्द्रादिक पद तौ विना चाहे शुभोपभोगतैं स्वयमेव उपजै है, तातें इन्द्रादिक पदके योग्य धर्मका वांछना योग्य नाहीं ।। ७३ ।।

त्यक्त्वा भोगाभिलाषं भवमरणजरारण्यनिर्मूलनार्थं
दत्ते दानं मुदायो नयविनयपरः संयतेभ्यो यतिभ्यः ।
भुक्त्वा भोगानरोगानमरवरवधूलोचनांभोजभानु-
र्नित्यां निर्वाणलक्ष्मीममितगतियतिप्रार्थनीयां स याति ।। ७४ ।।

अर्थ—नीति अर विनयविषें तत्पर भया जो पुरुष जन्म जरा मरणरूप वनके नाशके अर्थ भोगनिकी वांछाकौं त्यागिकै हर्ष सहित संयमी मुनीश्वरनिके अर्थ दान देय है सो देवांगनाके नयनकमलकौं सूर्य समान देव होय रोग रहित भोगनिकौं भोगि मोक्ष लक्ष्मीकौं प्राप्त होय है, कैसी है मोक्ष लक्ष्मी अविनाशी है अर अप्रमाण है ज्ञान जिनका ऐसे यतीन करि वांछने योग्य है ।। ७४ ।।

दोहा ।

भोग चाह तजि साधुकौं, देत दान जो जीव ।
सुरसुख सब लहि अमितगति, होय मोक्षतिय पीव ॥

इत्युपासकाचारे दशमः परिच्छेदः

इस प्रकार अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं दशवां परिच्छेद पूर्ण भया ।

एकादश परिच्छेद ।

फलं नाभयदानस्य, वक्तुं केनाऽपि पार्यते ।
यस्याऽऽकल्पं मुखे जिह्वा, व्याप्रियन्ते सहस्रशः ॥ १ ॥

अर्थ—अभयदानके फलकौं कहनेकौं कोऊ करि भी समर्थ हूजिए है, अपितु नाहीं हूजिए है; जिसके कहनेकौं कल्पकाल पर्यंत हजारौं जीभ मुखविषें व्यापार कीजिए है तौ भी अभयदानके फल कहनेकौं कोऊ करि भी समर्थ न हूजिए है ॥ १ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां, जीवितं मूलमिष्यते ।
तद्रक्षता न किं दत्तं, हरता तन्न किं हृतम् ॥ २ ॥

अर्थ—धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारौं ही पुरुषार्थनिका मूल जीवना कहिए है तातें तिस जीवनेकौं रक्षा करता जो पुरुष ताकरि कहा न दिया अर ता जीवनेकौं रक्षा हरता जो पुरुष ताकरि कहा न नाश किया, सर्व ही नाश किया ॥ २ ॥

गोबालब्राह्मणस्त्रीतः पुण्यभागी यदीष्यते ।
सर्वप्राणिगणत्रायी, नितरां न तदा कथम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो गौ बालक ब्राह्मण स्त्री इनकी रक्षातें पुण्यवान जीव

मानिए है तो समस्त प्राणीनिके समूहका रक्षा करनेवाला पुरुष है सो अधिक पुण्यवान कैसें नाहीं ॥ ३ ॥

यद्येकमेकदा जीवं त्रायमाणाः प्रपूज्यते ।
न तदा सर्वदा सर्वं त्रायमाणः कथं बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो एक काल एक जीवकों रक्षा करता सन्ता पुरुष है सो पूजिए है तो सदा काल सर्व जीवकों रक्षा करता सन्ता पुरुष है सो पंडितनि करि कैसैं नाहीं पूजिए है, पूजिए ही है ॥ ४ ॥

चामीकरमयी मुर्वी ददानः पर्वतैः सह ।
एकजीवाभयं नूनं ददानस्य समः कुतः ॥ ५ ॥

अर्थ—आचार्य तर्क करै हैं-पर्वतनि सहित सुवर्णमयी पृथ्वीकों देता पुरुष है सो एक जीवकी रक्षा करता जो पुरुष ताके समान कहांतै होय, अपितु नाहीं होय ॥ ५ ॥

गुणानां दुरवापानामर्चितानां महात्मभिः ।
दयालुर्जायते स्थानं मणीनामिव सागरः ॥ ६ ॥

अर्थ—बड़े पुरुषनि करि पूजित ऐसे जे दुर्लभ गुण तिनका दयालु स्थानक होय है, जैसें रत्ननिका स्थान समुद्र होय है तैसें ॥६॥

संयमा नियमाः सर्वे दयालोः सन्ति देहिनः ।
जायमाना न दृश्यंते भूरुहा धरणीमृते ॥ ७ ॥

अर्थ—दयावान जीवकै संयम नियम सर्व होय है, जातें पृथ्वी विना वृक्ष हैं ते उपजे न देखे ॥ ७ ॥

कारणं सर्ववैराणां प्राणिनां विनिपातनम् ।
तत्सदा त्यजतस्त्रेधा कुतो वैरं प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

अर्थ—प्राणीनिकौं घात है सो सर्व वैर भावनिका कारण है, तातैं प्राणीके घातकौं मन वचन काय करि त्यागता जो पुरुष ताकै वैरभाव कहां प्रवर्तै ॥ ८ ॥

मनोभूरिव कांतांग सुवर्णाद्रिरिव स्थिरः ।
सरस्वानिव गम्भीरो बिवस्वानिव भास्वरः ॥ ९ ॥
आदेयः सुभगः सौम्यस्त्यागी भोगी यशोनिधिः ।
भवत्यभयनदानेन चिरजीवी निरामयः ॥ १० ॥

अर्थ—अभयदान करि कामदेव समान सुन्दर शरीर होय है, अर मेरुसमान स्थिर होय है, अर समुद्र समान गम्भीर होय है, अर सूर्यसमान प्रभावान होय है ॥ ९ ॥ सबनिकै प्यारा होय है, सुन्दर होय है, सौम्य होय है, त्यागी होय है, भोगी होय है, यशनिका भंडार होय है, बहुत काल जीवै है, रोगरहित होय है, ये सर्व अभयदानके फल कहै ॥ १० ॥

तीर्थकृच्चक्रिदेवानां सम्पदो बुधवन्दिताः ।
क्षणेनाभयदानेन दीयन्ते दलितापदः ॥ ११ ॥

अर्थ—अभयदान करि तीर्थंकर चक्रवर्ती देव इनिकी सम्पदा क्षणमात्र करि दीजिए है, कैसी है सम्पदा पण्डितनि करि वंदित है, अर नाश करी है आपदा जिनमैं ऐसी हैं ॥ ११ ॥

तदस्ति न सुखं लोके न भूतं न भविष्यति ।
यन्न सम्पद्यते सद्यो जन्तोरभयदानतः ॥ १२ ॥

अर्थ—लोक विषैं सो सुख वर्तमानमैं नाहीं है अर न भया अर न होयगा सो सुख जीवकौं शीघ्र अभयदानतें नाहीं प्राप्त होय है, सर्व ही सुख प्राप्त होय है ॥ १२ ॥

शरीरं ध्रियते येन शममेव महाव्रतम् ।
कस्तस्याभयदानस्य फलं शक्नोति भाषितुम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस अभयदान करि जीवनिका शरीर पोषिए है, जैसैं समभाव करि महाव्रत पोषिए तैसैं सो, जिस अभयदानके फल कहनेकौं कौन समर्थ होय है ॥ १३ ॥

ऐसैं अभयदानका वर्णन किया।

आगे आहार दानका वर्णन करै हैं:—

आहारेण विना कायो न तिष्ठति कथंचन।
भास्करेण विना कुत्र वासरो व्यवतिष्ठते॥ १४॥

अर्थ—जैसैं सूर्य विना दिन कहांतै तिष्ठै, दिन न होय तैसें आहार विना शरीर कोई प्रकार न तिष्ठै है॥ १४॥

शमस्तपो दया धर्मः संयमो नियमो दमः।
सर्वे तेन वितीर्यंते येनाऽहारो वितीर्यते॥ १५॥

अर्थ—जो पुरुष करि आहार दीजिए है ताकरि शमभाव तप धर्म संयम नियम इन्द्रियनिका दमन ये सर्व दीजिए है॥ १५॥

चिंतितं पूजितं भोज्यं क्षीयते तस्य नालये।
आहारो भक्तितो येन दीयते व्रतवर्तिनाम्॥ १६॥

अर्थ—जो पुरुष करि भक्तितैं व्रतीनकौं आहारदान दीजिए है ताके घर विषैं वांछित अर प्रशंसा योग्य जो भोजन सो क्षीण नाहीं होय है॥ १६॥

कल्याणानामशेषाणां भाजनं स प्रजायते।
सलिलानामिवांभोधिर्येनाहारो वितीर्यते॥ १७॥

अर्थ—जो पुरुष करि आहारदान दीजिए है सो पुरुष जैसें जलनिका भाजन समुद्र होय तैसें समस्त कल्याणनिका भाजन होय है॥ १७॥

स्वयमेव श्रियोऽन्विष्य धन्यं दातारमन्वषः।
आयांति तरसा श्रेष्ठाः सुभगं वनिता इव॥ १८॥

अर्थ—आहारदान देनेवाले पुरुषकौं बेगि करि लक्ष्मी है ते स्वयमेव श्रेष्ठ आय प्राप्त होय है। जैसें श्रेष्ठ स्त्री है ते सुन्दर पुरुषकौं आय प्राप्त होय तैसें॥ १८॥

सम्पदस्तीर्थकृत्तृणां चक्रिणामर्द्धचक्रिणाम् ।
भजन्त्यशनदं सर्वाः पयोधिमिवनिम्नगाः ॥ १९ ॥

अर्थ—तीथकरनिकी चक्रवर्तीनिकी अर्द्धचक्रवर्तीनिकी सर्व संपदा हैं ते आहार देनेवाले पुरुषकौं सेवे है जैसें नदी समुद्रकौं सेवै तैसैं ॥ १९ ॥

प्रक्षीयन्ते न तस्यर्था, ददानस्यापि भूरिश ।
ददाना जनतानन्दं, चन्द्रस्येव मरीचयः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसै लोचनकौं आनन्द देती जे चन्द्रमाकी किरण ते क्षीण न होय हैं तैसें बहुत दान देनेकी भी सम्पदा क्षीण न होय है ॥ २० ॥

तत्फलं ददतः पृथ्वीं, प्रासुकं यच्च भोजनम् ।
अनयोरंतरं मन्ये, तृणाब्धिजलयोरिव ॥ २१ ॥

अर्थ—पृथ्वीकौं देता जो पुरुष ताका जो फल है । बहुरि प्रासुक भोजनकौं देते पुरुष ताका जो फल है, इनि दोऊनिका अन्तर तृणकी अणीका जल अर समुद्रका जल इनि दोऊनिका अन्तर है तैसें मानूँ हूँ ॥

भावार्थ—पृथ्वी दानका तो लोकमैं प्रशंसा मात्र फल है अर पाप बड़ा है, अर भोजनदानका दोऊ भवनिमैं सुखकारी फल है; तातें इनिका बड़ा अन्तर कह्या है, ऐसा जानना ॥ २१ ॥

अन्नदानप्रसादेन यत्र यत्र प्रजायते ।
ततोज्झ्यते भोगैर्नभास्वानिव रश्मिभिः ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसें सूर्य जहां जहां जाय तहां तहां किरणनिकरि न छोडिए है तैसें अन्नदानके प्रसाद करि जहां जहां जीव जाय तहां भोगनि करि नाहीं छोडिए है ॥ २२ ॥

ददानोऽशनमात्रं यत्फलं प्राप्नोति मानवः ।
दानात्सुवर्णकोटीनां न कदाचन तद्ध्रुवम् ॥ २३ ॥

अर्थ—भोजनमात्र देता जो पुरुष सो जिस फलकौं पावै है सो कोड सुवर्णकौं देता जो पुरुष सो निश्चयतैं कदाच न पावै है ॥ २३ ॥

विना भोगोपभोगेभ्यश्चिरं जीवति मानवः ।
न विनाऽऽहारमात्रेण तुष्टिपुष्टि प्रदायिना ॥ २४ ॥

अर्थ—भोग उपभोग विना तौ मनुष्य बहुत काल जीवै है। बहुरि संतोष अर पुष्टपनाकौं देनेवाला जो भोजन ताविना न जीवै है ॥२४॥

केवलज्ञानतो ज्ञानं निर्वाणसुखतः सुखम् ।
आहारदानतो दानं नोत्तमं विद्यते परम् ॥ २५ ॥

अर्थ—केवलज्ञानतैं और दूजा उत्तम ज्ञान नाहीं, अर मोक्ष सुखतैं और दूजा सुख नाहीं, अर आहारत और दूजा उत्तम दान नाहीं ॥ २५ ॥

अंधसा क्रियते यावानुपकारः शरीरिणः ।
न तावान् रत्नकोटिभिः पुंजिताभिरपि स्फुटम् ॥ २६ ॥

अर्थ—प्राणीका जितना उपकार भोजन करि करिये है तितना उपकार एकठे किये कोड्यां रत्ननि करि भी प्रगटपनै नहीं करिये है ॥ २६ ॥

हीयंते निखिलाश्चेष्टा विना भोजनमात्रया ।
गुप्तयो व्यवतिष्ठते विना कुत्र तितिक्षया ॥ २७ ॥

अर्थ—भोजनरूप मात्रा विना समस्त चेष्टा नाशकौं प्राप्त होय है। जैसैं क्षमा विना मन वचन कायकी गुप्ति हैं ते कहां तिष्ठै हैं, कहूं भी न तिष्ठै हैं ॥ २७ ॥

सीर्यते तरसा गात्रं जंतोर्वर्जितमंधसा ।
विना नीरं क सस्यस्य कोमलस्य व्यवस्थितिः ॥ २८ ॥

अर्थ—प्राणीका शरीर है सो भोजन विना जलदी क्षीण होय है। जैसैं जल विना कोमल धानकी स्थिरता कहां होय, अपि तु कहूं भी न होय है, ऐसा जानना ॥ २८ ॥

यथाऽऽहारः प्रियः पुंसां न तथा किंचनापरम् ।
विक्रीयन्ते प्रियाः पुत्रास्तदर्थं कथमन्यथा ॥ २९ ॥

अर्थ—पुरुषनिकौं जैसा भोजन प्रिय है तैसा और किछू प्रिय नाहीं, जो ऐसें न होय तौ प्यारे पुत्र तिस आहारके अर्थि कैसें बेचिये है, तातें आहार सर्वतें प्यारा है ॥ २९ ॥

यत्किंचित्सुन्दरं वस्तु दृश्यते भुवनत्रये ।
तदन्नदायिना क्षिप्रं लभ्यते लीलयाऽखिलम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो किछू वस्तु तीन लोकविषैं सुन्दर देखिये है सो सर्व वस्तु अन्न दान करता जो पुरुष ता करि लीला मात्र करि शीघ्र पाइये है ॥ ३० ॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन विना सकलवेदिना ।
फलं नाऽऽहारदानस्य परः शक्नोति भाषितुम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—इहां बहुत कहने करि कहा है, आहारदानका फल सर्वज्ञ विना और दूजा कहनेकौं समर्थ नाहीं ॥ ३१ ॥

ऐसैं आहारदानका फल वर्णन किया, आगें औषधिदानका वर्णन करें हैं—

रक्ष्यते व्रतिनां येन शरीरं धर्मसाधनम् ।
पार्यते न फलं वक्तुं तस्य भैषज्यदायिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिस औषधदान करनेवाले करि धर्मका साधन जो व्रतीनका शरीर ताकी रक्षा कीजिये है तिस औषधदानीके फल कहनेकौं समर्थ न हूजिये है ॥ ३२ ॥

येनौषधप्रदस्येह वचनैः कथ्यते फलम्।
चुलुकैर्मीयते तेन पयो नूनं पयोनिधेः ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहैं हैं मैं ऐसा मानूं हूं कि जिस करि इस लोकमैं औषध देनेवालेका फल वचन करि कहिये है, ताकरि समुद्रका जल चलूनि करि मापिये है ॥ ३३ ॥

वातपित्तकफोत्थानै रोगैरेष न पीड्यते।
दावैरिव जलस्थायी भेषजं येन दीयते ॥ ३४ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि औषध दीजिए है सो पुरुष जैसें दावानल करि जल विषैं तिष्ठया पुरुष न पीड़िए तैसें वात पित्त कफ करि उठे रोगनि करि न पीड़िए है ॥ ३४ ॥

रोगैर्निपीडितो योगी न शक्तो व्रतरक्षणे।
नास्वस्थैः शक्यते कर्तुं स्वस्थकर्म कदाचन ॥ ३५ ॥

अर्थ—रोगनि करि पीडित जो साधु सो व्रतनिकी रक्षा विषैं समर्थ न होय है। बहुरि आकुलता सहित जीवनि करि निराकुल कार्य कदाच करनेकौं समर्थ न हूजिये है ॥ ३५ ॥

न जायते सरोगत्वं जन्तोरौषधदायिनः।
पावकं सेवमानस्य तुषारं हि पलायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—औषध देनेवाले पुरुषकै सरोगपना न होय है, जातैं अग्निकौं सेवते पुरुषका शीत दूर भागै है ॥ ३६ ॥

आजन्म जायते यस्य न व्याधिस्तनुतापकः।
किं सुखं कथ्यते तस्य सिद्धस्येव महात्मनः ॥ ३७ ॥

अर्थ—जाकै जन्मतें लगाय शरीरकौं ताप उपजावनेवाला रोग न होय है तिस सिद्ध समान महात्माका सुख कहां कहिए। इहां सिद्ध समान कह्या सो जैसें सिद्धनिकौं रोग नाहीं तैसें याकै भी रोग

नाहीं, ऐसी समानता देखि उपमा दीनी है, सर्व प्रकार सिद्ध न जान लेना ॥ ३७ ॥

निधानमेष कांतीनां कीर्तिनां कुलमंदिरम् ।
लावण्यानां नदीनाथो भैषज्यं येन दीयते ॥ ३८ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि औषध दीजिए है सो यहु पुरुष कांति कहिये दीप्तिनिकां तौ भण्डार होय है, अर कीर्त्तिनिका कुलमंदिर होय है जामैं यश कीर्त्ति सदा वसै है, बहुरि सुन्दरतानिका समुद्र होय है जानना ॥ ३८ ॥

ध्वांतं दिवाकरस्येव शीतं चित्ररुचेरिव ।
भैषज्यदायिनो देहाद्रोगित्वं प्रपलायते ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसैं सूर्यके शरीरतैं अन्धकार दूरि भागै है अर अग्निके शरीरतें शीत दूरि भागै है तैसें औषध देनेवाले पुरुषके देहतें रोगीपना दूरि भागै है ॥ ३९ ॥

आरोग्यं क्रियते येन योगिनां योगमुक्तये ।
तदीयस्य न धर्मस्य समर्थः कोऽपि वर्णने ॥ ४० ॥

अर्थ—जाकरि योगीश्वरके मन वचन कायकी मुक्तिके अर्थि रोगरहितपना कीजिए है ताके धर्मके वर्णन विषै कोई भी समर्थ नाहीं ॥ ४० ॥

चारित्रं दर्शनं ज्ञानं स्वाध्यायो विनयो नयः ।
सर्वेऽपि विहितास्तेन दत्तं येनौषधं सताम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—जानें साधूनिकौं औषधदान दिया तानें चारित्र दर्शन-ज्ञान विनय नीति ये सर्व ही किये ।

भावार्थ—औषधतें शरीर निरोग होय तब सर्व धर्मका साधन बनै है, ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

ऐसें औषधदानका वर्णन किया; आगें शास्त्रदानकौं कहैं हैं—

संसृतिश्छिद्यते येन निर्वृतिर्येन दीयते ।
मोहो विधूयते येन विवेको येन जन्यते ॥ ४२ ॥
कषायोर्मिद्यते येन मानसं येन शम्यते ।
अकृत्यं त्याज्यते येन कृत्ये येन प्रवर्त्यते ॥ ४३ ॥
तत्वं प्रकाश्यते येन येनातत्वं निषिध्यते ।
संयमः क्रियते येन सम्यक्तं येन पोष्यते ॥ ४४ ॥
देहिभ्यो दीयते येन तच्छास्त्रं सिद्धिलब्धये ।
कस्तेन सदृशो धन्यो विद्यते भुवनत्रये ॥ ४५ ॥

अर्थ—जाकरि संसार छेदिए है, अर जाकरि मोक्ष दीजिए है, अर जाकरि मोह छुड़ाइए है, अर जाकरि विवेक उपजायिए है॥४२॥ अर जाकरि क्रोधादिक कषाय नाश कीजिए है, अर जाकरि मन शान्त कीजिए है, अर जाकरि अकार्य छुड़ाइए है, अर जाकरि कृत्यमें प्रवर्ताइए है ॥ ४३ ॥ अर जाकरि पदार्थनिका सांचा स्वरूप निषेधिये है, अर जाकरि पदार्थनिका अन्यथा स्वरूप निषेधिये है, अर जाकरि संयमभाव करिए है, अर जाकरि सम्यक्त पोषिए है ॥४४॥ ऐसा जो शास्त्र प्राणनिकौं जाकरि मुक्तिके अर्थि दीजिए है तासमान तीनलोक विषें धन्य पुरुष कौन है, अपितु कोई नाहीं ॥ ४५ ॥

मुक्तिः प्रदीयते येन शास्त्रदानेन पावनी ।
लक्ष्मीं सांसारिकीं तस्य प्रददानस्य कः श्रमः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिस शास्त्रदान करि पवित्र मुक्ति दीजिए है ताके संसारकी लक्ष्मी देतेके कहा श्रम है ।

भावार्थ—जाकरि मुक्ति पाइए ताकरि इन्द्रादिक पद दुर्लभ नाहीं ॥ ४६ ॥

लभ्यते केवलज्ञानं यतो विश्वावभासकम् ।
अपरज्ञानलाभेषु कीदृशी तस्य वर्णना ॥ ४७ ॥

अर्थ—जा शास्त्रज्ञानतें विश्वका प्रकाशक केवलज्ञान पाइए है तो और मतिज्ञान आदिके पावने विषैं ताकी कथनी कैसी, और ज्ञान पावना तौ सहज ही है॥ ४७॥

मर्त्यामरश्रियं भुक्त्वा भुवनोत्तमपूजिताम्।

ज्ञानदानप्रसादेन जीवो गच्छति निर्वृतिम्॥ ४८॥

अर्थ—ज्ञानदानके प्रसाद करि जीव है सो लोक विष उत्तम अर पूजित ऐसी मनुष्यनिकी अर देवनिकी लक्ष्मीकौं भोगकै मुक्तिकौं प्राप्त होय है॥ ४८॥

चतुरंगं फलं येन दीयते शास्त्रदायिना।

चतुरंगं फलं तेन लभ्यते न कथं स्वयम्॥ ४९॥

अर्थ—जिस शास्त्रके देनेवाले पुरुष करि चतुरंग कहिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये च्यार पुरुषार्थरूप फल दीजिए है ताकरि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप फल स्वयमेव कैसैं न पाइए है॥ ४९॥

शास्त्रदायी सतां पूज्यः सेवनीयो मनीषिणाम्।

वादी वाग्मी कविर्मान्यः ख्यातशिक्षः प्रजायते॥ ५०॥

अर्थ—शास्त्रकौं देनेवाला पुरुष संततिके पूजनीक होय है अर पंडितनिके सेवनीक होय है, अर वादीनिकौं जीतनेवाले हैं वचन जाके ऐसा वादी होय है, बहुरि वाग्मी कहिए सभाकौं रंजायमान करनेवाला वक्ता होय है, अर कवि कहिये नवीनग्रन्थ रचनावाला होय है, अर माननेयोग्य होय है, अर विख्यात है शिक्षा जाकी ऐसा होय है॥५०

ऐसे शास्त्रदानका वर्णन किया। आगे वसतिका दानकौं कहै हैं—

विचित्ररत्ननिर्माणः प्रोत्तुङ्गो बहुभूमिकः।

लभ्यते वासदानेन वासश्चन्द्रकरोज्ज्वलः॥ ५१॥

अर्थ—वसतिका दान करि चन्द्रमाकी किरण समान उज्ज्वल

विचित्ररत्न करि रच्या महाऊँचा बहुत खणनिका महल पाइये है।

आगैं वस्त्रदानकौं कहै हैं:—

कोमलानि महार्घ्याणि विशालानि घनानि च।
वासोदानेन वासांसि सम्पद्यन्ते सहस्रशः ॥ ५२ ॥

अर्थ—वस्त्रदानकरि कोमल अर महामोल अर सघन ऐसे हजारों वस्त्र पाइए है।

भावार्थ—आर्जिका श्रावक, श्राविका इत्यादिकनिकौं वस्त्रदान करै ताका फल इहां कहा है ॥ ५२ ॥

ददति जनतानन्दं चन्द्रकांतिरिवामला।
जायते पानदानेन वाणी तापपनोदिनी ॥ ५३ ॥

अर्थ—पान कहिये पीवने योग्य वस्तु ताके दान करि चन्द्रकांति मणि समान निर्मल लोकनिकौं आनन्द देनेवाली तापकी नाश करनेवाली ऐसी वाणी होय है ॥ ५३ ॥

ददानः प्रासुकं द्रव्यं रत्नत्रितयबृंहकम्।
कांक्षितं सकलं द्रव्यं लभते परदुर्लभम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—रत्नत्रयका बढ़ावनेवाला ऐसा जो प्रासुक द्रव्य है ताहि देता पुरुष औरनिकौं दुर्लभ ऐसा वांछित सकल पदार्थ पावै है ॥५४॥

विश्राणयति यो दानं सेवमानस्तपस्विनः।
सेव्यते भुवनाधीशैः स सदा सुखकांक्षिभिः ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो पुरुष तपस्वनिकौं सेवना संता दान देय हैं सो पुरुष सुखके वांछक जे इन्द्रादिक तिनकरि सदा सेइए है ॥ ५५ ॥

यः प्रशंसापरो नत्वा दानं यच्छति योगिनाम्।
प्रशस्य स सदा सद्भिर्जिनेन्द्र इव नम्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो पुरुष मुनीनकौं प्रशंसामैं तत्पर भया दान देय है सो

पुरुष सदा प्रशंसा योग्य होय है, अर सत्पुरुष जैसें तीर्थंकर देवकों नमैं तैसें ताहि नमैं हैं ॥ ५६ ॥

दत्ते शुश्रूषयित्वा यो दानं संयमशालिनाम् ।
शुश्रूष्यते बुधैरेष भक्त्या गुरुरिवानिशम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो शुश्रषा करिकें संयमी मुनीनकौं दान देय है सो यह पंडितनि करि निरन्तर जैसें गुरुनिकी शुश्रुषा कीजिए तैसें ताकी शुश्रुषा कीजिए है ॥ ५७ ॥

आदत्य दीयते दानं साधुभ्यो येन सर्वदा ।
आदरेणैष लोकेन निधानमिव गृह्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि आदर सहित साधुनके अर्थ सदा दान दीजिये है सो यहु पुरुष लोककरि निधानकों ज्यों आदर सहित ग्रहण कीजिए है ॥ ५८ ॥

पूजापरायण: स्तुत्वा यो यच्छति महात्मनाम् ।
त्रिदशैस्तीर्थकारीव स्तावं स्तावं स पूज्यते ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो पुरुष पूजाविषैं तत्पर स्तुति करिकैं साधु पुरुषनिकौं दान देय है सो पुरुष देवनि करि जैसे तीर्थंकर देवकों पूजिए तैसें स्तुति करि करिकैं पूजिए है ॥ ५९ ॥

यद्यद्दानं सतामिष्टं तप: संयमपोषकम् ।
तत्तद्विनरता भक्त्या प्राप्यते फलमीक्षितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जो जो दान तप संयमका पुष्ट करनेवाला सत्पुरुषनिनैं मान्या है सो सो दान भक्ति सहित देता जो पुरुष ताकरि वांछित फल पाइए है ॥ ६० ॥

दानानीमानि यच्छंति स्तोकान्यपि महाफलम् ।
बीजानीव बटादीनां निहितानि विधानत: ॥ ६१ ॥

अर्थ—पूर्वें कहे ते दान विधान सहित थोड़े भी महाफलकौं देय हैं, जैसें वड़ आदि वृक्षनिके बीज हैं ते विधानतें बोए भए बड़े फलकौं देय हैं ॥ ६१ ॥

पात्रेभ्यो यः प्रकृष्टेभ्यो मिथ्यादृष्टिः प्रयच्छति ।
स याति भोगभूमीषु प्रकृष्टासु महोदयः ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट पात्रनिके अर्थ दान देय है सो महान् है उदय जाका ऐसा उत्कृष्ट भोगभूमिकौं जाय है ॥ ६२ ॥

क्रोशत्रय वपुस्तत्र त्रिपल्योपमजीवितः ।
चिंताकल्पितसान्निध्यं स भोगसुखमश्नुते ॥ ६३ ॥

अर्थ—तहां उत्कृष्ट भोगभूमिविषें तीन कोशका शरीर अर तीन पल्यकी आयु जाकी सो चिंताकरि कल्प्या ही निकट प्राप्त भया ऐसा भोगनिका सुख भोगै है ॥ ६३ ॥

सदा मनोनुकूलाभिः सेव्यमाना दिवाऽनिशम् ।
नारीभिर्न गतं कालं जानंते भोगभूभुजः ॥ ६४ ॥

अर्थ—मनके अनुकूल जे स्त्री तिनकरि सदा सेये भये ते भोगभूमिया गये कालकौं न जानैं हैं । ६४ ॥

मध्यमानां स पात्राणां दानतो याति मध्यमाम् ।
कारणस्यानुरूपं हि कार्यं जगति जायते ॥ ६५ ॥

अर्थ—सो दाता मध्यम पात्रनिके दानतें मध्यम भोगभूमिकौं प्राप्त होय है, जातें लोकविषें जैसा कारण होय तैसा ही कार्य निपजै है ॥ ६५ ॥

द्विक्रोशोच्छ्रयदेहोऽसौ द्विपल्यायुर्निरामयः ।
स तत्रास्ते महावासः कांताक्षांभोजषट्पदः ॥ ६६ ॥

अर्थ—सो यहु मध्यम भोगभूमिया दोय कोश ऊँचा है देह जाका,

अर दोय पल्य आयु, रोगरहित, बड़ा है आवास कहिये स्थान जाका, अर स्त्रीके नेत्रकमलनिकौं भ्रमर समान सो तहां तिष्ठै है ॥ ६६ ॥

जघन्येभ्यः स पात्रेऽभ्यो जघन्यां याति दानतः।
एककोशोच्छ्रयं भूमिमेकपल्योपमस्थितिः ॥ ६७ ॥

अर्थ—बहुरि सो दाता जघन्य पात्रनके अर्थ दिया जो दान तातैं जघन्य भोगभूमिकौं प्राप्त होय है, एक कोश ऊँचा अर एक पल्यकी है स्थिति जाकी ॥ ६७ ॥

बरदामलकविभीतकमात्रं त्रिद्वयेकवासरैः क्रमतः।
आहारं कल्याणं दिव्यरसं भुंजते धन्याः ॥ ६८ ॥

अर्थ—ते पुण्यवान भोगभूमिया बेर आमला बहेडा इन प्रमाण क्रमतैं कल्याणरूप दिव्य है स्वाद जाका ऐसा आहारकौं तीन दोय एक दिन करि खाय है।

भावार्थ—उत्तम भोगभूमिया तीन दिनमैं बेर प्रमाण आहार करै हैं, मध्यम भोगभूमिया दोय दिनमैं आंवले प्रमाण आहार करै हैं, जघन्य भोगभूमिया एक दिनमैं बहेडे प्रमाण आहार करै हैं ऐसा जानना ॥ ६८ ॥

विश्राणयन् यतीनामुत्तममध्यमजघन्यपरिणामैः।
दानं यच्छति भूमीरुत्तममध्यमजघन्या वा ॥ ६९ ॥

अर्थ—पहले तौ तीन प्रकार पात्रनके अर्थ दानतैं तीन प्रकार ही भोगभूमि मिलै है ऐसा कह्या; अब कहै है कि दूजा प्रकार यह भी है कि यतीनकौं उत्तम मध्यम जघन्य परिणामनि करि दान देता जो पुरुष सो उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिकौं पावै है॥६९॥

सर्वे द्वंद्वपरित्यक्ताः सर्वे क्लेश विवर्जिताः।
सर्वे यौवनसंपन्नाः सर्वे संति प्रियंवदाः॥ ७० ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमिया आजीविकाके द्वंद्व करि रहित हैं, अर सर्व ही क्लेशवर्जित हैं अर सर्व ही यौवन सहित है, अर सर्व ही प्रिय वचन बोलनेवाले हैं ॥ ७० ॥

मददैन्यश्रमायासक्रोधलोभमदक्लमाः।
मुक्तानामिव नो तेषां नाप्यन्यत्र गमागमः ॥ ७१ ॥

अर्थ—मद दीनता श्रम प्रयास क्रोध लोभ मद क्लेश ये सर्व मुक्त आत्मानकी ज्यों तिनके नाहीं अर और जायगा तिनका गमनागमन नाहीं। इहां मुक्त आत्माका दृष्टांत दिया सो प्रगटपनें मदादिकके कार्य भोगभूमिमैं नाहीं तातैं उपचारतैं कह्या है, सर्वथा वीतराग मुक्त आत्माकी ज्यों न जान लेना ॥ ७१ ॥

अयमेव विशेषोऽस्ति देवेभ्यो भोगभोगिनाम्।
यत्ते यांति मृता नाकं देवास्तिर्यङ्नरत्वयोः ॥ ७२ ॥

अर्थ—देवनितैं भोगभूमियानका यही भेद है जातैं भोगभूमिया मरे भये स्वर्गकौं प्राप्त होय है अर देव हैं ते तिर्यंच मनुष्य गतिकौं प्राप्त होय है ॥ ७२ ॥

यतो मन्दकषायास्ते ततो यांति त्रिविष्टपम्।
उक्तं तीव्रकषायत्वं दुर्गतेः कारणं परम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—जाकारणतैं ते मन्द कषाय हैं ता कारणतैं ते स्वर्गकौं प्राप्त होय हैं। तीव्र कषायपना है सो केवल दुर्गतिका कारण कह्या है ॥ ७३ ॥

दीयन्ते चिंतिता भोगा येषां कल्पमहीरुहैः।
दशांगैः कः सुखं तेषां शक्तो वर्णयितुं गिरा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिन भोगभूमियानकौं दशभेदरूप कल्पवृक्षनि करि

वांछित भोग दीजिए है तिन भोगभूमियानके सुखकौं वाणी करि वर्णन करनेकौं कौन समर्थ है ॥ ७४ ॥

न वियोगः प्रियैः सार्द्धं न संयोगोऽप्रियैः सह।
न व्रतं न तपस्तेषां न वैरं न पराभवः ॥ ७५ ॥

अर्थ—तिन भोगभूमियानके इष्टपदार्थन करि साथ वियोग नाहीं, अर अनिष्ट वस्तुनि सहित संयोगता नाहीं, अर तिनके व्रत नाहीं तप नाहीं वैर नाहीं अनादर नाहीं ॥ ७५ ॥

यतः स्वस्वामिसम्बन्धस्तेषां नास्ति कदाचन।
परछन्दानुवर्तित्वं ततस्तेषां कुतस्तनम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जातैं तिन भोगभूमियानके स्वस्वामि कहिये सेवक ईश्वरपनेंका सम्बन्ध कदाचित् नाहीं तातैं पराधीन प्रवर्त्तना तिनकै काहेका होय ॥ ७६ ॥

नाऽपूर्णे समये सर्वे ते म्रियन्ते कदाचन।
रचयन्ति न पैशून्यं सुखसागरमध्यगाः ॥ ७७ ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमियां आयुके अपूर्ण काल विषैं कदाच न मरै है, अर सुखसमुद्रके मध्य प्राप्त भये ते ईर्षा भावकौं नाहीं करैं हैं ॥ ७७ ॥

आयासेन विना भोगी नीरोगीभूतविग्रहः।
क्षुतेन पुरुषस्तत्र म्रियते जृंभयांगना ॥ ७८ ॥

अर्थ——खेद विना भोगनि करि सहित अर रोगरहित है शरीर जाका ऐसा भोगभूमिका पुरुष तो छींक करि मरै है अर जंभाई करि स्त्री मरै है ॥ ७८ ॥

ते जायन्ते कलालापा मकरध्वजसंनिभाः।
सर्वे भोगक्षमाः रम्यादिनानां सप्त सप्तकैः ॥ ७९ ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमिया दिननके सात सतक कहिये गुणचास दिनन करि उपजै हैं, कैसे हैं ते भोगभूमिया, सुन्दर है शब्द जिनका अर कामदेव समान है रूप जिनका अर भोगनिविषै सामर्थ्य सहित रमणीक ऐसे हैं ॥ ७९ ॥

कोमलालापया कान्तः कान्तयाऽऽर्यो निगद्यते ।
कांतेनाऽऽर्या पुनः कांता चित्रचाटुविधायिना ॥ ८० ॥

अर्थ—कोमल है शब्द जाका ऐसी स्त्री करि आर्य जो भोगभूमिया अपना पति सो कहिए है ।

भावार्थ—स्त्री कोमलवचन सहित पतिसों बोलै है । अर नाना प्रकार खुशामद करनेवाला जो पति ता करि भोगभूमियाकी स्त्री सो कहिए है, पति शुश्रूषाके वचन सहित स्त्रीसों बोलै है ॥ ८० ॥

आदेयाः सुभगाः सौम्याः सुन्दरांगा वशंवदाः ।
रमन्ते सह रामाभिः स्वसमाभिर्मिथो मुदा ॥ ८१ ॥

अर्थ—आदर करने योग्य अर सुन्दर अर सौम्य अर सुन्दर हैं अङ्ग जिनके अर भले वचन बोलनेवाले ऐसे ते भोगभूमिया अपने समान जे स्त्री तिनकरि सहित परस्पर हर्ष करि रमैं हैं ॥ ८१ ॥

युग्ममुत्पद्यते सार्द्धं युग्मं यत्र विपद्यते ।
शोकाक्रन्दादयो दोषास्तत्र संति कुतस्तनाः ॥ ८२ ॥

अर्थ—जहां स्त्री-पुरुषका युगल साथ उपजै है अर साथ ही युगल मरै है तातें शोक अर रोवना इत्यादि दोष है ते कहांतें होय, नाहीं होय हैं ॥ ८२ ॥

करिकेसरिणौ यत्र तिष्ठन्तौ बांधवामिव ।
एकत्र सर्वदा प्रीत्या सख्यं तत्र किमुच्यते ॥ ८३ ॥

अर्थ—हाथी अर सिंह जहां बांधवनिकी ज्यों एक जायगा सदा

प्रीति सहित तिष्ठे है तहां वैरभाव कैसे कहिए, अपितु नाहीं कहिए ऐसा जानना ॥ ८३ ॥

कुपात्रदानतो याति कुत्सितां भोगमेदिनीम् ।
उप्ते कः कुत्सिते क्षेत्रे सुक्षेत्रफलमश्नुते ॥ ८४ ॥

अर्थ—कुपात्रके दानतै जीव कुभोगभूमिकौं प्राप्त होय है, इहां दृष्टांत कहै हैं—खोटा क्षेत्रविषैं बीज बोये संते सुक्षेत्रके फलकौं कौन प्राप्त होय है, अपितु कोई न होय है ॥ ८४ ॥

येंऽतरद्वीपजाः संति ये नरा म्लेच्छखंडजाः ।
कुपात्रदानतः सर्वे ते भवंति यथायथम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—जे अन्तरद्वीप कहिए लवणसमुद्रविषैं वा कालोद समुद्र-विषैं छयानवें कुभोगभूमिके टापू परे हैं तिनविषैं उपजे मनुष्य हैं अर म्लेच्छ खण्डविषैं उपजे मनुष्य हैं ते सर्व कुपात्रदानतें यथायोग्य होय हैं ॥ ८५ ॥

वर्यमध्यजघन्यासु तिर्यंचः संति भूमिषु ।
कुपात्रदानवृक्षोत्थं भुंजते तेऽखिलाः फलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिन विषें जे तिर्यंच हैं ते सर्व कुपात्र दानरूप वृक्षतें उपज्या जो फल ताहि खाय हैं ॥ ८६ ॥

दासीदासद्विपम्लेच्छसारमेयादयोऽत्र ये ।
कुपात्रदानतो भोगस्तेषां भोगवतां स्फुटम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—इहां आर्यखण्डमैं जे दासीदास हाथी म्लेच्छ कुत्ता इत्यादि भोगवंत जीव हैं तिनकौं जो भोगै है सो प्रगटपने कुपात्र-दानतें है, ऐसा जानना ॥ ८७ ॥

दृश्यंते नीचजातीनां ये भोगा भोगिनामिह ।
सर्वे कुपात्रदानेन ते दीयंते महोदयाः ॥ ८८ ॥

अर्थ—इहां आर्यखण्डविषें नीच जातिके भोगी जीवनिके जे भोग महा उदयरूप देखिए है ते सर्व कुपात्रदानकरि दीजिए हैं ॥८८॥

अपात्राय धनं दत्तं व्यर्थं संपद्यतेऽखिलम्।
ज्वलिते पावके क्षिप्तं बीजं कुत्रांकुरीयति ॥ ८९ ॥

अर्थ—अपात्रके अर्थि दिया जो धन है सो सर्व वृथा होय है। इहां दृष्टांत कहैं हैं—जलती अग्निमैं क्षेप्या बीज है सो कहां अंकुर सहित होय है, अपितु नाहीं होय है ॥ ८९ ॥

अपात्रदानतः किञ्चिन्न फलं पापतः परम्।
लभ्यते हि फलं खेदो वालुकापुंजपीडने ॥ ९० ॥

अर्थ—अपात्र दानतें फल पापतें दूसरा किछू नाहीं होय है। जातें वालू रेतके समूहके पेलनेमैं केवल खेद ही होय, सो ही फल है ॥ ९० ॥

विश्राणितमपात्राय विधत्तेऽनर्थमूर्जितम्।
अपथ्यं भोजनं दत्ते व्याधिं किं न दुरुत्तरम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—अपात्रके अर्थि दिया दान है सो बड़े अनर्थकों करै है जैसें अपथ्य भोजन है सो दूर है उतरन जाका ऐसे रोगकों कहा न देय है, देय ही है ॥ ९१ ॥

संस्कृत्य सुन्दरं भोज्यं येनापात्राय दीयते।
उत्पाद्य प्रबलं धान्यं दह्यते तेन दुर्धिया ॥ ९२ ॥

अर्थ—सुन्दर भोजन बनायकैं जिस पुरुष करि अपात्रके अर्थि दीजिए है ता दुर्बुद्धी करि पुष्टिकारी धान्य उपजायकें जलाइये है॥९२॥

शीघ्रं पात्रेण संसारादेकेनापि गरीयसा।
तार्यंते बहवो लोकाः पोतेनेव पयोनिधेः ॥ ९३ ॥

अर्थ—जैसें जहाजकरि समुद्रतें तारिये तैसें एक ही गरिष्ठ पात्र करि घने लोक संसारतें तारिये हैं ॥ ९३ ॥

जगदुत्पाद्यते सर्वमेकेनापि विवस्वता।
नक्षत्रनिवहैः सर्वैरुदितैरपि नो पुनः ॥ ९४ ॥

अर्थ—एक सूर्य करि ही समस्त जगत् प्रकाशरूप कीजिए है। बहुरि उदय भये भी सर्व नक्षत्रनिके समूह तिनकरि प्रकाशित न कीजिए है ॥ ९४ ॥

एकेनापि सुपात्रेण तार्यते भवनीरधेः।
सहस्रैरप्यपात्राणां पुंजितैर्न पुनर्जनः ॥ ९५ ॥

अर्थ—उपरि दृष्टांत कह्या था ताका दार्ष्टांत कहिए है:—तैसैं एक भी सुपात्र करि जीव संसार-समुद्रतैं तारिये है, बहुरि एकट्ठे किये अपात्रनिके सहस्रनि करि भी संसार-समुद्रतैं न तारिये है, ऐसा जानना ॥ ९५ ॥

अपात्रदानदोषेभ्यो बिभ्यता पुण्यशालिना।
विबुद्ध्य यत्नतः पात्रं देयं दानं विधानतः ॥ ९६ ॥

अर्थ—अपात्रके दोषतें डरता पुण्यवान जो पुरुष ताकरि यत्नतैं पात्रकौं जानिकैं विधानतें दान देना योग्य है ॥ ९६ ॥

अपात्राय धनं दत्ते यो हित्वा पात्रमुत्तमम्।
साधुं विहाय चौराय तदर्पयति सः स्फुटम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो पुरुष उत्तम पात्रकौं छोडिकै अपात्रके अर्थि धन देय है सो प्रगट साधुकौं छोडिकै चौरके अर्थि ता धनकौं देय है, ऐसा जानना ॥ ९७ ॥

अपात्रमिव यः पात्रं विबुद्धिरवलोकते।
चिंतामणिमसौ मन्ये मन्यते लोष्ठसन्निभम् ॥ ९८ ॥

अर्थ—जो निर्बुद्धि पात्रकौं अपात्रकी ज्यों अवलोकै है सो यहु चिंतामणी रत्नकौं लोह समान मानै है, ऐसा मैं मानूं हूं ॥ ९८ ॥

त्यक्त्वा शर्मप्रदं पात्रममात्रं स्वीकरोति यः।
स कालकूटमादत्ते मुक्त्वा पीयूषमस्तधीः॥ ९९॥

अर्थ—सुखदायक पात्रकौं छोडिकै जो अपात्रकौं अंगीकार करै है सो निर्बुद्धि अमृतकौं छोडिकै कालकूट विषकौं ग्रहण करै है॥९९॥

पात्रापात्रविभागेन मिथ्यादृष्टेरिदं फलम्।
उदितं दानजं प्राज्यं सम्यग्दृष्टेर्वदाम्यतः॥ १००॥

अर्थ—यह दानतें उपज्या फल पात्र अपात्रके भेदकरि मिथ्यादृष्टीकौं कह्या बहुरि इस पीछें सम्यग्दृष्टीके दानतें उपज्या जो महाफल ताहि कहूं हूं॥ १००॥

दानं त्रिविधपात्राय सम्यग्दृष्टिर्यथागमम्।
ददानो लभते याच्यां कल्याणानां परम्पराम्॥ १०१॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव है सो तीन प्रकार पात्रनिके अर्थि शास्त्रोक्त दान देता सन्ता मांगनेयोग्य कल्याणनिकी परंपराकौं पावै है॥१०१॥

पात्राय विधिना दत्त्वा दानं मृत्त्वा समाधिना।
अच्युतांतेषु कल्पेषु जायंते शुद्धदृष्टयः॥ १०२॥

अर्थ—पात्रके अर्थि दान देकरि समाधि सहित मरकें सम्यग्दृष्टी जीव है ते अच्युत पर्यंत स्वर्गनि विषें उपजै हैं॥ १०२॥

उत्पद्योत्पादशय्यायां देहोद्योतितपुष्कराः।
सुप्तोत्थिता इव क्षिप्रमुत्तिष्ठंति दिवौकसः॥ १०३॥

अर्थ—तहां स्वर्ग विषें उत्पादशय्या विषें उपजकै देव हैं ते जैसें सोयकरि उठें तैसें उठै हैं, कैसे हैं देव देहकरि उद्योतरूप किया है आकाश जिननें ऐसे हैं॥ १०३॥

निषण्णैस्तत्र शय्यायां तैरीक्ष्यंते समन्ततः।
निकाया देवदेवीनां रचितांजलिकुड्मलाः॥ १०४॥

अर्थ—तहां शय्या विषें तिष्ठते देवनि करि च्यारों तरफतें रची है हस्तांजलि जिननें ऐसे देवदेवीनके समूह देखिए है॥ १०४॥

स्तुवानामां स्ततैः श्रव्यैर्भव्याभरणभासुराः।
मूर्त्ताः केऽमी विलोक्यंते पुण्यपुंजा इवाभितः॥ १०५॥

अर्थ—सुनने योग्य स्तोत्रनि करि स्तुति करते अर सुंदर आभूषणनकरि देदीप्यमान मूर्तीक पुण्यके समूह समान ये च्यारों तरफ कौन देखिए है ऐसैं नवीन देव विचारै हैं॥ १०५॥

रम्याः रामा ममेमाः काश्चित्रचाटुपरायणाः।
लावण्यांबुनिधेर्वेला लोकंते कलनिस्वनाः॥ १०६॥

अर्थ—रमने योग्य अर नाना प्रकार खुशामदमैं तत्पर अर सुन्दरताके समुद्रकी वेला सुन्दर हैं शब्द जिनके ऐसी स्त्री मोकों देखै हैं॥ १०६॥

किमिदं दृश्यते स्थानं रामणीयकमंदिरम्।
कथमत्राहमायातः किं स्वप्नोऽयमुतान्यथा॥ १०७॥

अर्थ—सुन्दरताका मंदिर ये कौन स्थान दीखै है। इहां मैं कैसैं आया अथवा कहां यह स्वप्न है॥ १०७॥

किमकारि मया पुण्यं जातो येनात्र बंधुरे।
न पुण्यव्यतिरेकेण लभ्यते सुखसंपदा॥ १०८॥

अर्थ—अथवा में कहा पुण्य करत भया जाकरि इस सुंदर स्थान विषैं उपज्या। पुण्य विना सुखसंपदा न पाइए है॥ १०८॥

इत्थं चिंतयतां तेषां भवकारणकोऽवधिः।
संपद्यते तदां दीप्रः पूर्वसंबंधसूचकः॥ १०९॥

अर्थ—या पकार विचारते जे देव तिनकै भव ही है कारण जाकू ऐसा भवप्रत्यय अवधि अतिशयकरि देदीप्यमान पहले सम्बन्धका सूचक उपजै है॥ १०९॥

ज्ञानेन तेन विज्ञाय दानपुण्यप्रभावतः।
त्रिदशीभूतमात्मानं ते भजंति सुखाधिकाम् ॥ ११० ॥

अर्थ—तिस ज्ञानकरि दानके पुण्यके प्रभावतैं आपकौं देव भया जानिकै ते देव सुखरूप समाधानताकौं भजे हैं ॥ ११० ॥

प्रीतेनामरवर्गेण स्वसंबंधेन सादरम्।
क्रियमाणास्ततस्तुष्टा भजंते जननोत्सवम् ॥ १११ ॥

अर्थ—तापीछैं आपके सम्बन्धी जो प्रीतियुक्त देवनिका समूह ताकरि प्रसन्न करे भये जन्मोत्सवकौं भजै हैं ॥ १११ ॥

ज्ञात्वा धर्मप्रभावेन तत्र प्रभवमात्मनः।
पूजयंति जिनार्चास्ते भक्त्या धर्मस्य वृद्धये ॥ ११२ ॥

अर्थ—धर्मके प्रसाद करि तहां स्वर्गमैं आपकौं जानिकैं ते देव धर्मकी वृद्धिके अर्थि जिन भगवानकी प्रतिमानकौं भक्ति सहित पूजैं हैं ॥ ११२ ॥

सुखवारिनिमग्नास्ते सेव्यमानाः सुधाशिभिः।
सर्वदा व्यवतिष्ठंते प्रतिबिंबैरिवात्मनः ॥ ११३ ॥

अर्थ—ते देव सुखजल विषै डूबे अर अपने प्रतिबिंब समान देवनि करि सेये भये सदा काल तिष्ठै हैं ॥ ११३ ॥

ते सर्वक्लेशनिर्मुक्ता द्वाविंशतिमुदन्वताम्।
आसते तत्र भुंजाना दानवृक्षफलं सुराः ॥ ११४ ॥

अर्थ—ते देव सर्वक्लेश रहित दानरूप वृक्षके फलकौं भोगते संते तहां बाईस सागर तिष्ठै हैं ॥ ११४ ॥

तेषां सुखप्रमां वक्ति वचोभिर्यो महात्मनाम्।
प्रयाति पदविक्षेपैर्गगनांतमसौ ध्रुवम् ॥ ११५ ॥

अर्थ—तिन महात्मा देवनिके सुखके प्रमाणकौं जो पुरुष

वचननि करि है सो यह निश्चय करि पावनके उठावने धरने करि आकाशके अन्तकों जाय है।

भावार्थ—तिन देवनिका सुख वचनतें न कह्या जाय है, ऐसा जानना ॥ ११५ ॥

नवयौवनसम्पन्ना दिव्यभूषणभूषिताः ।
ते वरेण्याद्यसंस्थाना जायन्तेऽन्तर्मुहूर्त्ततः ॥ ११६ ॥

अर्थ—नवयौवनसहित अर दिव्य आभूषणनि करि भूषित अर श्रेष्ठ आदिका समचतुरस्र है संस्थान जिनका ऐसे अन्तर्मुहूर्तमैं उपजे हैं ॥ ११६ ॥

तेषां खेदमलस्वेदजरारोगादिवर्जिताः ।
जायते भास्कराकाराः स्फाटिका इव विग्रहाः ॥ ११७ ॥

अर्थ—तिन देवनिके खेद मल पसेव जरा रोग इत्यादि करि देदीप्यमान हैं आकार जिनके मानौं स्फाटिकमणिके है ऐसे शरीर उपजे हैं ॥ ११७ ॥

राजते हृदये तेषां हारयष्टिर्विनिर्मला ।
निसर्गसम्भवा मूर्त्ता सम्यग्दृष्टिरिव स्थिता ॥ ११८ ॥

अर्थ—तिन देवनिके हृदयविषैं विशेष निर्मल हारकी लडी सोहै है, मानौं स्वभावकरि उपजी मूर्तिवन्त सम्यग्दृष्टी तिष्ठी है ॥ ११८ ॥

मुकुटो मस्तके तेषामुद्योतित दिगन्तरः ।
निषधानामिवादित्यस्तमोध्वंसीव भासते ॥ ११९ ॥

अर्थ—जैसे निषधाचलनके ऊपरि अन्धकारका नाश करनेवाला सूर्य सोहै है तैसें तिन देवनिके मस्तकविषैं उद्योतरूप किया है दिशानका अन्तर जानें ऐसा मुकुट सोहै है ॥ ११९ ॥

निधुवनकुशलाभिः पूर्णचन्द्राननाभिः
स्तनभरवनिताभिर्मन्मथाध्यासिताभिः ।
पृथुतरजघनाभिर्वधूराभिर्वधूभिः
सममलवचोभिः सर्वदा ते रमन्ते ॥ १२० ॥

अर्थ—सुन्दर स्त्रीन करि निर्मल वचन सहित ते देव सदा रमैं हैं, कैसी हैं ते स्त्री कामसेवन विषें प्रवीण है अर पूर्णचन्द्रमा समान है मुख जिनका अर स्तननके भारकरि नम्रीभूत है अर कामकरि व्याप्त है अर विस्तीर्ण है जघन स्थान जिनका ऐसी देवीन सहित ते देव रमैं है ॥ १२० ॥

दिवोऽवतीर्योर्जितचित्तवृत्तयो
महानुभावा भुवि पुण्यशेषतः ।
भवन्ति वंशेषु बुधार्चितेषु
विशुद्धसम्यक्त्वधना नरोत्तमाः ॥ १२१ ॥

अर्थ—ते देव स्वर्गतें अवतरिकैं बाकीके पुण्यतें पृथ्वीविषें पंडितनिकरि पूजित वंशनिविषें नरनिविषें उत्तम चक्रवर्त्यादिक होय हैं। कैसे है ते उदार है चित्तकी परणति जिनकी ऐसे अर महानुभाव अर निर्मल सम्यक्त है धन जिनके, ऐसे होय है ॥ १२१ ॥

अवाप्यते चक्रधरादिसम्पदं
मनोरमामत्र विपुण्यदुर्लभाम् ।
नयंति कालं निखिलं निराकुलाः
न लभ्यते किं खलु पात्रदानतः ॥ १२२ ॥

अर्थ—ते जीव इस लोकविषैं पुण्यरहित जीवनकौं दुर्लभ ऐसी सुन्दर चक्रवर्ती आदिकनिकी सम्पदाको प्राप्त होयकै निराकुल भये

संते समस्त कालकों व्यतीत करै हैं, जातें पात्रदानतें कहा न पाइए है ? सर्व ही पाइए है, ऐसा जानना ॥ १२२ ॥

निषेव्य लक्ष्मीमिति शर्मकारिणीं, प्रथीयसीं द्वित्रिभवेषु कल्मषम् ।
प्रदह्यते ध्यानकृशानुनाऽखिलं, श्रयंति सिद्धिं विधुतापदं सदा ॥१२३॥

अर्थ—याप्रकार सुखकी करनेवाली महान लक्ष्मीकों भोगकै दोय तीन भवनिविषें समस्त कर्मनिकों ध्यान अग्नि करि जरायके ते जीव आपदा रहित मोक्ष अवस्थाकों सदा सेवै हैं ॥ १२३ ॥

विधाय सप्ताष्टभवेषु वा स्फुटं, जघन्यतः कल्मषकक्षकर्त्तनम् ।
व्रजंति सिद्धिं मुनिदानवासिता, व्रतं चरन्तो जिननाथभाषितम् ॥१२४॥

अर्थ—अथवा मुनिराजनिके दानकी है वासना जिनके ऐसे जीव हैं ते जिनभाषित व्रतकों आचरते सन्ते जघन्यपनें सन्तें सात आठ भवविषें कर्मवनकों काटकै निश्चयकरि मुक्तिकों प्राप्त होय हैं, ऐसा जानना ॥ १२४ ॥

पात्रदानमहनीयपादपः, शुद्धदर्शनजलेन वर्द्धितः ।
यद्ददाति फलमर्चितं सतां, तस्य को भवति वर्णने क्षमः ॥ १२५ ॥

अर्थ—निर्मल सम्यग्दर्शनरूप जलकरि वृद्धिकों प्राप्त भया ऐसा पात्रदानरूपी पूजनीक वृक्ष है सो सत्पुरुषनिके पूजित ऐसा जो फल देय है ताके वर्णनविषैं कौन समर्थ है, अपितु कोई समर्थ नाहीं॥ १२५॥

गणेशिनाऽमितगतिना यदीरितं, न दानजं फलमिदमीर्यते परैः ।
विभासितं दिनमणिना यदंबरं, न भास्यते कथमपि दीपकैरिदम् ॥ १२६॥

अर्थ—अपरिमित हैं ज्ञान जिनके ऐसे गणधर देवनि करि यहु दानजनित फल कह्या सो फल और करि न कहिए है। जैसें जो आकाश सूर्य करि प्रकाशित किया सो यहु दीपकनि करि कोई प्रकार भी नाहीं प्रकाशिये है, ऐसा जानना ॥ १२६ ॥

छप्पय छन्द ।

पात्र कुपात्र अपात्र भेद भाष्यो इम जिनपति ।
त्याग कुपात्र अपात्र करहु नितपात्रदानरति ॥
जा प्रसाद सब भोग भोगि फिर होय महायति ।
ध्यान धारि अरि टारि लहै शिवरमा अमितगति ॥
तिहि काल अनन्तानन्त निजरूप मांहि अविचल रहै ।
तसु ध्यानसलिलतैं जीवका तुरत सकल कलिमलव है ॥

ऐसैं श्रीं अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं ग्यारहवां परिच्छेद समाप्त भया ।

द्वादशम परिच्छेद ।

भावद्रव्यस्वभावैर्यैरुन्नता: कर्मपर्वता: ।
विभिन्ना ध्यानवज्रेण दुःखव्यालालिसंकुला: ॥ १ ॥
कर्मक्षयभवाः प्राप्ता मुक्तिदूतीरघच्छिदः ।
नव केवललब्धीर्ये पंचकल्याणभागिनः ॥ २ ॥
सर्वभाषामयी भाषा बोधयन्ती जगत्त्रयीम् ।
आश्चर्यकारिणी येषां ताल्वोष्ठस्पंदवर्जिता ॥ ३ ॥
प्रातिहार्याष्टकं कृत्वा येषां लोकातिशायिनीम् ।
सपर्यां चक्रिरे सर्वे सादरा भुवनेश्वराः ॥ ४ ॥
वचांसि तापहारीणि पयांसीव पयोमुचः ।
क्षिपन्तो लोकपुण्येन भूतले विहरंति ये ॥ ५ ॥
येषामिंद्राज्ञया यक्षः स्वर्गशोभाभिभाविनीम् ।
करोत्यास्थायिकीं कीर्णां लोकत्रितयजंतुभिः ॥ ६ ॥

आद्यं संहतिसंस्थाना निःस्वेदा क्षीरशोणिता ।
राजते सुन्दरा येषां सुगन्धिरमला तनुः ॥ ७ ॥
येषां द्विष्टः क्षयं याति तुष्टो लक्ष्मीं प्रपद्यते ।
न रुष्यंति न तुष्यंति ये तयोः समवृत्तयः ॥ ८ ॥
लक्ष्मीं सातिशयां येषां भुवनत्रयतोषिणीम् ।
अनन्यभावनीं शक्तो वक्तुं कश्चिन्न विद्यते ॥ ९ ॥
रागद्वेषमदक्रोधलोभमोहादयोऽखिलाः ।
येषु दोषा न तिष्ठंति तमेषु न कुला इव ॥ १० ॥
शक्तितो भक्तितोऽर्हतो जगतीपतिपूजिताः ।
ते देवा पूजया पूज्या द्रव्यभावस्वभावया ॥ ११ ॥

अर्थ—जिन करि भाव द्रव्य स्वभावनि करि सहित ऊँचे जे कर्मपर्वत ते ध्यानरूप वज्र करि भेदे हैं, कैसे हैं कर्मपर्वत दुःखरूप सर्पनिकी पंक्ति करि आकुल हैं ।

भावार्थ—जिन भगवाननैं भावकर्म रागादिक द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक पुद्गल स्कन्ध ते ध्यान करि नाश किये हैं ॥१॥ बहुरि जे गर्भादि पंचकल्याणके भोक्ता तीर्थंकर देव कर्मके क्षयतैं उपजी पापके करनेवाली अर मुक्तिकी दूती समान ऐसी नव केवललब्धिनकौं प्राप्त भए हैं ॥ २ ॥ बहुरि जिनकी आश्चर्य उपजावनेवाली सर्व भाषामयी ताल वा होठके चलने करि रहित ऐसी दिव्यध्वनि तीन जगतकौं ज्ञान करती सन्ती है ॥३॥ बहुरि जिनके छत्र चमरादि अष्ट प्रातिहार्य रचिकै सर्व लोकके नायक जो इन्द्रादिक हैं ते आदर सहित लोक विषैं अतिशय उपजावनेवाली जो पूजा ताहि करते भए ॥ ४ ॥

बहुरि जैसैं मेघ जलनिकौं बरसावते लोकमैं विचरै तैसैं सन्ताप हरनेवाले वचननकौं फैलावते सन्ते जे भगवान जीवनके पुण्य करि

पृथ्वीतल विषैं विहार करै हैं ॥ ५ ॥ बहुरि इन्द्रकी आज्ञा करि कुबेर जिनकी समवसरण भूमिकाकौं करै हैं, कैसी है समवसरण भूमिका स्वर्गकी शोभाकौं जीतनेवाली अर तीन लोकके जीवनि करि भरी ऐसी है ॥ ६ ॥ बहुरि जिनकी देह सुन्दर सुगन्धरूप निर्मल सोहै है, कैसी है देह आदिका वज्रवृषभनाराच है संहनन जा विषैं अर आदिका समचतुरस्र है संस्थान जाका अर पसेवरहित अर दूध समान श्वेत है रुधिर जाका ऐसी है ॥ ७ ॥ बहुरि जिनका द्वेष करनेवाला पुरुष क्षयकौं प्राप्त होय है अर भक्ति करनेवाला लक्ष्मीकौं प्राप्त होय है, बहुरि ते भगवान न द्वेष करै हैं न राग करै तिन दोऊन विषैं समान परणति है ॥ ८ ॥

जिनकी अतिशय रहित अर तीन भुवनकौं संतोष करनेवाली अर अन्य हरिहरादि विषैं न पाइए ऐसी जा लक्ष्मी ताहि कहनेकौं कोऊ समर्थ नाहीं है ॥ ९ ॥ बहुरि राग द्वेष मद क्रोध लोभ मोह इत्यादिक समस्त दोष हैं ते न तिष्ठै हैं जैसैं तप्त भूमिमैं ओले नहीं रहै हैं ॥ १० ॥ इंद्रादिकनि करि पूजित ते अर्हंत भगवान शक्ति माफिक भक्तिनैं द्रव्य भाव स्वभावरूप दोय प्रकार पूजा करि पूजने योग्य हैं ॥ ११ ॥

वचोविग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वचनका अर शरीरका जो संकोच कहिए और क्रियानितैं रोकि जिनेन्द्रके सन्मुख करना सो द्रव्यपूजा कहिए है, अर मनका संकोच कहिए अन्य तरफतैं रोकि जिनभक्तिमैं लगावना सो पुराणे पुरुषनि करि भावपूजा कहिए है ॥ १२ ॥

गंधप्रसूनसान्नाय्यदीपधूपाक्षतादिभिः।
क्रियमाणाथ वा ज्ञेया द्रव्यपूजा विधानतः ॥ १३ ॥

अर्थ—अथवा गंध पुष्प नैवेद्य दीप धूप अक्षतनिकरि विधानतैं करी भई द्रव्यपूजा जाननी ॥ १ ३ ॥

व्यापकानां विशुद्धानां जिनानामनुरागतः ।
गुणानां यदनुध्यानं भावपूजेयमुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—बहुरि जिनराजके गुणनिका अनुरागतैं बारंबार चिंतवन करना सो यह भावपूजा कहिए है। कैसे हैं जिन व्यापक कहिए सर्वके जाननेवाले अर रागादि रहित विशुद्ध हैं ॥ १४ ॥

द्वेधापि कुर्वतः पूजां जिनानां जितजन्मनाम् ।
न विद्यते द्वये लोके दुर्लभं वस्तु पूजितम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जीत्या है संसार जिननैं ऐसे जिनदेवनिकी द्रव्य भाव करि दोऊ ही प्रकार पूजाकौं करता जो पुरुष ताकौं इसलोक परलोक विषें उत्तम वस्तु दुर्लभ नाहीं ॥ १५ ॥

यैः कल्मषाष्टकं प्लुष्ट्वा विशुद्धध्यानतेजसा ।
प्राप्तमष्टगुणैश्वर्यमात्मनीनमनव्ययम् ॥ १६ ॥
क्षुधा तृषा श्रम स्वेदनिद्रातोषाद्यभावतः ।
अन्नपानाशनस्नानशयनाभरणादिभिः ॥ १७ ॥
क्षुधादिनोदनैर्येषां नास्ति जातु प्रयोजनम् ।
सिद्धे हि वांछिते कार्ये कारणान्वेषणं वृथा ॥ १८ ॥
कर्मण्यपायतो येषां न पुनर्जन्म जायते ।
विलयं हि गते बीजे कुतः संपद्यतेऽङ्कुरः ॥ १९ ॥
रागद्वेषादयो दोषा येषां संति न कर्मजाः ।
निमित्तरहितं क्वापि न नैमित्तं विलोक्यते ॥ २० ॥
न निर्वृत्तिममी मुक्ता पुनरायांति संसृतिम् ।
शर्मदं हि पदं हित्वा दुःखदं कः प्रपद्यते ॥ २१ ॥

सुखस्य प्राप्यते येषां न प्रमाणं कदाचन ।
आकाशस्यैव नित्यस्य निर्मलस्य गरीयसः ॥ २२ ॥
पश्यंति ये सुखी भूता लोकाग्रशिखरस्थिताः ।
लोकं कर्मभ्रंकुशेन नाट्यमानमनारतम् ॥ २३ ॥
येषां स्मरणमात्रेण पुंसा पापं पलायते ।
ते पूज्या न कथं सिद्धा मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिननें निर्मल ध्यान अग्नि करि अष्टकर्मकौं जलायकै आत्माका हित अर अविनाशी ऐसा सम्यक्तादि अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य पाया ॥ १६ ॥ बहुरि क्षुधा तृषा श्रम पसेव निद्रा हर्ष इत्यादिकके अभावतें क्षुधादिकके दूर करनेवाले जे अन्नपान आसन स्थान सोवना आभूषण इत्यादिकनि करि जिनसिद्धनिके कदाचित् प्रयोजन नाहीं, जातें वांछित कार्यकी सिद्धि भये कारणका ढूँढ़ना वृथा है ।

भावार्थ—लोकमें क्षुधादिककी पीड़ा होय है तब अन्नादिक हेरिए है । बहुरि सिद्ध भगवानके क्षुधादिक दोष ही रहे नाहीं तब अन्नादिककौं हेरना काहेकौं चहिए, वह तौ सहज ज्ञानानंदविषैं मग्न हैं ॥ १७-१८ ॥ बहुरि जिनके कर्मनिके अभावतें फेर जन्म न होय है, जातें बीजकौं नाश भये सन्ते अंकुर कहितें होय, अपितु नाहीं होय।

जन्म होनेका कारण कर्म है सो तिनकै अष्ट कर्मका अभाव भया अब जन्म कैसें होय ॥ १९ ॥ बहुरि कर्मजनित रागद्वेषादि दोष जिनकै नाहीं हैं जातैं निमित्त रहित कहूँ भी न अवलोकिए है।

मोहादि कर्म निमित्त पाय नैमित्तिक रागादि होय है । अब सिद्धीनिकै मोहादि कर्म निमित्त रह्या नाहीं नैमित्तिक रागादि काहेतें होय अपितु नाहीं होय ॥ २० ॥ बहुरि ये सिद्ध भगवान मोक्ष अवस्थाकौं

छोड़िकै फेर संसारमैं नाहीं आवै है, जातें सुखदायक ठिकानेकौं छोड़िक दुःखदायक ठिकानेकौं कौन प्राप्त होय अपितु कोई भी न होय॥ २१ ॥ बहुरि जिनका आकाशकी ज्यौं नित्य अर निर्मल अर बड़ा जो सुख ताका प्रमाण कदाचित् भी न पाइये है ॥ २२ ॥ बहुरि जे सुखरूप लोकके अग्र शिखर परि तिष्ठे सन्ते कर्मरूप नटवा करि निरन्तर नचाया जो लोक ताहि देखै हैं।

कर्मकरि जीवनिकी नाना अवस्था होय है तिनकौं अवलोकै है परन्तु रागादिकके अभावतैं आप सुखरूप तिष्ठै हैं ॥ २३ ॥ बहुरि जिनके स्मरण मात्र करि पुरुषनिका पाप भागी जाय है ते सिद्ध भगवान् मन वचन कायकी क्रिया करि कैसें पूजने योग्य नाहीं, अपितु पूजने ही योग्य है ॥ २४ ॥

चारयंत्यनुमन्यंते पंचाचारं चरंति ये।
जनका इव सर्वेषां जीवानां हितकारणम् ॥ २५ ॥
येषां पादपरामर्शे जीवा मुंचंति पातकम्।
सलिलं हिम रश्मीनां चन्द्रकांतोपला इव ॥ २६ ॥
उपदेशैः स्थिरं येषां चारित्रं क्रियतेतराम्।
ते पूज्यंते त्रिधाऽऽचार्याः पदं वर्यं यियासुभिः ॥ २७ ॥

अर्थ—जे दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार, वीर्याचार ये जो पंच आचार सर्व जीवनिकौं आचरण करावै है अर आप आचरण करै हैं जैसें पिता हितका आचरण करावै तैसें ॥२५॥ बहुरि जिनके चरणका स्पर्श होत सन्तें जीव पापकौं त्यागै है जैसें चन्द्रमाकी किरणनिका स्पर्श होत सन्तें चन्द्रकांत पत्थर जलकौं छोड़े तैसें ॥२६॥ बहुरि जिनके उपदेशनि करि चारित्र अतिशय करि स्थिर कीजिए है ते आचार्य श्रेष्ठपद जो मोक्षपद ताहि जानेकी है वांछा जिनकै ऐसे पुरुषनिकरि मन वचन कायतें पूजिए हैं ॥ २७ ॥

तत्त्वेभ्यः ममत्वेभ्यो येभ्या दलितकल्मषाः ।
जायंते पावना विद्याः पर्वतेभ्य इवाऽऽगाः ॥ २८ ॥

अर्थ— जिनतें, नाश किया है पाप जिनने ऐसी पवित्र विद्या उपजै है। जैसें पर्वतनतें नदी उपजै तैसें, कैसे हैं। ते बड़े हैं अर पराक्रम सहित हैं ॥ २८ ॥

चरन्तः पंचधाचारं भवारण्यदवानलम् ।
द्वादशांगश्रुतस्कन्धं पाठयंति पठन्ति ये ॥ २९ ॥

अर्थ—बहुरि जे संसार वनकौं दावानल समान जो पंचाचार ताहि आचरण करै हैं। बहुरि जो बारह अंगरूप श्रुत स्कन्धकौं पढ़ावै हैं अर पढ़ै हैं ॥ २९ ॥

येषां वचो हृदि स्नाता न संति मलिना जनाः ।
तेऽर्च्यंते न कथं दक्षैरुपाध्याया विरेपसः ॥ ३० ॥

अर्थ—जिनके वचनरूप सरोवर विषैं न्हाये जन हैं ते मलिन न होय हैं ते पापरहित उपाध्याय भगवान चतुर पुरुषनि करि कैसे न पूजिए, पूजिए ही है ॥ ३० ॥

यैरनंगानलस्तीव्रः संतापितजगत्रयः । विध्यापितः शमांभोभिः पापपंकापवारिभिः ॥३१॥ दिधक्षवो भवारण्यं ये कुर्वंति तपऽनघम् । निराकृताखिलग्रन्था निस्पृहाः स्वतनावपि ॥३२॥ निधानमिव रक्षंति- येरत्नत्रयमादृताः । ते सद्भिर्वरिवस्यंते साधवो भव्यबांधवाः ॥ ३३ ॥

अर्थ—संतापकौं प्राप्त किये हैं तीन लोक जानैं ऐसी जो कामरूप तीव्र अग्नि सो जिननें पापरूप कीचके दूर करनेवाले जे शांत भावरूप जल तिन करि उड़ाया है ॥ ३१ ॥ बहुरि जे संसारवनकौं दग्ध करनेके वांछक पापरहित तपकौं करै हैं। कैसे हैं ते साधु निराकरण किया है समस्त अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह जिननें बहुरि अपने

शरीरविषैं भी वांछा रहित हैं ।। ३२ ।। बहुरि जे आदर सहित भण्डारकी ज्यों दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयकौं रक्षा करै हैं ते भव्य जीवनके बांधव जे साधु भगवान ते सत्पुरुषनि करि आराधिए है ।। ३३ ।।

अर्चयद्भयस्त्रिधा पुंभ्य: पंचेति परमेष्ठिन: ।
नश्यंति तरसा विघ्ना विडालेभ्य इवाऽऽखव: ।। ३४ ।।

अर्थ—या प्रकार पंच परमेष्ठीनकौं पूजते जे पुरुष तिनतैं विघ्न शीघ्र नाशकौं प्राप्त होय हैं, जैसें बिलावनतैं मूसा नसैं तैसैं ।

भावार्थ—पंच परमेष्ठीनके पूजनादिकतें शुभ परिणाम बन्धे हैं तातैं अन्तराय कर्मका अनुभाग हीन होय है, तब विघ्न न होय है, ऐसा जानना ।। ३४ ।।

पूजयंति न ये दीना भक्तित: परमेष्ठिन: ।
संपद्यते कुतस्तेषां शर्म निंदितकर्मणाम् ।। ३५ ।।

अर्थ—जे दीन अज्ञानी पुरुष पंच परमेष्ठीनकौं न पूजैं हैं तिन नीच कर्मीनके सुख कहांतें होय, अपितु नाहीं होय, ऐसा जानना ।। ३५ ।।

इन्द्राणां तीर्थकर्तृणां केशवानां रथांगिनाम् ।
संपद: सकला: सद्यो जायंते जिनपूजया ।। ३६ ।।

अर्थ—इन्द्रनिकी तीर्थंकरनिकी नारायणनिकी चक्रवर्त्तिनकी जे समस्त संपदा हैं ते जिनपूजा करि शीघ्र होय हैं ।। ३६ ।।

मानवैर्मानवावासे त्रिदशैस्त्रिदशालये ।
खेचरै: खेचरावासे पूज्यंते जिनपूजका: ।। ३७ ।।

अर्थ—जिनदेवकी पूजा करनेवाले पुरुष हैं ते मनुष्यलोक विषैं तो मनुष्यनि करि पूजिये हैं अर देवलोकविषैं देवनि करि पूजिये है

अर विद्याधरनिके लोकविषैं विद्याधरनि करि पूजिये है ॥ ३७ ॥

सकामा मन्मथालापा निविडस्तनमंडलाः ।
रमण्यो रमणीयांगा रमयंति जिनार्चिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनदेवकी पूजा करनेवाले पुरुषकौं रमणीक जे स्त्री रमावै हैं ते स्त्री कामसहित हैं अर मधुर हैं शब्द जिनके अर कठोर है कुचमण्डल जिनके अर सुन्दर हैं अंग जिनके ऐसी हैं ।

भावार्थ—जिनपूजाविषैं पुण्यबन्ध होय है ताकरि देवादि पद विषैं अनेक स्त्री मिलै है ॥ ३८ ॥

पवित्रं यन्निरातंकं सिद्धानां पदमव्ययम् ।
दुष्प्राप्यं विदुषामर्थ्यं, प्राप्यते तज्जिनार्चकैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिनदेवके पूजक जे पुरुष तिनकरि मुक्त जीवनका पद जो मोक्षसुख सो पाइये है । कैसा है मुक्त जीवनिका पद रागादि मलरहित है पवित्र हैं अर संसार रोगरहित है अर अविनाशी है अर दुर्लभ है अर ज्ञानीनिकरि वांछने योग्य है ऐसो पद जिनपूजक पावैं हैं ।

भावार्थ—जिनपूजाके परिणामके निमित्त पाय परम्पराय रत्नत्रय आराधकैं मोक्ष होय है ॥ ३९ ॥

जिनस्तवं जिनस्नानं, जिनपूजां जिनोत्सवम् ।
कुर्वाणो भक्तितो लक्ष्मीं लभते याचितां जनः ॥ ४० ॥

अर्थ—जिनदेवका स्तवन जिनदेवका अभिषेक जिनदेवकी पूजा महा उत्सव इनकौं भक्तितैं करता संता मनुष्य है सो वांछित लक्ष्मीकौं पावै हैं ॥ ४० ॥

इहां तांई पूजाका वर्णन किया । आगैं शीलका वर्णन करै हैं:—

संसारारातिभीतस्य, व्रतानां गुरुसाक्षिकम् ।
गृहीतानामशेषाणां, रक्षणं शीलमुच्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ—संसार वैरीतें भयभीत जो पुरुष ताके गुरुकी साखि ग्रहण करे जे समस्त व्रत तिनकी रक्षा करना सो शील कहिए है॥ ४१ ॥

साक्षीकृता व्रतादाने कुर्वते परमेष्ठिनः।
भूपा इव महादुःखं विचारे व्यभिचारिणः॥ ४२ ॥

अर्थ—व्रत ग्रहण विषै साक्षी किये जे परमेष्ठी हैं ते विचार विषैं व्यभिचार करता जो पुरुष ताकौं राजानकी ज्यों महान् दुःख करै हैं।

भावार्थ—जैसें राजाकै आगे किछु प्रतिज्ञा करै अर तामैं भूल जाय तो दण्ड पावै तैसें अर्हंतादिकनिकै आगें लीनी जो आंकडी तामैं भंग होय तौ महादुःख पावै। यद्यपि अर्हंतादिक वीतराग हैं उनके दुःख देनेका किछू प्रयोजन नहीं तथापि अपने ही परिणामनिकी मलिनतातें पाप बांधि नरकादि दुःख भोगै है, ऐसा जानना॥४२॥

एकदा ददते दुःखं नरनाथास्तिरस्कृताः।
गुरवो न्यक्कृता दुःखं वितरंति भवे भवे॥ ४३ ॥

अर्थ—तिरस्कार किये भए राजा हैं ते तौ एकवार ही दुःख देय हैं अर निराकरण भये गुरु हैं ते भव भव विषैं दुःख देय हैं।

भावार्थ—गुरूनके अनादर करि महापाप बंध होय है तातें जीव नरकादिविषैं महादुःख पावै है॥ ४३ ॥

भक्षयित्वा विषं घोरं वरं प्राणा विवर्जिताः।
न कदाचिद्व्रतं भग्नं गृहीत्वा सूरिसाक्षिकम्॥ ४४ ॥

अर्थ—भयानक विषकौं खाय करि त्यागे भये प्राण हैं ते श्रेष्ठ हैं अर आचार्यकी साखि व्रतकौं ग्रहण करि भंग करना श्रेष्ठ नाहीं।

भावार्थ—मरण होय तो हो परन्तु आंकडी भंग करना योग्य नाहीं॥ ४४ ॥

वसनैर्भूषणैर्हीनः सकलैरपि शोभते ।
शीलेन बुधपूज्येन न पुनर्वर्जितो जनः ॥ ४५ ॥

अर्थ—सर्व वस्त्रनकरि आभूषणन करि रहित भी पुरुष सोहै हैं । बहुरि पंडितनि करि पूजनीक जा शील ताकरि रहित पुरुष न सोहै है ॥ ४५ ॥

सहजं भूषणं शीलं शीलं मंडनमुत्तमम् ।
पाथेयं पुष्कलं शीलं शीलं रक्षणमूर्जितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—शील है सो स्वभावरूप आभूषण है अर शील उत्तम मंडन है अर शील है सो घणी वटसारो है अर शील है सो बड़ा रक्षा करना है । शील ही जीवनिकी रक्षा करै है ॥ ४६ ॥

+शीलेन रक्षितो जीवो न केनाऽप्यभिभूयते ।
महाह्रदनिमग्नस्य किं करोति दवानलः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो पुरुषकी शील करि रक्षा कीजिए है सो काहूकरि भी तिरस्कारकों प्राप्त नहीं होय है । जैसे बड़े सरोवरविषैं डूब्या पुरुषका दावानल कहा करि सकै है तैसैं ॥ ४७ ॥

बान्धवाः सुहृदः सर्वे निःशीलस्य पराङ्मुखाः ।
शत्रवोऽपि दुराराध्याः संमुखाः सन्ति शीलिनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—बांधव जन हैं ते तथा मित्र हैं ते सर्व शीलरहित पुरुषके परांगमुख होय है अर दुःखकरि आराधे जाय ऐसे शत्रु भी शीलवान पुरुषके सहायक होय हैं ॥ ४८ ॥

शीलतो न परो बन्धुः शीलतो न परः सुहृत् ।
शीलतो न परा माता शीलतो न परः पिता ॥ ४९ ॥

+ यह श्लोक मूलप्रतिमें ४७ के नंबर पर है और वचनिकाकी प्रतिमें ४९ के नंबर पर है ।

अर्थ—शील सिवाय और बन्धु नाहीं, शीलतें सिवाय और मित्र नाहीं, शीलतैं सिवाय और माता नाहीं, शीलतैं सिवाय और पिता नाहीं।

भावार्थ—जीवका हितकारी शीलसिवाय और नाहीं ॥ ४९ ॥

उपकारो न शीलस्य कर्तुमन्येन शक्यते ।
कल्पद्रुमफलं दत्ते परः कुत्र महीरुहः ॥ ५० ॥

अर्थ—शीलसमान उपकार करनेकों और समर्थ न हूजिए है, जैसें कल्पवृक्ष फल देय है सो और कहां वृक्ष फल कहां देय है, कहूँ भी न देय है ॥ ५० ॥

तापेऽपि सुखितः शीली शीलमोची पुनर्जनः ।
चित्रं जनांगुलिच्छायो स्थितोऽपि पदितप्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं बड़ा आश्चर्य है । देखो-शीलवान जीव है सो ताप कहिए घाम विषें भी सुखी है । बहुरि शीलका त्यागनेवाला है सो मनुष्यनिकी अँगुलीकी छाया विषें तिष्ठ्या भी तप्तायमान होय है ॥ ५१ ॥

कदाचन न केनापि सुशीलः परिभूयते ।
न तिरस्क्रियते यो हि श्लाघ्यते तस्य जीवितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो सुशील पुरुष कोऊ करि भी चलायमान न कीजिए है अर तिरस्कार न कीजिए है ताका जीवन सराहिए है ॥ ५२ ॥

भंगस्थानपरित्यागी व्रतं पालयतेऽमलम् ।
तस्करैर्लुट्यते कुत्र दूरतोऽपि पलायितः ॥ ५३ ॥

अर्थ—भंगस्थान कहिये जिस स्थानमें शील भंग होय ऐसा स्थानका त्यागनेवाला पुरुष है सो निर्मल व्रतकों पालै है । जैसे दूर हीतें भाग्या जो पुरुष है सो चौरन करि लूटिए है, अपितु नाहीं लूटिए है ।

भावार्थ—जैसे चौरनिकौं दूरहीतैं त्यागै तौ पुरुष लूटै नाहीं तैसे व्रतभंगके कारण स्थानादिक त्यागै ताका व्रत निर्मल पलै है ॥५३॥

आगैं—शीलभंगके कारण जे द्यूतादिक तिनका निषेध करै हैं, तहां प्रथम द्यूतका निषेध करै हैं:—

नानानर्थकरं द्यूतं मोक्तव्यं शीलशालिना ।
शीलं हि नाश्यते तेन गरलेनेव जीवितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—शील करि शोभित जो पुरुष है ताकरि अनेक अनेक अनर्थनिका करनेवाला जो जूवा है सो त्यागना योग्य है, जातैं निश्चय सेती ताकरि शील नाशिए है जैसैं विष भक्षण करि जीवन नाशिए है ॥ ५४ ॥

विषादः कलहो राटिः कोपो मानः श्रमो भ्रमः ।
पैशून्यं मत्सरः शोकः सर्वे द्यूतस्य बांधवाः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विषाद कलह राड क्रोध मान खेद संशय चुगली मत्सर भाव, शोक, ये सर्व जूवाके बन्धुजन हैं ।

भावार्थ—जहां जूवा होय है तहां पूर्वोक्त सर्व कुभाव अवश्य होय हैं ॥ ५५ ॥

दुःखानि तेन जन्यन्ते जलानीवांबुवाहिना ।
व्रतानि तेन धूयन्ते रजांसीव चरण्युना ॥ ५६ ॥

अर्थ—तिस जूवा करि जैसैं बादले करि जल उपजाइये है तैसैं दुःख उपजाइए हैं अर जैसे पवन करि रज उडाइए है तैसैं जूवा करि व्रत उडाइए है ।

भावार्थ—जूवा करि नाना दुःख होय हैं अर व्रतनिका लेश भी न रहै है ॥ ५६ ॥

न श्रियस्तत्र तिष्ठंते द्यूतं यत्र प्रवर्त्तते ।
न वृक्षजातयस्तत्र विद्यंते यत्र पावकाः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसें जहां अग्नि होय है तहां वृक्षनकी जाति उत्पन्न न होय है तैसें जहां जूवा प्रवर्ते है तहां लक्ष्मी न तिष्ठै है ॥ ५७ ॥

मातुरप्युत्तरीयं यो हरते जनपूजितम् ।
अकर्तव्यं परं तस्य कुर्वतः कीदृशी त्रपा ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो जूवा खेलनेवाला पुरुष सो लोकमैं मान्य जो माताका लुगड़ा ताकौं भी हर लेय है तिनकै और अकार्य करतेकै कैसी लज्जा।

भावार्थ—कोऊ भी अकार्य करनेमैं जूवावालेकै लज्जा नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

सम्पदं सकलां हित्वा स गृह्णाति महाऽऽपदम् ।
स्वकुलं मलिनं कृत्य वितनोति च दुर्यश ॥ ५९ ॥

अर्थ—सो जूवा खेलनेवाला पुरुष समस्त सम्पदाकौं त्याग करि महा आपदाकौं ग्रहण करै है, बहुरि अपने कुलकौं मलिन करकै खोटा यश विस्तारै है ॥ ५९ ॥

नारकैरपरैः क्रुद्धैर्नारकस्येव मस्तके ।
निखन्य कितवैस्तस्य दुज्ज्वालो ज्वाल्यतेऽनलः ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसें अन्य क्रोधायमान भए जे नारकी तिन करि नारकीके मस्तक विषैं थापि करि दुःखकारी है ज्वाला जाकी ऐसा अग्नि जलाइये है तैसें जुवारीन करि जुवारीके सिर परि अग्नि जलाइए है ॥ ६० ॥

कर्कशं दुःश्रवं वाक्यं जल्पतो वंचिताः परे ।
कुर्वंति द्यूतकारस्य कर्णनासादिकर्त्तनम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जिनका धन ठिगलिया ऐसे जे अन्य द्यूतकार हैं ते कठोर अर कानानिकौं दुःखदाई वचन बोलते सन्ते जुवा खेलनेवालेके कान नासिका आदि अंगनिकौं काटैं हैं ॥ ६१ ॥

विज्ञायेति महादोषं द्यूतं दीव्यन्ति नोत्तमाः ।
जानानाः पावकोष्णत्वं प्रविशंति कथं बुधाः ॥ ६२ ॥

अर्थ—या प्रकार जूवाकौं महादोषरूप जान करि उत्तम पुरुष नाहीं खेलै है जैसैं अग्निका उष्णपना जाणते संते पंडित जन हैं ते अग्निमैं प्रवेश कैसें करें, अपितु नाहीं करै हैं ॥ ६२ ॥

आगैं—वेश्याका निषेध करै हैं;—

वितनोति दृशो रागं या वात्येव रजोमयी । विध्वंसयति या लोकं शर्वरीव तमोमयी ॥ ६३ ॥ या स्वीकरोति सर्वस्वं चौरीवार्थपरायणा । छलेन याति गृह्णाति शाकिनीवामिषप्रिया ॥ ६४ ॥ वह्निज्वालेव या स्पृष्टा संतापयति सर्वतः । शुनीव कुरुते चाटु दानतो याऽति कश्मला ॥ ६५ ॥ विमोहयति या चित्तं मदिरेव निषेविता । सा हेया दूरतो वेश्या शीलालंकारधारिणा ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो वेश्या नेत्रनि विषैं जैसे धूलि सहित पवन राग विस्तारै तैसैं राग विस्तारै है बहुरि या लोकका जैसैं अंधकारमयी रात्रि नाश करै है तैसैं नाश करै है ॥ ६३ ॥ बहुरि जो वेश्या धनमैं तत्पर चौरी करनेवालाकी ज्यौं सर्व धनकौं गृहण करै है । बहुरि जो छलकरि मांस है प्रिय जाकौं ऐसी शाकिनिकी ज्यौं मनुष्यकौं अतिशय करि अंगीकार करै है ॥ ६४ ॥ बहुरि जो वेश्या अग्निकी ज्वाला समान स्पर्शी भई सर्व तरफनैं संताप उपजावै है । बहुरि धनके दयतैं जो अत्यंत पापिनी कुत्तीकी ज्यौं खुशामद विस्तारै है ॥ ६५ ॥ बहुरि जो मदिराकी ज्यौं सेई भई चित्तकौं मोह उपजावै है सो वेश्या शीलरूप आभूषणका धारी जो पुरुष ताकरि दूरतैं त्यागनी योग्य है ॥ ६६ ॥

सत्यं शौचं शमं शीलं संयमं नियमं यमम् ।
प्रविशंति बहिर्मुक्ता विटाः पण्यांगनागृहे ॥ ६७ ॥

अर्थ—व्यभिचारी पुरुष हैं ते सत्य शौच शम शील संयम नियम यम इत्यादि सर्व धर्मके अंगनिकों बाहर छोडिकरी वेश्याके घरमें प्रवेश करै है।

भावार्थ—वेश्याके घरमें प्रवेश करते ही सर्व धर्मका नाश होय है ॥ ६७ ॥

तपो व्रतं यशो विद्या कुलीनत्वं दमो दया।
छिद्यंते वेश्यया सद्यः कुठार्येवाऽखिला लताः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसैं कुल्हाडी करि सर्व लता शीघ्र छेदिए है तैसैं वेश्या करि तप व्रत यश विद्या कुलीनपना इंद्रियनिका दमन दया ये सर्व शीघ्र छेदिये हैं। ६८ ॥

जननी जनको भ्राता तनयस्तनया स्वसा।
न संति वल्लभास्तस्य दारिका यस्य वल्लभा ॥ ६९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकें वेश्या प्यारी है ता पुरुषकें माता पिता भाई पुत्र पुत्री बहन ये प्यारे नाहीं ॥ ६९ ॥

न तस्मै रोचते सेव्यं गुरूणां वचनं हितम्।
सशर्करामिव क्षीरं पित्ताकुलितचेतसे ॥ ७० ॥

अर्थ—वेश्या सेवनेवाले पुरुषकों सेवने योग्य जो गुरुनका हितरूप वचन सो नहीं रुचै है। जैसैं पित्तकरि आकुलित है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकै अर्थ मिश्री सहित दूध नाहीं रुचै है तैसैं।

भावार्थ—वेश्यासक्तकों गुरु वचन नहीं सुहावै है ॥ ७० ॥

वेश्यावक्त्रगतां निद्यां लालां पिबति योऽधमः।
शुचित्वं मन्यते स्वस्य काऽपरातो विडम्बना ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे अधम पुरुष वेश्याके मुख विषें प्राप्त जो निंदनीक लाल ताहि पीवै है अर आपकै शुचिपनां मानै है या सिवाय और कहां विडम्बना है ॥ ७१ ॥

यो वेश्यावदनं निस्ते मूढो मद्या दिवासितम् ।
मद्यमांसपरित्यागव्रतं तस्य कुतस्तनम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो मूढ मदिरा करि वासित जो वेश्याका मुख ताहि चूमैं है ताकै मदिरा मांसके त्यागरूप व्रत काहे ॥ ७२ ॥

वदनं जघनं यस्या नीचलोकमलाविलम् ।
गणिकां सेव्रमानस्य तां शौचं वद कीदृशम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—जा वेश्याका मुख अर जघन नीच लोकके मल करि मलिन है ता गणिकाकौं सेवता जो पुरुष ताकै पवित्रपना कैसा, कोई प्रकार पवित्रपना नाहीं ॥ ७३ ॥

या परं हृदये धत्ते परेण सह भाषते ।
परं निषेवते लुब्धा परमाह्वयते दृशा ॥ ७४ ॥

अर्थ—या वेश्या मनमैं अन्य पुरुषकौं धारै है अर औरके साथ बोले है अर लोभनी औरकौं सेवै है अर दृष्टि करि औरकौं बुलावै है ॥ ७४ ॥

सरलोऽपि सदक्षोऽपि कुलीनोऽपि महानपि ।
ययेक्षुरिव निःसारः सुपर्वापि विमुच्यते ॥ ७५ ॥

अर्थ—जा वेश्या करि मायाचाररहित सरल भी अर चतुर भी अर कुलीन भी अर बड़ा भी अर सुपर्वा कहिये सुन्दर अंग सहित भी निःसार कहिये द्रव्य रहित होय सो साँठेकी ज्यौं त्यागिए है ।

भावार्थ—जैसे सूधा भी भला भी अर कुलीन कहिये पृथ्वी विषैं लीन भी बड़ा भी अर सुपर्वा कहिये भली है मुठार जाकी ऐसा भी साँठा है सो सार रहित त्यागिए है तैसैं वेश्या करि निःसार मनुष्य त्यागिए है ॥ ७५ ॥

न सा सेव्या त्रिधा वेश्या शीलरत्नं यियासता ।
जानानो न हि हिंसत्वं व्याघ्रीं स्पृशति कश्चन ॥ ७६ ॥

अर्थ—शील रत्नकी रक्षा करते जो पुरुष ताकरि सो वेश्या मन वचन काय करि सेवनी योग्य नाहीं जातें तिसकपनेंकौं जानता संता कोई भी पुरुष है सो थ्याघ्रीकौं नाहीं स्पर्शै है ॥ ७६ ॥

आगें—परस्त्री सेवनका निषेध करै हैं;—

तिरश्ची मानुषी देवी निर्जीवा च नितंबिनी ।
परकीया न भोक्तव्या शीलरत्नवता त्रिधा ॥ ७७ ॥

अर्थ—तिर्यंचणी मनुष्यणी देवी ये तो चेतन अर अचेतन ऐसी काष्ठ पाषाणादिककी ऐसी च्यार प्रकार परस्त्री है सो शीलरत्न सहित पुरुष करि मन वचन काय करि सेवनी योग्य नाहीं ॥ ७७ ॥

जीवितं हरते रामा परकीया निषेविता ।
प्लोषते सर्पिणी दुष्टा स्पृष्टा दृष्टिविषा न किम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—परस्त्री सेई भई जीवितव्यकौं हरै है जैसें जाके देखे ही विष चढ़ै ऐसी दुष्ट सर्पिणी स्पर्शी सन्ती कहां न जलावै, अपितु जलावै ही है ॥ ७८ ॥

यच्चेह लौकिकं दुःखं परनारीनिषेवने ।
तत्प्रसूनं मतं प्राज्ञैर्नरकं दारुणं फलम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—जो परनारी सेवने विषैं इस लोक सम्बन्धी दुःख है सो तो ताका फल है अर नरक सम्बन्धी भयानक दुःख है सो ताका फल पंडितनिनैं कह्या है ॥ ७९ ॥

स्वजनैः रक्षमाणायास्तस्या लाभोऽतिदुष्करः ।
तापस्तु चिन्त्यमानायां सर्वांगीणो निरन्तरः ॥ ८० ॥

अर्थ—स्वजननिकरि रक्षा करी भई परस्त्री है ताका लाभ अति दुष्कर है । बहुरि ताका चिंतवन करै सन्ते निरन्तर सर्व अंगमैं ताप उपजै है ॥ ८० ॥

प्राप्यापि कष्टकष्टेन तां देशे यत्र तत्र वा।
किं सुखं लभते भीतः सेवमानस्त्वरान्वितः॥ ८१॥

अर्थ—बहुरि जिस तिस क्षेत्र विषैं कष्ट कष्ट करि परस्त्रीकौं पायकरि भी भयभीत आतुरता सहित सेवता संता कहां सुख पावै है? किछू भी सुख न पावै है॥ ८१॥

या हिनस्ति स्वकं कांतं सा जारं न कथं खला।
विडालं याऽत्ति पुत्रं स्वं सा किं मुंचति मूषिकाम्॥ ८२॥

अर्थ—जो स्त्री अपने पतिकौं मारै है सो दुष्टनी यारकौं कैसैं नाहीं मारै है जैसैं जो विलाई अपने पुत्रकौं खाय है सो मूसेकौं न खाय? खाय ही है॥ ८२॥

यावद्दर्शं कुचेतस्काः किं वृण्वंति परांगनाम्।
न पापतः परो लाभः कदाचित्तत्र विद्यते॥ ८३॥

अर्थ—ऐसी परस्त्रीकौं खोटे हैं चित्त जिनके ऐसे पुरुष हैं ते क्यों भोगैं हैं? जातैं परस्त्री सेवन विषैं पाप समान और लाभ नाहीं है॥ ८३॥

या स्वं मुंचति भर्त्तारं विश्वासस्तत्र कीदृशः।
को विश्वासमृते स्नेहः किं सुखं स्नेहतो विना॥ ८४॥

अर्थ—जो स्त्री अपने भरतारकौं छोडै ता विषैं विश्वास कैसा? अर विश्वास विना स्नेह विना सुख कहां॥ ८४॥

वधो बंधो धनभ्रंशस्तापः शोकः कुलक्षयः।
आयासः कलहो मृत्युः पारदारिक बांधवाः॥ ८५॥

अर्थ—वध कहिए नाश अर बन्ध बन्धन अर धनका नाश अर सन्ताप अर शोक अर कुलका क्षय अर खेद अर कलह अर मरण ये परस्त्री सेवनेवालेके बांधव हैं।

भावार्थ—परस्त्री सेवनेवालेके वध बन्धनादि सर्व ही होय है ॥ ८५ ॥

लिंगच्छेदं खरारोपं कुलालकुसुमार्चनम् ।
जननिंदामभोगत्वं लभते पारदारिकः ॥ ८६ ॥

अर्थ—परस्त्रीका सेवनेवाला पुरुष है सो लिंगका छेदना गधापै बैठावना अर कुलालकुसुम कहिए छैनां कंडा तिनकरि पूजन कहिए मारना अर लोकनिंदा अर भोगरहितपना इत्यादि पावै है ॥८६॥

लब्ध्वा विडम्बनां गुर्वीमत्र प्राप्तः स पंचताम् ।
श्वभ्रे यद्दुःखमाप्नोति कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥ ८७ ॥

अर्थ—सो परस्त्री सेवनेवाला इस लोक विषें बड़ी विडम्बनाकौं पाय करि मरणकौं प्राप्त भया नरक विषें जो दुःख पावै है ताहि वर्णन करनेकौं कौन समर्थ है ? ॥ ८७ ॥

एकांते यौवनध्वांते नारीं नेदीयसी सतीम् ।
दृष्ट्वा क्षुभ्यति धीरोऽपिका वार्ता कातरे नरे ॥ ८८ ॥

अर्थ—एकांतमैं यौवनरूप अंधकार विषें शीलवंत वृद्धानारीकौं देखि करि धीर पुरुष भी क्षोभकौं प्राप्त होय है तो कायर पुरुष विषें कहा वार्ता है, वह तो क्षोभकौं प्राप्त होय ही होय ॥ ८८ ॥

जल्पनं हसनं कर्म* क्रीडा वक्त्रावलोकनम् ।
आसनं गमनं स्थानं वर्णनं भिन्न भाषणम् ॥ ८९ ॥
नार्या परिचयं सार्द्धं कुर्वाणः परकीयया ।
वृद्धोऽपि दूष्यते प्रायस्तरुणो न कथं पुनः ॥ ९० ॥

अर्थ—परस्त्री साथ बोलना हसना कार्य करना क्रीडा करना मुख देखना बैठना गमन करना ठाडे रहना वर्णन करना एकांत

* संस्कृत प्रतियोंमें "कर्म" इसके स्थानमैं "नर्म" ऐसा पाठ है।

विषैं बोलना इत्यादि परिचय करता संता वृद्ध पुरुष भी बाहुल्य पनैं दूषित होय है तौ तरुण पुरुष कैसे दूषित न होय? होय ही होय ॥ ८९ ॥ ९० ॥

विबुद्ध्येति महादोषं परामा मनीषिभिः ।
विवर्ज्या दूरतः सद्भिर्भुजगीव भयंकरा ॥ ९१ ॥

अर्थ—या प्रकार महादोष जानिकैं बुद्धिवान सत्पुरुषनि करि परस्त्री भयंकर सर्पिणीकी ज्यौं दूरतैं त्यागनी योग्य है ॥ ९१ ॥

आगैं-शिकारका निषेध करै हैं—

नामापि कुरुते यस्या गृहीतं गुरु कल्मषम् ।
मृगया सा त्रिधा हेया भवदुःखविभीरुणा ॥ ९२ ॥

अर्थ—जाका नाम भी बड़ा पाप करै है सो शिकार खेलना संसारतै भयभीत जो पुरुष ताकरि मन वचन कायतैं त्यागने योग्य है ॥ ९२ ॥

त्रस्यंति सर्वदा दीनश्चलतः पर्णतोऽपि ये ।
हिंस्यंते तेऽपि यैर्जीवास्तेभ्यः के निघृणाः परे ॥ ९३ ॥

अर्थ—जे दीन जंतु चालते पत्तामें भी सदाकाल त्रासकौं प्राप्त होय हैं ते भी मृगादिक जीव तिन शिकारीन करि मारिए है तिनतैं सिवाय और निर्दयी कौन है ॥ ९३ ॥

निरागसः पराधीना नश्यंतो भयविह्वलाः ।
कुरंगामैर्निहन्यंते पापिष्ठा न परे ततः ॥ ९४ ॥

अर्थ—अपराध रहित अर पराधीन अर भय करि व्याकुल नाशकौं प्राप्त होते भागते ऐसे हरिण जिनकरि मारिए है तिनके सिवाय और दूसरे पापी नाहीं ॥ ९४ ॥

गृह्णंतोऽपि तृणं दंतैर्देहिनो मारयन्ति ये ।
व्याघ्रेभ्यस्ते दुराचारा विशिष्यंते कथं खलाः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो दांतनि करि तृण ग्रहण करै हैं ऐसे मृगादिक जीवनीकौं जे मारै हैं ते दुराचारी दुष्ट जीव व्याघ्रनितैं न्यारे कैसैं कहिए है।

भावार्थ—व्याघ्र भी मृगादिककौं मारै है अर शिकारी भी मारै है तातैं दोनौं समान ही हैं॥ ९५॥

ये मारयंति निस्त्रिंशा ये मार्यंते च विह्वला:।
तेषां परस्परं नास्ति विशेषस्तत्क्षणं विना॥ ९६॥

अर्थ—जे निर्दयी मारै है अर जे विह्वल जीव मारिए है तिनकै परस्पर ता समयविना विशेष नाहीं।

भावार्थ—वर्त्तमान समयतें तौ मारनेवाला अर जिनकौं मारै है ते जीव हीनाधिक हैं बहुरि आगैं नरकादिकमैं परस्पर मारै है तहां हीनाधिक नाहीं॥ ९६॥

स्वमांसं परमांसैर्ये पोषयंति दुराशया:।
स्वमांसमेव खाद्यंते हठतो नारकैरिमे॥ ९७॥

अर्थ—जो दुष्टचित्त परजीवनके मांसनकरि अपना मांस पोषै है सो ये हठतें अपने मांसहीकौं नारकीन करि खवावै है॥ ९७॥

स्वल्पायुर्विकलो रोगी विचक्षुर्बधिर: खल:।
वामन: पामन: षंढो जायते स भवे भवे॥ ९८॥

अर्थ—अल्प आयु अंगविकल रोगी नेत्ररहित बहरा दुष्ट वामन कुष्टरोगी नपुंसक सो मांसभक्षी भव भव विषैं होय है॥ ९८॥

दु:खानि यानि दृश्यंते दु:सहानि जगत्त्रये।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिमर्दनकारिणा॥ ९९॥

अर्थ—तीन लोक विषैं जे दु:सह दुख देखिए हैं ते सर्व दु:ख प्राणीनकी हिंसा करनेवाले करि पाइए है॥ ९९॥

इति दोषवती मत्त्वा, मृगया हितकांक्षिणा ।

नानानर्थकरी त्याज्या, राक्षसीव विभीषणा ॥ १०० ॥

अर्थ—या प्रकार दोष सहित जानिकै हितका वांछक जो पुरुष ताकरि अनेक अनर्थनकी करनहारी राक्षसी समान भयकारी जो शिकार सो त्यागना योग्य है ॥ १०० ॥

भोजनं कुर्वता कार्यं, मौनं शीलवता सदा ।

सन्तोषित्वमिवानिंद्यं, भैक्ष्यशुद्धिविधायिना ॥ १०१ ॥

अर्थ—जैसैं भिक्षाशुद्धिका आचरण करनेवाला जो मुनि ताकरि अनिंद्य सन्तोषीपना करना योग्य है तैसैं भोजन करता जो शीलवान सत्पुरुष ताकरि मौन करना योग्य है ॥ १०१ ॥

सर्वदा शस्यते जोषं, भोजने तु विशेषतः ।

रसायनं सदा श्रेष्ठं, सरोगित्वे पुनर्न किम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—मौन सदाकाल सराहिए है अर भोजनमैं तो विशेष सराहिए है । जैसैं औषध सदा भली है बहुरि सरोगीपने विषैं कैसैं भलो न होय ॥ १०२ ॥

सन्तोषो भाव्यते तेन, वैराग्यं तेन दृश्यते ।

संयमः पोष्यते तेन, मौनं येन विधीयते ॥ १०३ ॥

अर्थ—जाकरि मौन करिए है ताकरि सन्तोष भाइए है ताकरि वैराग्य देखिऐ है ताकरि संयम पोषिए है ॥ १०३ ॥

वाचो व्यापारतो दोषा, ये भवंति दुरुत्तराः ।

ते सर्वेऽपि निवार्यंते, मौनव्रतविधायिना ॥ १०४ ॥

अर्थ—वचनके व्यापारतैं जे दुःखसैं उतरे जाय ऐसे दोष हैं ते सर्व ही मौन व्रतके धारक पुरुष करि निवारिए है ॥ १०४ ॥

सागरोऽपि जनो येन, प्राप्यते यतिसंयमम् ।

मौनस्य तस्य शक्यंते, केन वर्णयितुं गुणाः ॥ १०५ ॥

अर्थ—जिस मौन व्रत करि गृहस्थ भी यतिके संयमकौं प्राप्त कीजिए है तिस मौनके गुण कौन करि वर्णन करनेकौं समर्थ हूजिए है, अपितु नाहीं हूजिए है ॥ १०५ ॥

पोषेण विशता रोधः, कल्मषस्य विदीयते ।
बलिष्ठेन महिष्ठेन, सलिलस्येव सेतुना ॥ १०६ ॥

अर्थ—जैसैं बलवान अर बड़ा जो सेतु कहिए पाल ताकरि जलका रोध करिए तैसैं प्रवेश करता जो पाप ताका रोध मौनकरि कीजिए है ॥ १०६ ॥

हुंकारांगुलिखात्कारभ्रूमूर्द्धचलनादिभिः ।
मौनं विदधता संज्ञा, विधातव्या न गृद्धये ॥ १०७ ॥

अर्थ—मौनकौं धारता जो पुरुष ताकरि हुंकार करना अंगुली उठावना खंकार करना भृकुटी चलावना मस्तक चलावना इत्यादि करि गृद्धि जो अति चाह ताके अर्थि संज्ञा करना योग्य नाहीं ॥ १०७ ॥

सार्वकालिकमन्यच्च, मौनं द्वेधा विधीयते ।
भक्तितः शक्तितो भव्यैर्भवभ्रमणभीरुभिः ॥ १०८ ॥

अर्थ—संसार भ्रमणतैं भयभीत जे भव्य जीव तीनकरि भक्तितैं शक्तिसारू एक तौ सार्वकालिक कहिए मरण पर्यंत दूजा असार्वकालिक कहिए कालकी मर्यादारूप ऐसैं दोय प्रकार मौन कीजिए है ॥ १०८ ॥

भव्येन भक्तितः कृत्वा, मौनं नियतकालिकम् ।
जिनेन्द्रभवने देया, घंटिका समहोत्सवम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—भव्य जीव करि भक्तिसैं कालकी मर्यादारूप मौन करिकै जिनेन्द्रके मंदिर विषैं महोत्सव सहित जैसैं होय तैसैं घंटिका देनी योग्य है।

भावार्थ—मौनव्रत पूर्ण होय तब उद्यापन करै तामैं जिन चैत्यालयमैं घंटा चढ़ावै, ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

नचार्वकालिके मौने, निर्वाहव्यतिरेकतः ।
उद्योतनं परं प्राज्ञैः, किंचनापि विधीयते ॥ ११० ॥

अर्थ—यावत्कालिक कहिए यावज्जीव मौनविषैं निर्वाह विना (निर्वाहके सिवाय) पंडितनि करि किछू भी उद्योतन न करिए है ॥ ११० ॥

आवश्यके मलक्षेपे, पापकार्ये विशेषतः ।
मौनी न पीड्यते पापैः, सन्नद्धः सायकैरिव ॥ १११ ॥

अर्थ—सामायिकादि आवश्यक क्रिया विषैं, मलके क्षेपण विषैं, बहुरि पाप कार्य जो मैथुन सेवन आदि ता विषैं मौनका धारी जीव है सो पाप करि न पीडिए है। जैसैं बख्तर पहरे योद्धा है सो बाणनि करि न पीड्या जाय है तैसैं मौनी पापनि करि न बन्धे है ॥१११॥

कोपादयो न संक्लेशा, मौनव्रतफलार्थिना ।
पुरः पश्चाच्च कर्त्तव्याः, सूद्यते तद्धितैः कृतैः ॥ ११२ ॥

अर्थ—मौनव्रतके फलका वांछक जो पुरुष ताकरि आगैं वा पीछैं क्रोधादि कषाय करना योग्य नाहीं, जातैं करे जे क्रोधादि कषाय तिन करि मौन व्रत नाश कीजिए है।

भावार्थ—मौनके पहले वा पीछै कषाय न करना। कषायतैं मौन व्रत निष्फल होय है ॥ ११२ ॥

वाचं यमः पवित्राणां, गुणानां सुखकारिणाम् ।
सर्वेषां जायते स्थानं, मणीनामिव नीरधिः ॥ ११३ ॥

अर्थ—वचनका संयम है सो पवित्र अर सुखकारी जे सर्वगुण तिनका स्थान होय है जैसें रत्ननिका स्थान समुद्र होय है तैसें।

भावार्थ—वचनका संयम है सो सर्व गुणनिका स्थान है, ऐसा जानना ॥ ११३ ॥

वाणी मनोरमा तस्य, शास्त्रसंदर्भगर्भिता ।
आदेया जायते येन, क्रियते मौनमुज्ज्वलम् ॥ ११४ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि निर्मल मौन करिये हैं ताकि शास्त्ररचना करि युक्त मनकौं प्यारी आदर करने योग्य वाणी होय है ॥११४॥

पदानि यानि विद्यन्ते, वन्दनीयानि कोविदैः ।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते, प्राणिना मौनकारिणा ॥ ११५ ॥

अर्थ—जे पंडितनि करि वन्दनीक पद हैं ते सर्व पद मौन करनेवाला जो जीव ताकरि पाइए है ॥ ११५ ॥

निर्मलं केवलज्ञानं, लोकालोकावलोकनम् ।
लीलया लभ्यते येन, किं तेनान्यन्न कांक्षितम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—लोकालोकका देखनहारा ऐसा निर्मल केवलज्ञान जा करि लीलामात्र करि पाइए ताकरि और वांछित वस्तु कहा न पाइए, अपि तु पाइए ही है ॥ ११६ ॥

ऐसें मौन व्रतका वर्णन किया । आगें-उपवासका वर्णन करै हैं:—

रागो निवार्यते येन, धर्मो येन विवर्द्धयते । पापं निहन्यते येन, संयमो येन जन्यते ॥ ११७ ॥ अनेकभवसंबद्धकर्मकाननपावकः । उपवासः स कर्त्तव्यो नीरागीभूतचेतसा ॥ ११८ ॥

अर्थ—जाकरि रागभाव निवारिए है अर धर्म बढ़ाइए है अर पाप नाशिए है अर संयम भाव उपजाइए है ॥११७॥ सो उपवास रागरहित भया है चित्त जाका ऐसे पुरुष करि करना योग्य है, कैसा है उपवास अनेक भवमैं बन्धे जे कर्म सो ही भया वन ताकौं अग्नि समान है ॥ ११८ ॥

उपेत्याक्षाणि सर्वाणि, निवृत्तानि स्वकार्यतः ।
वसंति यत्र स प्राज्ञैरुपवासो विधीयते ॥ ११९ ॥

अर्थ—जा विषैं सर्व स्पर्शनादि इन्द्रिय है ते अपना अपना कार्य जो स्पर्शादि विषयनिमैं प्रवर्त्तना तातें रहित भए सन्ते आत्माके निकट प्राप्त होयकरि बसिए सो उपवास कहिए ॥ ११९ ॥

स सार्वकालिको जैनैरेकोऽन्योऽसार्वकालिकः ।
द्विविधः कथ्यते शक्तो, हृषीकाश्वनियन्त्रणे ॥ १२० ॥

अर्थ—सो उपवास एक तौ सार्वकालिक कहिए यावज्जीव धारणा, दूजा असार्वकालिक कहिए कालके प्रमाणरूप, ऐसैं दोय प्रकार जैनीन करि कहिए है, कैसा है उपवास इन्द्रियरूप घोडेनके रोकनेमें समर्थ है ॥ १२० ॥

तत्राद्यो म्रियमाणस्य, वर्त्तमानस्य चापरः ।
कालानुसारतः कार्यं, क्रियमाणं महाफलम ॥ १२१ ॥

अर्थ—तहां आदिका सार्वकालिक उपवास है सो जाका मरण निकट होय संन्यास धरै ताकै होय है, बहुरि दूसरा असार्वकालिक उपवास है सो वर्त्तमान पुरुषके चतुर्दशी आदि पर्वके कालविषैं मर्यादारूप होय है, जातें कालके अनुसारतें किया भया कार्य है सो महाफलरूप होय है ॥ १२१ ॥

वर्त्तमानो मतस्त्रेधा, स वर्यो मध्यमोऽधमः ।
कर्त्तव्यः कर्मनाशाय, निजशक्त्यनुगूहकैः ॥ १२२ ॥

अर्थ—सो वर्तमान कहिए कालका नियमरूप उपवास है सो उत्तम, मध्यम, अधम ऐसें तीनप्रकार कह्या है सो अपनी शक्तिकों न छिपावनेवाले ऐसे जे पुरुष तिन करि कर्मके नाशके अर्थि करना योग्य है ।

भावार्थ—शक्तिसारू उपवास कर्मकी निर्जराहीके अर्थ करना योग्य है, ख्याति लाभ पूजादिकके अर्थ न करना ऐसा अभिप्राय है ॥ १२२ ॥

चतुर्णां तत्र भुक्तीनां, त्यागे वर्यश्चतुर्विधः ।
उपवासः सपानीयस्त्रिविधो मध्यमो मताः ॥ १२३ ॥
भुक्तिद्वयपरित्यागे, त्रिविधो गदितोऽधमः ।
उपवासस्त्रिधाप्येषः, शक्तित्रितयसूचकः ॥ १२४ ॥

अर्थ—तहां च्यार प्रकार आहारका त्याग करिए सो चतुर्विध नामा उत्तम उपवास है, बहुरि पानी सहित है सो त्रिविध नामा मध्यम उपवास कह्या है ॥ १२३ ॥ बहुरि दोय वेला प्रकार भोजनका त्याग होत सन्तै त्रिविध नामा अधम उपवास है, यह उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों प्रकारहीका उपवास उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों शक्तिका सूचक है, जैसी जा पुरुषमैं शक्ति होय तैसा ही उपवास धारै ॥ १२४ ॥

भावार्थ—धारणे पारणे एकवार भोजन करै अर च्यार प्रकार आहारका त्याग करै सो चतुर्विध नामा उत्तम उपवास कहिए है, अर धारणे पारणे एक भुक्ति करै अर उपवासमैं जल लेय सो मध्यम त्रिविध नामा उपवास है, अर धारणे पारणे अनेकवार खाय अर उपवासविषै पानी भी लेय सो अधम त्रिविधनामा उपवास कहिए, यामैं एकदिनमैं दोय भोजनकी वेला होय है तिन दोऊ वेलामें भोजन त्याग्या तातैं दोऊ भोजनका त्याग किया, ऐसा जानना ॥ १२३–१२४ ॥

आगें उपवास करनेका विधान कहै हैं:—

प्रहरद्वितीये भुक्त्वा समेत्याचार्यसन्निधिम् । वंदित्वा भक्तितः कृत्वा, कायोत्सर्गं यथाक्रमम् ॥ १२५ ॥ पंचांगप्रणतिं कृत्वा, गृहीत्वा सूरिवाक्यतः । उपवासं पुनः कृत्वा, कायोत्सर्गं विधानतः ॥ १२६ ॥ आचार्यं स्तवनैः स्तुत्वा, वंदित्वा गणनायकम् । दिनद्वयं ततो नेयं स्वाध्यायासक्तचेतसा ॥ १२७ ॥

विधाय साक्षिणं सूरिं गृह्णाणः पटीयसा । संपद्यतेतरामेष व्यवहार

इव स्थिरः ॥ १२८ ॥ सर्वभोगोपभोगानां, कर्त्तव्या विरतिस्त्रिधा ।
शयितव्यं महीपृष्ठे प्रासुके कृतसंस्तरे ॥ १२९ ॥ विहाय सर्वमारंभम-
संयमविवर्द्धकम् । विरक्तचेतसा स्थेयं, यतिनेव पटीयसा ॥ १३० ॥
तृतीये वासरे कृत्वा सर्वमावश्यकादिकम् । भोजयित्वाऽतिथिं भक्त्या
भोक्तव्यं गृहमेधिना ॥ १३१ ॥ उपवासः कृतोऽनेन, विधानेन
विरागिणा । हिनस्त्येकोऽपि रेपांसि, मांहीव दिवाकरः ॥ १३२ ॥

अर्थ—धारणेके दिन दोय प्रहर विषैं भोजन करके आचार्य-निके निकट जायकरि भक्तितैं वंदना करके आगम अनुसार कायोत्सर्ग करकै ॥ १२५ ॥ बहुरि पंचांग नमस्कार करकैं आचार्यके वचनतैं उपवासकौं ग्रहण करके फेरि विधानतैं कायोत्सर्ग करके ॥ १२६ ॥ आचार्यकौं स्तवनतैं स्तुति करके अर गणधर देवकौं वंदिकै ताके अनंतर दोय दिन कहिए सोलह प्रहर स्वाध्यायमैं आसक्त जो मन ताकरि व्यतीत करना योग्य है ।

भावार्थ—सोलह प्रहर स्वाधायमैं लीन रहै ॥ १२७ ॥ बुद्धिवान ताकरि आचार्यकौं साक्षिकरि ग्रह्या जो उपवास सो अतिशय करि निश्चल होय है । जैसैं व्यवहार कार्य बडेनके साक्षीभूत किया स्थिर होय है तैसैं गुरुकी साक्षी धारया उपवास निश्चल होय है ॥ १२८ ॥ बहुरि उपवासमैं सर्व भोग उपभोगनिका त्याग मन वचन काय करि करना योग्य है, अर कारया है तृणादिकका संस्तर जहां ऐसे प्रासुक पृथ्वीतल पर सोवना योग्य है ॥१२९॥ असंयमका बढावनेवाला जो सर्व आरंभ ताहि त्यागिकै मुनिकी ज्यों विरक्तचित्त होयकै बुद्धिवान करि तिष्ठना योग्य है ॥ १३० ॥ बहुरि तीसरे दिन सर्व आवश्यक क्रिया करके अतिथिकौं भक्ति करि भोजन करायकै श्रावककरि भोजन करना योग्य है ॥ १३१ ॥ इस विधान करि

विरागी पुरुष करि किया जो उपवास सो एक भी जैसैं सूर्य अंधकारकौं हरे तैसैं पापकौं हरै है ॥ १३२ ॥

उपवासं विना शक्तो, न परः स्मरमर्दने ।
सिंहेनेव विदार्यंते, सिंधुरा मदमंथराः ॥ १३३ ॥

अर्थ—जैसैं मदोन्मत्त हस्ती हैं ते सिंहकरि विदारिए हैं तैसैं उपवास विना कामके नाश करने विषैं और समर्थ नाहीं ॥ १३३ ॥

उपवासेन संतप्ते, क्षिप्रं नश्यति पातकम् ।
ग्रीष्मार्काध्यासिते तोयं, कियत्तिष्ठति भूतले ॥ १३४ ॥

अर्थ—उपवास करि तप्तायमान भया जो पुरुष ता विषैं पाप शीघ्र ही नाशकौं प्राप्त होय है। जैसैं ग्रीष्मके सूर्यकरि व्याप्त जो पृथ्वी-तल ता विषैं जल कितना तिष्ठै शीघ्र ही सूखि जाय तैसैं उपवासतैं पाप नशि जाय है ॥ १३४ ॥

नित्यो नैमित्तिकश्चेति, द्वेधाऽसौ कथितो बुधैः ।
प्रोषधे स मतो नित्यो, बहुधाऽन्यो व्यवस्थितः ॥ १३५ ॥

अर्थ—सो यहु उपवास पंडितनिकरि नित्य अर नैमित्तिक ऐसैं दोय प्रकार कह्या है सो प्रोषध जो अष्टमी चतुर्दशीपर्व ता विष तौ नित्य कह्या है अर अन्य जो नैमित्तिक सो बहुत प्रकार व्यवस्थित है ॥ १३५ ॥

उपवासा विधीयंते, ये पंचम्यादिगोचराः ।
उक्ता नैमित्तिकाः सर्वे, ते कर्मक्षपणक्षमाः ॥ १३६ ॥

अर्थ—जे पंचमी आदि विषैं उपवास करिए हैं ते सर्व कर्मके नाश करनेमैं समर्थ नैमित्तिक उपवास कहे हैं ॥ १३६ ॥

गुरुतरकर्मजालवल्लिं भववृक्षकरं, बहुपरिणाममेघनिवहप्रभवं

प्रसभम्। क्षपयति सर्वमुग्रमुपवासपयोजपतिर्विरचितसंवृतेर्निखिलदेहित-डागततेः ॥ १३७ ॥

अर्थ—रच्या है संवर जाने ऐसा जो पुरुष ताके उपवासरूपी जो उग्र सूर्य है अतिबड़ा जो ज्ञानावरणादि जालरूप जल ताहि बलात्कारतैं क्षेपै है सोखै है, कैसा है कर्म जालरूप जल संसार-वृक्षका करनेवाला है अर नानाप्रकार रागादि भावरूप मेघनिके समूहतैं उपज्या है बहुरि समस्त संसारी जीवरूप सरोवरविष भरया है।

भावार्थ—संवर सहित उपवासतैं कर्मनिकी निर्जरा अधिक होय है, ऐसा जानना ॥ १३७ ॥

जनयति यद्विधूय विपदं रभसोपचितिं, घटयति संपदं त्रिदशमानव-वर्गमताम्। विधिविहितस्य तस्य पुरुषः श्रुतकेवलिनो, वदति फलं न कोऽप्यनशनस्य परो भुवने ॥ १३८ ॥

अर्थ—जो उपवास संचयरूप भई जो विपदा ताहि नाश करि बलात्कारतैं देवमनुष्यके समूहकरि मानित संपदाकौं रचै है, ऐसा विधिपूर्वक करया जो उपवास ताके फलकौं केवली कहैं हैं और पुरुष लोकविषैं न कहै है ॥ १३८ ॥

रचयति यस्त्रिधा व्रतमिदं महितं महितैरमितगतिश्चतुर्विधमनन्य-मनाः पुरुषः। भवशतसंचितं कलिलमेष निहत्य घनं, शिवपदमेति शाश्वतमपास्तसमस्तमलम् ॥ १३९ ॥

अर्थ—जो पुरुष यह च्यार प्रकार व्रतकौं मन वचन काय करि करै है सो अनेक जन्म करि संचय किया जो सघन पाप ताहि नाश करि समस्त कर्ममलरहित शास्वता जो शिवपद ताहि प्राप्त होय है, कैसा है पूजनीक पुरुषनिकरि पूजनीक है, बहुरि कैसा है वह पुरुष अपार है ज्ञान जाका अर नाहीं है व्रतसिवाय अन्यविषैं मन जाका, ऐसा है ॥ १३९ ॥

दोहा ।

मन वच काय विशुद्धकरि, जो धारै व्रत शुद्ध ।
नाशि कर्म-मल मोक्षपद, पावै सो अविरुद्ध ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
द्वादशमां परिच्छेद समाप्त भया ।

त्रयोदश परिच्छेद ।

शशांकामलसम्यक्त्वो, व्रताभरणभूषितः ।
शीलरत्नमिवाखानिः, पवित्रगुणसागरः ॥ १ ॥

अर्थ—शशांकादिमलरहित चन्द्रमासमान निर्मल है सम्यक्त जाका अर व्रतरूप आभूषण करि शोभित अर शीलरत्नके उपजायवेकौं खानिसमान अर निर्मल गुणनिका समुद्र ऐसा है ॥ १ ॥

ऋजुभूतमनोबुद्धिर्गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
जिनप्रवचनाभिज्ञः श्रावकः सप्तधोत्तमः ॥ २ ॥

अर्थ—अर सरल है मनसम्बन्धी बुद्धि जाकी अर गुरुकी सेवा विषें उद्यमी है अर जिनागमका जाननेवाला है ऐसा उत्तम श्रावक सातप्रकार जानना ॥ २ ॥

निसर्गजरुचौ जन्तावेकांतरुचिराजिते । असहाय महाप्राज्ञे सदायतनसेवके ॥ ३ ॥ कृतानायतनत्यागे परद्रव्यविमोहिते । सासनासादनाहीने जिनशासनवृंहके ॥ ४ ॥ सोपानं सिद्धिसौधस्य कल्मषक्षपणक्षमम् । ज्ञानचारित्रयोर्हेतुः स्थिरं तिष्ठति दर्शनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ऐसे पुरुष विषें सम्यग्दर्शन निश्चल तिष्ठै है जो स्वभावजनित रुचि जाकै अर निश्चय प्रतीति करि शोभित अर सहायरहित महाबुद्धिवान सदा आयतन जो अर्हंतादि तिनका सेवक अर किए हैं

अनायतन कहिए कुदेवादिकका त्याग जानै अर अन्यमती करि विमोहित है अर जिनशासनकी विराधना करि हीन है अर जिनधर्मका बढ़ावनेवाला है। कैसा है सम्यग्दर्शन मोक्षमहालका सोपान है अर पापके नाश करनेमैं समर्थ है अर ज्ञानचारित्रका कारण है।

भावार्थ—सम्यक्त होतें सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र नाम पावै ऐसा है ॥ ३-४-५ ॥

न निरस्यति सम्यक्तं, जिनशासनभावितः।
गृहीतं वन्हिसंतप्तो, लोहपिंड इवोदकम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिनशासन करि भावित कहिए जानें जिनागम भाया है सो पुरुष ग्रहण किया जो सम्यक्त ताहि न छोड़ै है, जैसें अग्निकरि तप्त जो लोहका पिंड सो जलकौं न छोड़ै है ॥ ६ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रतपः सुविनयं परम्। करोति परमश्रद्धस्तितीर्षुर्भव-वारिधिम् ॥ ७ ॥ जिनेशानां विमुक्तानामाचार्याणां विपश्चिनाम्। साधूनां जिनचैत्यानां जिनराद्धांतवेदिनाम् ॥ ८ ॥ कर्त्तव्या महती भक्तिः सपर्या गुणकीर्त्तनम्। अपवादतिरस्कारः संभ्रमः शुभदृष्टिता ॥९॥

अर्थ—उत्कृष्ट है श्रद्धान जाकै अर संसार-समुद्रकौं तिरवेकी है इच्छा जाकै ऐसा सम्यक्ती पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनिमैं विनय करै है। जिनदेवनिकी तथा विमुक्त कहिए सिद्धभगवाननिकी तथा आचार्यनिकी तथा जैनश्रुतके पाठकनिकी तथा साधूनिकी तथा जिन प्रतिमानिकी तथा जैन सिद्धांतके ज्ञातानिकी बड़ी भक्ति करनी, पूजा करनी, गुण गावना, अपवाद दूर करना, हर्ष करना, शुभ दृष्टिपना करना यह विनय है ॥ ७-८-९ ॥

आगमाध्ययनं कार्यं, कृतकालादिशुद्धिना।
विनयारूढिचित्तेन, बहुमानविधायिना ॥ १० ॥

अर्थ—करी है कालादिककी शुद्धिता जानैं ऐसा जो पुरुष ताकरि आगमका अध्ययन करना योग्य है, कैसा है सो विनय विषैं युक्त है चित्त जाका अर बहुमानका करनेवाला है ।

भावार्थ—कालादिककी शुद्धिता करि विनय सहित बहुत मानसें जिनवाणीका अभ्यास करना योग्य है ॥ १० ॥

कुर्वताऽवग्रहं योग्यं, सूरिनिन्हवमोचिना ।
परमां कुर्वता शुद्धिं, व्यंजनार्थद्वयस्थिताम् ॥ ११ ॥

अर्थ—सूरिनिह्नवमोचो कहिए आचार्यका नाम न छिपावनेवाला अर योग्य अवग्रह कहिये प्रतिज्ञा करनेवाला अर व्यंजनशुद्धि अर्थ-शुद्धि दोऊ उत्कृष्ट करता ऐसा जो पुरुष ताकरि ज्ञान विनय करिये है ॥ ११ ॥

संयमे संयमाधारे संयमप्रतिपादिनि ।
आदरं कुर्वतो ज्ञेयश्चारित्रविनयः परः ॥ १२ ॥

अर्थ—संयम विषै अर संयमके आधार जे मुनि तिनि विषैं तथा संयमके उपदेश करनेवाले विषैं आदर करता जो पुरुष ताकै उत्कृष्ट चारित्र विनय जानना योग्य है ॥ १२ ॥

महातपः स्थिते साधौ, तपः कार्ये ससंयमे ।
भक्तिमात्यंतिकीं प्राहुस्तपसो विनयं बुधाः ॥ १३ ॥

अर्थ—महातप विषैं तिष्ठया जो साधु ता विषैं अर संयम सहित तप कार्य विषैं जो अत्यन्त भक्ति ताहि तपका विनय पंडितजन कहैं हैं ॥ १३ ॥

सम्यक्तचरणज्ञानतपांसीमानि जन्मिनाम् ।
निस्तारणसमर्थानि, दुःखोर्मे भवनीरधेः ॥ १४ ॥

अर्थ—ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप हैं ते जीवनिकौं दुःखरूप है लहर जामैं ऐसा जो संसारसमुद्र तातैं तारने विषैं समर्थ हैं ॥ १४ ॥

चतुरंगमिदं साधोः, पोष्यमाणमहर्निशम्।
सिद्धिं साधयते सद्यः, प्रार्थितां नृपतेरिव ॥ १५ ॥

अर्थ—यह च्यार भेदरूप मुनिराजका आचरण निरन्तर पोष्या भया शीघ्र ही वांछित मोक्षकौं साधै है जैसें राजाकी चतुरंग सेना पोषी भई वांछित सिद्धिकौं साधै है तैसें ॥ १५ ॥

सिसाधयिषते सिद्धिं, चतुरंगमृतेऽत्र यः।
स पोतेन विना मूढस्तितीर्षति पयोनिधिम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो मूढ़ दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यार कारण विना मोक्षकौं साधे चाहै है सो मूढ़ जहाज विना समुद्रकौं तिरया चाहै है ॥ १६ ॥

लोकद्वयेऽपि सौख्यानि, दृश्यंते यानि कानिचित्।
जन्यंते तानि सर्वाणि, चतुरंगेण देहिनः ॥ १७ ॥

अर्थ—निश्चयकरि इस लोकमैं अर परलोकमैं जे केई सुख देखिए हैं ते सर्व जीवकै दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप चतुरंग करि उपजाइए है ॥ १७ ॥

निरस्यति रजः सर्वं, ज्ञेयं सूचयते हितम्।
मातेव कुरुते किं न, चतुरंगनिषेवणा ॥ १८ ॥

अर्थ—सर्व रज जो पाप ताहि दूर करै है अर हित बतावै है ऐसें माताकी ज्यों दर्शन ज्ञान चारित्र तपकी सेवा कहा न करै है, सर्व ही हित करै है ॥ १८ ॥

चतुरंगमपाकृत्य, कुर्वते कर्म ये परम्।
कल्पद्रुममपाकृत्य, ते भजंति विषद्रुमम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शन ज्ञानचारित्र तप इनि च्यार कारणनिकौं तागकै और क्रियाकर्म करै है सो कल्पवृक्षकौं छोड़कै विषवृक्षकौं सेवै है ॥ १९ ॥

चतुरंगं सुखं दत्ते, यत्तत्कर्म परं कथम् ।
यत्करोति सुहृत्कार्यं, तन्न वैरी कदाचन ॥ २० ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानादि च्यार कारण जो सुख देय हैं सो और कर्म सुख कैसें देया जैसें जो मित्र कार्य करै सो वैरी कदाच नाहीं करै ॥ २० ॥

ये संति साधवो धन्याश्चतुरंगविभूषणाः ।
विधेयो विनयस्तेषां, मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २१ ॥

अर्थ—जे धन्य साधु पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार अंग ही है भूषण जिनकै ऐसे हैं तिनका विनय मन वचन कायकरि करना योग्य है ॥ २१ ॥

गुणनामनवद्यानां तदीयानामनारतम् ।
चिंतनीयं पटीयोभिरूपबृंहणकारणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—तिन साधूनके निर्मल गुणनिका निरंतर बुद्धिवाननिकरि चिंतवन करना योग्य है कैसा हैं साधूनके गुणका चिंतवन धर्म बढावनेका कारण है ॥ २२ ॥

ध्यायतो योगिनां पथ्यमपथ्यप्रतिषेधनम् ।
मानसो विनयः साधोर्जायते सिद्धिसाधकः ॥ २३ ॥

अर्थ—योगीश्वरनका हितरूप अर अहितका निषेध करनेवाला कार्य ताहि ध्यावता जो पुरुष ता साधुकै मोक्षका साधक मानसिक विनय होय है ॥ २३ ॥

यश्चिंतयति साधूनामनिष्टं दुष्टमानसः ।
सर्वानिष्टखनिर्मूढो, जायते स भवे भवे ॥ २४ ॥

अर्थ—जो दुष्ट साधुनका अनिष्ट विचारै है सो मूढ़ सर्व अनिष्टनिकी खानि भव भव विषें होय है ॥ २४ ॥

दुर्भगो विकलो मूर्खो, निर्विवेको नपुंसकः ।
नीचकर्मकरो नीचो, याति दूषण चिंतकः ॥ २५ ॥

अर्थ—यतीनके दूषणका चिंतवन करनेवाला पुरुष है सो दुर्भग होय है विकलांग होय है मूर्ख होय विवेक रहित होय नपुंसक होय नीच कर्मका करनेवाला नीच होय ॥ २५ ॥

विज्ञायेति महाप्राज्ञाः, संयतानामरेपसाम् ।
संचिंतयंति नानिष्टं, त्रिविधेन कदाचन ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसें जानकरि महाबुद्धि है ते पापरहित जे मुनिराज तिनका अनिष्ट मन, वचन, कायकरि कदाच न चिन्तवै है ॥२६ ॥

श्रवणीयमनाक्षेपं, सपर्याप्रतिपादकम् ।
अनवज्ञापरं तथ्यं, मधुरं हृदयंगमम् ॥ २७ ॥

अर्थ—सुनने योग्य सन्देह रहित पूजाका उपजावनेवाला अर अनिंदामैं तत्पर सत्यार्थ मधुर हृदयकौं प्यारा ॥ २७ ॥

वचनं वदतः पथ्यं, रागद्वेषाद्यनाविलम् ।
वाचिको विनयोऽवाचि, वचनीय निखर्वकः ॥ २८ ॥

अर्थ—रागद्वेषादि करि मलीन नाहीं ऐसा हितरूप बोलता जो पुरुष ताकै वचन सम्बन्धी दोषनिका दूर करनेवाला वचन सम्बन्धी विनय जानना ॥ २८ ॥

अभ्याख्यानतिरस्कारकारकं गुणदूषकम् ।
न वाच्यं वचनं भक्तैस्तपोधनविनिंदकम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जातैं साधूनके दोष प्रगट होय ऐसा वचन तथा अनादर करनेवाला वचन तथा गुणकादूषक वचन तथा साधूनिका निंदकवचन श्रावकनि करि बोलना योग्य नाहीं ॥ २९ ॥

वदंति दूषणं दीना, ये साधूनामनेनसाम् ।
ते भवंति दुराचारा, दूष्या जन्मनि जन्मनि ॥ ३० ॥

अर्थ—जे अज्ञानी पापरहित साधूनके दूषण कहै हैं ते दुराचारी जन्म जन्म विषें दूषणकों भजे हैं ॥ ३० ॥

अनादेयगिरो गर्ह्याः, क्लेशिनः शोकिनो जडाः ।
यतिनिंदापराः सन्ति, जन्मद्वितयदूषिताः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जे पुरुष साधूनिकी निन्दामैं तत्पर हैं ते इस भवमैं अर परभवमैं दूषित होय हैं, नाहीं आदरने योग्य है, वाणी जिनकी अर निन्दने योग्य अर क्लेश सहित अर शोकवान अर अज्ञानी ऐसे होय हैं ॥ ३१ ॥

किं चित्रमपरं, तस्माद्यदौदासीन्यचेतसाम् ।
वन्दका वंदितास्तेषां, निन्दकाः सन्ति निंदिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जातैं उदासीन है चित्त जिनका ऐसे साधूनके वंदनेवाले तौ सबनि करि वंदनीक होय हैं अर निंदक हैं ते निंदक होय हैं, तातैं यामैं सिवाय आश्चर्य कहां है, किछू भी नाहीं ॥ ३२ ॥

आगे—ऊपरि दार्ष्टंति कह्या ताका दृष्टान्त कहैं हैं—

यादृशः क्रियते भावः, फलं तत्रास्ति तादृशम् ।
यादृशं चर्च्यते रूपं, तादृशं दृश्यतेऽब्दके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसा भाव करिए तहां तैसा फल होय है जैसैं दर्पणमैं जैसा रूप करिए तैसा ही देखिए है ।

भावार्थ—साधु तौ वीतराग है तिनमैं जैसा भक्ति रूप वा द्वेष रूप परिणाम करै तैसा ही शुभ अशुभ फल पावै । जैसैं दर्पण तौ निर्मल है यामैं जैसा रूप करै तैसा ही दीसै ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

व्रतिनां निन्दकं वाक्यं, विबुद्ध्येति न सर्वदा ।
मनोवाक्काययोगेन, वक्तव्यं हितमिच्छता ॥ ३४ ॥

अर्थ—या प्रकार साधूनकी निंदामैं महापाप जान करि हितका

वांछक जो जीव ताकरि व्रतीनका निंदक मन वचन कायके योगकरि सदाकाल ही कहना योग्य नाहीं ॥ ३४ ॥

अभ्युत्थानासनत्यागप्रणिपातांजुलिक्रिया।
आयाते संयते कार्या, यात्यनुव्रजनं पुनः ॥ ३५ ॥

अर्थ—संजमी मुनिका आगमन होत सन्तैं उठना आसनका त्यागना नमस्कार करना अंजुलि क्रिया कहिए हाथ जोड़ना क्रिया करनी योग्य है, बहुरि संजमीकौं गमन करते सन्तें पीछें चालना योग्य है ॥ ३५ ॥

आयांतं ये तपोराशिं, विलोक्यापि न कुर्वते।
अभ्युत्थानासनत्यागो, नेभ्यः संत्यधमाः परे ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो पुरुष आवता जो तपका समूह मुनि ताहि देख करि भी उठबैठना अर आसनत्यागना रूप विनय नाहीं करै हैं इनतें सिवाय और नीच कोऊ नाहीं ॥ ३६ ॥

यत्र यत्र विलोक्यंते, संयतायतमानसाः।
तत्र तत्र प्रणंतव्या, विनयोद्यतमानसैः ॥ ३७ ॥

अर्थ—यत्न सहित है मन जिनका ऐसे संयमी मुनि जहां जहां देखिए तहां तहां विनयमैं उद्यमी है मन जिनका ऐसे पुरुषनि करि नमस्कार करना योग्य है ॥ ३७ ॥

शय्योपवेशनस्थानगमनादीनि सर्वदा।
विधातव्यानि नीचानि, संयताराधनापरैः ॥ ३८ ॥

अर्थ—संयमीनकी आराधना विषें तत्पर जे पुरुष तिनकरि सोवनेकी शय्या अर बैठना अर खड़े रहना गमन करना इत्यादिक सदाकाल नीचे करना योग्य है।

भावार्थ—जहां महन्त पुरुष विराजे होय ता स्थानतें शय्यादिक

नीचे स्थानपैं करना ऊँची जगहपै न करना, ऐसा जानना ॥३८॥

पुण्यवन्तो वयं येषामाज्ञां, यच्छंति योगिनः ।
मन्यमानैरिति प्राज्ञैः, कर्तव्यं यतिभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हम पुण्यवन्त हैं जिनपै योगीश्वर आज्ञा करैं हैं ऐसे मानते जे पंडित तिनकरि यतीनका कह्या करना योग्य है।

भावार्थ—यतीश्वर आज्ञा करै सो सुबुद्धीनकौं करना योग्य है, अपने मनमैं ऐसी मानना जो हम धन्य हैं जिनपें गुरुनकी आज्ञा भई ऐसें आज्ञामैं हर्ष करना, ऐसा जानना ॥ ३९ ॥

निष्ठीवनमवष्टंभं, जंभणं गात्रभंजनम् । असत्यभाषणं नर्म, हास्य पादप्रसारणम् ॥ ४० ॥ अभ्याख्यानं करस्फोटं, करेण करताडनम् । विकारमंगसंस्कारं, वर्जयेद्यतिसन्निधौ ॥ ४१ ॥

अर्थ—यतीनके निकट विनयवान इतने कार्य न करै, ते कार्य बतावै हैं—थुंकै नाहीं अर सारा लेय प्रमाद सहित न बैठे, जम्भाई न लेय, अंग न तोडै, असत्य न बोलै, मजाख रागरूप हास्य वचन न बोलै, पांव न पसारै, लज्जाकौं कारण गुप्त वात प्रगट करि न कहै, हाथकी चुटकी न बजावै, हाथ करि हाथ न ताडै, विकार रूप चेष्टा न करै, अंगकौं संवारै नाहीं इत्यादि और भी प्रमादरूप आचरण महंत पुरुषनिके निकट करना योग्य नाहीं ॥ ४०-४१ ॥

उच्चस्थानस्थितैः कार्या, वन्दना न तपस्विनः ।
न गतिं वामतः कृत्वा, विनीतैर्न च पृष्ठतः ॥ ४२ ॥

अर्थ—ऊँचे स्थानपरि तिष्ठतेनकरि तपस्वीनकी वन्दना करनी योग्य नाहीं अर विनयवाननि करि वाईं तरफतें गमन करकै पाछैतें वन्दना करनी योग्य नाहीं।

भावार्थ—मुनिनके दक्षिण तरफतें प्रदक्षिणारूप गमन करकै

वन्दना करनी, बाईं तरफतें जायकरि पाछैतें वन्दना न करनी ॥४२॥

त्रिधेति विनयोऽध्यक्षः, करणीयो मनीषिभिः ।
परोक्षेऽपि स साधूनामाज्ञाकरण लक्षणः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ऐसें मन वचन काय करि तीन प्रकार प्रत्यक्ष विनय करना योग्य है अर मुनिनकौं परोक्ष होतें तिनकी आज्ञा करना है लक्षण जाका ऐसा परोक्ष विनय करना योग्य है ॥ ४३ ॥

संघे चतुर्विधे भक्त्या, रत्नत्रितयराजिते ।
विधातव्यो यथायोग्यं, विनयो नयकोविदैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—नीति विषें चतुर जे पुरुष तिनकरि रत्नत्रयकरि शोभित जो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका ऐसा च्यार प्रकार संघ ता विषें यथायोग्य विनय करना योग्य है ॥ ४४ ॥

विनयेन विहीनस्य, व्रतशीलपुरःसराः ।
निष्फलाः संति निःशेषा, गुणा गुणवतां मताः ॥ ४५ ॥

अर्थ—विनय करि हीन जो पुरुष ताके व्रत शील आदि समस्त गुण हैं ते निष्फल गुणवाननिके कहे हैं ॥ ४५ ॥

विनश्यंति समस्तानि, व्रतानि विनयं विना ।
सरोरुहाणि तिष्ठंति, सलिलेन विना कुतः ॥ ४६ ॥

अर्थ—सर्व व्रत हैं ते विनय विना नाशकौं प्राप्त होय हैं। जैसें जल विना कमल हैं ते कहां तिष्ठैं, अपि तु नाहीं तिष्ठैं है तैसें जानना ॥ ४६ ॥

निर्वृतिस्तरसाऽवश्या, विनयेन विधीयते ।
आत्मनीनसुखाधारा, सौभाग्येनेव कामिनी ॥ ४७ ॥

अर्थ—विनय करि आत्माका हितरूप सुखकी आधारभूत जो मुक्ति अवस्था सो वेग करि कीजिए है। जैसें सौभाग्य पने करि स्त्री वश कीजिए तैसें विनय करि मुक्ति वश होय है ॥ ४७ ॥

सम्यग्दर्शनचारित्रतपोज्ञानानि देहिना ।
अवाप्यंते विनीतेन, यशांसीव विपश्चिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसें पंडितजन करि यश पाइए है तैसें विनयवान पुरुष करि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये पाईए है ॥ ४८ ॥

तस्य कल्पद्रुमो भृत्यस्तस्य चिंतामणिः करे ।
तस्य सन्निहितो यक्षो, विनयो यस्य निर्मलः ॥ ४९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै निर्मल विनय है ताका कल्पवृक्ष किंकर है अर ताके हाथ विषें चिंतामणि है अर यक्ष ताके निकटवर्त्ती है ।

भावार्थ—विनयतें शुभ परिणामके वशतें पुण्यबंध होय है ताके उदयतें सर्व कल्पवृक्षादि पदार्थ सुखदाई होय परिणमै है ॥४९॥

आराध्यंतेऽखिला येन, त्रिदशाः सपुरंदराः ।
संघस्याराधने तस्य, विनीतस्यास्ति कः श्रमः ॥ ५० ॥

अर्थ—इंद्रनिसहित समस्त देव जा विनयवान करि आराधिए है ताके संघके आराधन विषें कहां श्रम है ।

भावार्थ—जा विनयभावना करि इंद्रादिक देव चरननकी सेवा करै है ऐसा संघका विनय करवेमैं कहां खेद है, लाभ ही है ॥५०॥

क्रोधमानादयो दोषाश्छिद्यंते येन वैरदाः ।
न वैरिणो विनीतस्य तस्य संति कथंचन ॥ ५१ ॥

अर्थ—जा विनयवान करि वैरभावके देनेवाले ऐसे जे क्रोध-मानादिक परिणाम ते नाश कीजिए है ताकै कोई प्रकार भी वैरी न होय है ।

भावार्थ—विनयवानतें कोई वैर राखै नाहीं ॥ ५१ ॥

कालत्रयेऽपि ये लोके विद्यंते परमेष्ठिनः ।
ते विनीतेन निःशेषाः, पूजिता वंदिताः स्तुताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—लोकमैं भूत भविष्यत् वर्तमान ऐसें तीनों काल विषै भी जे अर्हंतादि परमेष्ठी विद्यमान हैं ते समस्त विनयवान पुरुष करि पूजे अर वंदे अर वचन करि गोचर किये ।

भावार्थ—जाकै विनय है ताकै समस्त परमेष्ठीनकौं भक्ति है॥५२॥

गर्वो निखर्व्यते तेन, जन्यते गुरुगौरवम् ।
आर्जवं दर्श्यते स्वस्य, प्रश्रयं वितनोति यः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो पुरुष विनयकौं विस्तारै है ता पुरुष करि आपका मानकषाय नाश कीजिए है अर गुरुनका मान उपजाइए है अर सरलभाव प्रवर्त्ताइए है ॥ ५३ ॥

विनीतस्यामला कीर्तिर्विभ्रमीति महीतले ।
सुखयंतीजनं सेव्या, कांतिः शीतरुचेरिव ॥ ५४ ॥

अर्थ—विनयवान पुरुषकी निर्मल कीर्त्ति पृथ्वीतल विषें अतिशय करि भ्रमैं है, सर्व जगतमैं फैलै है, कैसी है कीर्ति लोककौं सुख उपजावती है अर चन्द्रमाकी कांति समान निर्मल है ॥ ५४ ॥

विनयः कारणं मुक्तेर्विनयः कारणं श्रियः ।
विनयः कारणं प्रीतेर्विनयः कारणं मतेः ॥ ५२ ॥

अर्थ—विनय है सो मुक्तिका कारण है अर विनय है सो लक्ष्मीका कारण है अर विनय है सो प्रीतिका कारण है अर विनय है सो बुद्धिका कारण है ॥ ५५ ॥

विनयेन विना पुंसो, न संति गुणसंपदः ।
न वीजेन विना क्वापि, जायंते सस्यजातयः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे बीज विना कहूँ भी धान्यकी जाति नाहीं उपजै है तैसें विनय विना गुणरूप संपदा न होय है ॥ ५६ ॥

प्रश्रयेण विना लक्ष्मीं, यः प्रार्थयति दुर्मनाः ।
स मूल्येन विनानूनं, रत्नं स्वीकर्त्तुमिच्छति ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो दुष्टचित्त पुरुष विनय विना लक्ष्मीकों वांछै है सो पुरुष निश्चय करि मोल विना रत्नकों अंगीकार करनेकों इच्छै है। ५७॥

का संपदविनीतस्य, का मैत्री चलचेतसः।
का तपस्या विशीलस्य, का कीर्तिः कोपवर्तिनः ॥ ५८ ॥

अर्थ—विनयरहित पुरुषकी संपत्ति कहां, अर चलायमान है चित्त जाका ऐसे पुरुषकी मित्रता कहां, अर शीलरहित पुरुषकी तपस्या कहां अर क्रोधी पुरुषकी कीर्ति कहां ॥ ५८ ॥

न शठस्येह यस्यास्ति, तस्यामुत्र कथं सुखम्।
न कच्छे कर्कटीयस्य, गृहे तस्य कुतस्तनी ॥ ५९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै इस लोकमैं संतोषरूप सुख नाहीं ताकै परलोकमें सुख कैसे होय। जैसे जाकी वाड़ीमैं ककड़ी नाहीं ताके घरमैं काहेकी होय, अपितु नाहीं होय ॥ ५९ ॥

लाभालाभौ विबुद्ध्येति, भो विनीताविनीतयोः।
विनीतेन सदा भाव्यं, विमुच्याविनयं त्रिधा ॥ ६० ॥

अर्थ—या प्रकार विनयवानकै अर विनयरहितकै लाभ अलाभ जानि करि भो शिष्य ! मन वचन कायतें अविनयकों त्यागकै विनय-सहित होना योग्य है ॥ ६० ॥

ऐसें विनयका वर्णन किया। आगें-वैयावृत्यका वर्णन करै हैं:—

कृतांतैरिव दुर्वारैः, पीड़ितानां परीषहैः।
वैयावृत्यं विधातव्यं, मुमुक्षूणां विमुक्तये ॥ ६१ ॥

अर्थ—काल समान दुःखतें निवारण जिनका ऐसे जे रोगादि परिषह तिनकरि पीड़ित जे मोक्षके अभिलाषी आचार्य आदि तिनका वैयावृत्य कहिए टहल चाकरी करना योग्य है, काहेकै अर्थि-मुक्तिके अर्थि।

भावार्थ—लौकिक कार्यकी वांछा रहित मुक्तिहीके अर्थि वैयावृत्य करना ॥ ६१ ॥

दुर्भिक्षे मरके रोगे, चौरराजाद्युपद्रुते ।
कर्मक्षयाय कर्त्तव्या, व्यावृतिर्व्रतवर्त्तिनाम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—दुर्भिक्ष विषें अर मरी विषें अर रोगविषें अर चौर राजादिकतें उपसर्ग विषें करनिके नाशके अर्थि व्रतीनकी टहल चाकरी करनी योग्य है ॥ ६२ ॥

आचार्येऽध्यापके वृद्धे, गक्षारक्षे प्रवर्त्तके । शैक्ष्ये तपोधने संघे, गणे ग्लाने दशस्वपि ॥ ६३ ॥ प्रासुकैरौषधैर्योग्यैर्मनसा वपुषा गिरा । विधेया व्यावृतिः, सद्भिर्भवभ्रांतिजिहासुभिः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जातें व्रतनिका आचरण करिए सो आचार्य कहिए, बहुरि जाके निकट शास्त्राध्ययन करिए सो उपाध्याय कहिए, बहुत कालके दीक्षित होय सो वृद्ध कहिए, अर गणकी रक्षा करै सो गणरक्ष कहिए अर संघकौं प्रवर्त्तावै सो प्रवर्तक कहिए, अर शास्त्रके सीखनेमें तत्पर होय सो शैक्ष्य कहिए अर महोपवासादिके करनेवाले तपस्वी कहिए, अर च्यार प्रकार मुनिनका समूहकौं संघ कहिए, अर बड़े मुनिकी संतानकौं गण कहिए, अर रागादिक करि क्लेशरूप शरीर जाका होय सो ग्लान कहिए, ऐसे दश प्रकार मुनिनविषें सत्पुरुषनि करि योग्य कहिए, व्रतीनके लेने योग्य प्रासुक औषधनि करि तथा मन, वचन, काय करि टहल चाकरी करनी योग्य है कैसे हैं वैयावृत्य करनेवाले पुरुष संसारभ्रमणके त्याग करनेके वांछक हैं ॥ ६३-६४

तपोभिर्दुष्करै रोगैः, पीड्यमानं तपोधनम् ।
यो दृष्ट्वापेक्षते शक्तो, निधर्मा न ततः परः ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुःखकरि करे जांय ऐसे तपानि करि रोगनिकरि पीड़ित

जो साधु ताहि देखकर जो शक्तिसहित पुरुष उपेक्षत कहिए किछू इलाज न करै है देखता है रहि जाय है ता सिवाय और अधर्मी नाहीं ॥ ६५ ॥

गृहस्थोऽपि यतिर्ज्ञेयो, वैयावृत्यपरायणः।
वैयावृत्यविनिर्मुक्तो, न गृहस्थो न संयतः ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य विषें तत्पर है सो गृहस्थ भी यति समान जानना। बहुरि वैयावृत्यकरि रहित है सो न गृहस्थ है न मुनि है ॥६६

वैयावृत्यपरः प्राणी, पूज्यते संयतैरपि।
लभते न कुतः पूजामुपकारपरायणः ॥ ६७ ॥

अर्थ—वैयावृत्यविषें तत्पर जीव है सो संयमीन करि भी पूजिए है, जातें उपकार विषैं परायण जे पुरुष ते किसतें पूजा न पावें सर्व हीतें पावें ॥ ६७ ॥

संयमो दर्शनं ज्ञानं, स्वाध्यायो विनयो नय;।
सर्वेऽपि तेन दीयंते, वैयावृत्त्यं तनोति यः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो पुरुष वैयावृत्यकों विस्तारै है ताकरि संयम सम्यग्दर्शन ज्ञान, स्वाध्याय, विनय, नीति ये सर्वही दीजिए है।

भावार्थ—वैयावृत्य करनेतें व्रती स्वस्थ होय तब संयमादि निर्विघ्न सधै, तातें जो व्रतीनकी टहल चाकरि करै ताकरि संयमादिक सर्व दिये कहिए ॥ ६८ ॥

निर्वृतिर्दीयते येन, तेन धर्मो विधाप्यते।
आगमोऽध्याप्यते तेन, क्रियते तेन वा न किम् ॥६९॥

अर्थ—जा पुरुषकरि धर्मात्मा जीवनिकौं सुख दीजिए है ताकरि धर्म कराइए है अर आगम पढ़ाइए है अथवा ताकरि कहा उत्तम कार्य न कीजिए है सर्व ही कीजिए है।

भावार्थ—धर्मात्मा निराकुल होय तब धर्मसाधन करै शास्त्राध्यापन करै और भी धर्मकार्य करै जातैं जो धर्मात्माकौं निराकुल करै ताकरि धर्मादिक सर्व उत्तम कार्य किए कहिए ॥ ६९ ॥

समाधीर्विहितस्तेन, जिनाज्ञा तेन पालिता ।
धर्मो विस्तारितस्तेन, तीर्थं तेन प्रवर्त्तितम् ॥ ७० ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करै है तातैं समाधि जो शुभ ध्यान सो किया अर जिनराजकी आज्ञा पाली अर तातैं धर्म विस्तारया अर तीर्थ जो रत्नत्रय सो प्रवर्त्ताया ॥ ७० ॥

दुष्प्रापं तीर्थकर्तृत्वं, त्रैलोक्यक्षोभणक्षमम् ।
प्राप्यते व्यावृतेर्यस्या, तस्याः किं न परं फलम् । ७१ ॥

अर्थ—तीन लोककौं क्षोभ उपजावने विषैं समर्थ जाके प्रभावतैं इन्द्रादिकनिके आसन कम्पनादि क्षोभ उपजै ऐसा तीर्थंकरपना जा वैयावृत्य भावनाका फल पाईए तथा और फल कहां न पाइए; सर्व ही पाइए ॥ ७१ ॥

परस्यापह्नुते दुखं, सदा येनोपकुर्वता ।
संपद्यते कथं तस्य. क कार्यं कारणं विना ॥ ७२ ॥

अर्थ—जिसपर उपकार करनेवाले पुरुष करि परका दुःख दूर कीजिए है ताकै दुःख कैसें होय, जातैं कारण विना कार्य कैसें होय?

भावार्थ—दुःखका कारण अशुभ भाव है सो परोपकारीकै अशुभ भाव नाहीं तब आप दुःखी कैसैं होय, ऐसा जानना ॥७२॥

सेव्यो दीर्घायुरादेयो, नीरोगो निरुपद्रवः ।
वदान्यः सुन्दरो दक्षो, जायते च प्रियंवदः ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करनेवाला सेवने योग्य होय है, दीर्घायु होय है, आदर करने योग्य होय है, उपद्रव रहित होय है सुन्दर अर प्रवीण अर प्रियवादी होय है ॥ ७३ ॥

स धार्मिकः स सदृष्टिः, स विवेकी स कोविदः ।
स तपस्वी स चारित्री, व्यावृतिं विदधाति यः ॥ ७४ ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करै है सो धर्मात्मा होय है, सो सम्यग्दृष्टि है सो विवेकी है सो पंडित है सो तपस्वी है सो चारित्रवान है ।

भावार्थ—वैयावृत्य होत सन्तैं सर्व धर्मके अंग होय हैं जातैं वैयावृत्य नामा तप सब तपनिका सारभूत कह्या है ॥ ७४ ॥

ऐसैं वैयावृत्य तपका वर्णन किया । आगै-प्रायश्चित्त नामा तपका वर्णन करै है—

आश्रित्य भक्तितः सूरिं, रत्नत्रितयभूषितम् ।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं, गृहीत्वा व्रतशुद्धये ॥ ७५ ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञानचारित्र रूपी रत्नत्रय करि भूषित ऐसा जो आचार्य ता प्रति भक्तितै प्राप्त होय करि व्रतनिकी शुद्धताके अर्थि प्रायश्चित्त ग्रहण करि आचरण करना योग्य है ॥ ७५ ॥

न सदोषः क्षमः कर्तुं, दोषाणां व्यपनोदनम् ।
कर्दमाक्तं कथं वासः, कर्दमेन विशोध्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ—सदोष पुरुष है सो दोष दूर करनेकौं समर्थ नाहीं, जैसैं कीच करि लिपट्या वस्त्र कीचकरि कैस सोधिये ।

भावार्थ—निर्दोष गुरु ही दोष दूर करकै शुद्ध करै है, सदोष गुरुतै दोष दूर होय नाहीं ॥ ७६ ॥

दोषमालोचितं ज्ञानी, सूरिरीशो व्यपोहितुम् ।
अज्ञानेन न वैद्येन, व्याधिः क्वापि चिकित्स्यते ॥ ७७ ॥

अर्थ—आलोचित कहिए शिष्यनें कह्या जो दोष ताहि ज्ञानवान् आचार्य दूर करनेकौं समर्थ है, जातें अज्ञानी वैद्य करि रोगका इलाज कहूँ न कीजिए है, रोगका ज्ञाता होयगा सो इलाज करैगा ॥७७॥

आलोच्यर्जुस्वभावेन, ज्ञानिने संयतात्मने ।
तदीयवाक्यतः कार्यं, प्रायश्चित्तं मनीषिणा ॥ ७८ ॥

अर्थ—संयम सहित है आत्मा जाका ऐसा ज्ञानवान जो आचार्य ताके अर्थ सरल स्वभावतैं अपने दोषनिकौं कहकैं तिस आचार्यके वचनतैं बुद्धिवान करि प्रायश्चित्त करना योग्य है ॥ ७८ ॥

प्रांजलीभूय कर्तव्यः, सूरे रालोचनस्त्रिधा ।
विपाके दुखदं कार्यं, वक्रभावेन निर्मितम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—आचार्यसैं मन वचन काय करि सरल होयकैं आलोचना करनी योग्य है । जातैं कुटिलभाव करि किया कार्य है सो विपाकमैं दुःखदाई है ।

भावार्थ—अपनें दोषनिकौं गुरूनतैं कहना ताका नाम आलोचना है अर तीनौं योगनिकी सरलतातैं करना । कुटिलतातैं करैं तौ उलटा दुःखदाई होय ॥ ७९ ॥

फलाय जायते पुंसो, न चारित्रमशोधितम् ।
मलग्रस्तानि शस्यानि, कीदृशं कुर्वते फलम् ॥ ८० ॥

अर्थ—विना सोध्या चारित्र है सो पुरुषके फलके अर्थ न होय है जैसैं मल जो कूडा ताकरि ग्रसे जे सस्य धान्य ते कैसैं फल निपजावैं, अपि तु नाही उपजावैं ॥ ८० ॥

ऐसै प्रायश्चित्तका वर्णन किया, आगैं—स्वाध्याय नामा तपका वर्णन करै हैं—

वाचना पृच्छनाऽऽम्नायानुप्रेक्षा धर्मदेशना ।
स्वाध्यायः पंचधा कृत्यः, पंचमीं गतिमिच्छता ॥ ८१ ॥

अर्थ—पंचमी गति जो सिद्ध अवस्था ताहि इच्छता जो पुरुष ता करि पांच प्रकार स्वाध्याय करना योग्य है, स्वयं कहिए आत्माके

अध्यायरूप जो पढ़ना अथवा सु कहिए भलेप्रकार शास्त्रका अध्ययन कहिए वाचनादिक करना सो स्वाध्याय है, सो पांच प्रकार है— तहां निर्दोष ग्रंथ अर्थ उभय इनिका जो भव्य जीवनिकौं देना सिखावना सो तौ वाचना है, बहुरि संशयके दूर करनेकौं निर्बाधनिश्चयके पुष्ट करनेकौं ग्रंथ अर्थ उभयका प्रश्न करना सो प्रच्छना है। जो आपकी उच्चताके अर्थ परकौं ठगनेके अर्थि नीचा पाड़नेके अर्थि परकी हास्य करनेकौं इत्यादि खोटे खोटे आशयतैं पूछै सो प्रच्छनातप नाहीं। बहुरि जिस पदार्थ स्वरूप जान्या ताका मनकै विषैं वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा है। बहुरि पाठकौं शुद्ध घोकना सो आम्नाय है। बहुरि धर्मकथा आदिका अंगीकार उपदेश देना सो धर्मोपदेश है; ऐसैं पंच प्रकार जानना ॥ ८१ ॥

तपोऽन्तरानंतरभेदभिन्ने, तपोविधौ किंचन पापहारि।
स्वाध्यायतुल्यं न विलोक्यतेऽन्यत्, हृषीकदोषप्रशमप्रवीणम् ॥८२॥

अर्थ—अंतरंग अर बहिरंग भेद करि भिन्न जो बारह प्रकार तपका विधान ता विषैं स्वाध्याय समान पापकौं हरनेवाला और तप न देखिए है, कैसा है स्वाध्यायनामा तप इंद्रियनिका दोष जो इष्टा-निष्ट विषयनिमैं रागद्वेष करना ताके उपसमावनेमें प्रवीण है ॥८२॥

स्वाध्यायमत्यस्य चलस्वभावं, न मानसं यंत्रयितुं समर्थः।
शक्नोति नोन्मूलयितुं प्रवृद्धं, तमः परो भास्करमंतरेण ॥ ८३ ॥

अर्थ—चंचल है स्वभाव जाका ऐसा जो मन ताके रोकनेकौं स्वाध्याय विना और समर्थ नाहीं, जैसैं वृद्धिकौं प्राप्त भया जो अन्ध-कार ताके नाशकौं सूर्य विना और समर्थ नाहीं तैसैं ॥ ८३ ॥

यः स्वाध्यायः पापहानिं विधत्ते, कुर्वैकाग्रयं नोपवासः क्षमस्ताम्।
शक्तः कर्तुं संवृतानां न काय, लोके दृष्टोऽसंवृतौ दुष्टचेष्टः ॥८४॥

अर्थ—स्वाध्याय नामा तप एकाग्रपना करि जो पापकी हानि करै है ता पापकी हानिके करनेकौं केवल उपवास समर्थ नाहीं, लोक विषैं मत्र रहित अर दुष्ट है चेष्टा जाकी ऐसा पुरुष संवरसहित जीवनिके करने योग्य जो कार्य है ताहि करनेकौं समर्थ नाहीं।

भावार्थ—स्वाध्याय विषैं संवर होय है तातैं कर्मकी निर्जरा होय है अर स्वाध्याय विना केवल उपवास ही करै सो संवर रहित दुष्ट चेष्टा विषें प्रवर्त्तै ताकै पापकी निर्जरा होय नाहीं ॥ ८४ ॥

विज्ञातनिःशेष पदार्थजातः, कर्मास्रवद्वारपिधानकारी।
भूत्वा विधत्ते स्वपरोपकारं, स्वाध्यायवर्त्ती बुधपूजनीयः॥ ८५॥

अर्थ—स्वाध्याय विषैं प्रवर्त्तनेवाला पुरुष है सो जाने हैं श्रुत-ज्ञानके बलतैं सकल पदार्थ जानें अर आश्रव आवनेके द्वार जे मिथ्या-त्वादिक तिनका रोकनेवाला ऐसा होय करि आपका वा परका उपकार करै है कैसा है स्वाध्याय करनेवाला पुरुष पंडितनि करि पूजने योग्य है॥ ८५॥

यद्बुद्धतत्त्वो विधुनोति सद्यो, विध्वंसिताशेषहृषीकदोषः।
तपोविधानैर्भवकोटिलक्षैर्नूनं तदज्ञो न धुनोति कर्म॥ ८६॥

अर्थ—जान्या है वस्तुका स्वरूप जानैं अर नाश किये हैं समस्त इंद्रियनिके दोष जानें ऐसा पुरुष है सो जा कर्मकौं निर्जरा करै है ता कर्मकौं अज्ञानी अनेक जन्मनिकरि तपके आचरण करि भी निश्चय करि नाहीं निर्जरावै है।

भावार्थ—निर्जरा होय है सो श्रुत ज्ञानके अभ्यासतें भई जो विशुद्धता तातें होय है, केवल कायक्लेशतें विशेष निर्जरा होय नाहीं तातें ज्ञानाभ्यास ही मुख्य है ऐसा जानना॥ ८६॥

निरस्तसर्वाक्षकषायवृत्तिर्विधीयते येन शरीरिवर्गः।
प्ररूढजन्मांकुरशोषपूषा, स्वाध्यायतोऽन्योऽस्ति ततो न योगः॥८७॥

अर्थ—जा स्वाध्याय करि नष्ट भई है सर्व इंद्रिय अर कषायरूप परिणति जाकी ऐसा जीवनिका समूह कीजिए है ।

भावार्थ—विषय कषायरहित जीव कीजिए है तातें स्वाध्यायतें न्यारा योग कहिए ध्यान नाहीं ।

भावार्थ—श्रुतके अभ्यास हीतें ध्यान होय है ज्ञान विना ध्यान नाहीं, कैसा है स्वाध्यायतप विस्तारकों प्राप्त भया जो संसाररूप अंकुर ताके सोषनेकों सूर्य समान है ॥ ८७ ॥

गुणाः पवित्राः शमसंयमाद्या, विबोधहीनाः क्षणतश्चलंति ।
कालं कियंतं दलपुष्पपूर्णास्तिष्ठंति वृक्षाः क्षतमूलबंधाः ॥ ८८ ॥

अर्थ—कषायनिकी मंदतारूप शमभाव अर संयमभाव इत्यादिक जे पवित्र गुण हैं ते ज्ञानरहित क्षणमात्रमैं चलायमान होय हैं जैसें पत्र अर पुष्पनिकरि भरे ऐसे वृक्ष हैं ते नष्ट भया है जड़का बंधान जिनका ऐसे कितने काल तिष्ठै है किछू भी न तिष्ठै है ।

भावार्थ—सब गुणनिका मूल ज्ञान है सो ज्ञान विना और गुण होय नाहीं, ऐसा जानना ॥ ८८ ॥

जानात्यकृत्यं न जनो न कृत्यं, जैनेश्वरं वाक्यमबुद्धयमानः ।
करोत्यकृत्यं विजहाति कृत्यं, ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—जिनराजके वचनकों न जानता जो जीव है सो न करने योग्यकों वा करने योग्यकों न जानै है तातें अकार्य जो हिंसादिक ताहि करै है अर कार्य जो वैराग्यादिक ताहि तजै है तातें तीव्र दुःखकों प्राप्त होय है ॥ ८९ ॥

अनात्मनीनं परिहर्तुकामा, ग्रहीतुकामाः पुनरात्मनीनम् ।
पठंति शश्वज्जिननाथवाक्यं, समस्तकल्याणविधायि संतः ॥ ९० ॥

अर्थ—संत पुरुष हैं ते निरन्तर जिनराजके वचनकों पढ़ें हैं ।

कैसा है जिनवचन समस्त कल्याण करनेवाला है कैसे हैं जिनवचनके पढ़नेवाले पुरुष आत्माके हितरूप नाहीं ऐसे मिथ्यात्वादिक भाव तिनके दूर करनेके वांछक है। बहुरि आपके अर्थि हित जे सम्यक्त्वादि भाव तिनके ग्रहण करनेके वांछक हैं ॥ ९० ॥

सुखाय ये सूत्रमपास्य जैनं, मूढाः श्रयंते वचनं परेषाम् ।
तापच्छिदे ते परिमुच्य तोयं, भजन्ति कल्पक्षयकालवह्निम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—जे मूढ़ जिनराजके वचनकों त्यागकै सुखके अर्थि अन्य मिथ्यादृष्टिनिके वचन सेवै है ते ताप दूर करनेके अर्थि जलकों छोड़कै प्रलयकालके अग्निकों सेवै है ॥ ९१ ॥

विहाय वाक्यं जिनचन्द्रदृष्टं, परं न पीयूषमिहास्ति किंचित् ।
मिथ्यादृशां वाक्यमपास्य नूनं, पश्यामि नो किंचन कालकूटम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—इस लोक विषें जिनराज करि कह्या जो वचन ता सिवाय और अमृत नाहीं अर मिथ्यादृष्टिनिके वचन विना और कालकूट विषमैं निश्चय करि किछू नाहीं देखूँ हूँ ॥ ९२ ॥

विधीयते येन समस्तमिष्टं, कल्पद्रुमेणेव महाफलेन ।
आवर्ज्यतां विश्वजनीनवृत्ति, मुक्त्वा परं कर्म जिनागमोऽसौ ॥ ९३ ॥

अर्थ—जा करि महाफल सहित कल्पवृक्षकी ज्यौं सर्व मनोवांछित कीजिए ऐसा यहु जिनागम सर्व लोकके हितरूप परिणति सिवाय और कार्यका वर्जन करहु ।

भावार्थ—जिन वचनके अभ्यासतैं हमारे लौकिक कार्यकी वांछा मत होउ, स्वपरके उपकाररूप परिणति होउ ॥ ९३ ॥

ऐसैं स्वाध्याय नामा तपका वर्णन किया—

परेऽपि ये संति तपोविशेषा, जिनेन्द्रचंद्रोदितसूत्रदृष्टाः ।
स्वशक्तितस्ते निखिला विधेयाः, विधानतः कर्मनिकर्त्तनाय ॥ ९४ ॥

अर्थ—स्वाध्याय पर्यंत तप तौ पहले कहे अर ध्यान तप आगें कहैंगे। बहुरि और भी जे तपके भेद सिंहानिःक्रीडितादि जिनभाषित सूत्रनें दिखाए ते अपनी शक्तिमाफ़ समस्त विधानपूर्वक कर्मनकी निर्जराके अर्थि करना योग्य है ॥ ९४ ॥

सौख्यं स्वस्थं दीयते येन नित्यं, रागावेशश्छिद्यते येन सद्यः।
येनानन्दो जन्यते याचनीयस्तं सन्तोषं कुर्वते के न भव्याः ॥९५॥

अर्थ—जाकरि निराकुल सुख नित्य दीजिए है अर रागका उदय शीघ्र ये दिए है अर जाकरि वांछनेयोग्य मुक्तिपदको आनंद उपजाइए है ऐसा जो सन्तोष सौ कौन भव्य न करै, सर्व ही करें।

भावार्थ—सब तपनिमैं तपका मुख्य लक्षण इच्छा निरोध है इच्छा निरोध अर संतोष एक ही तातें संतोष सब तपनिमें प्रधान है सो ही परम तप है, ऐसा जानना ॥ ९५ ॥

नेष्टं दातुं कोऽप्युपायः समर्थः, सौख्यं नृणामस्ति संतोषतोऽन्यः।
अंभोजानां कः प्रबोधं विधातु, शक्तो हित्वा भानुमंतं हि दृष्टः ॥९६॥

अर्थ—मनुष्यनिकौं वांछित सुख देनेकौं सन्तोष सिवाय और कोई भी उपाय नाहीं। जैसैं लोकमैं कमलनिके प्रफुल्लित करनेकौं सूर्य सिवाय और कोई समर्थ न देख्या तैसें सन्तोष विना सुख नाहीं ॥९६॥

विमुच्य सन्तोषमपास्तबुद्धिः, सुखाय यः कांक्षति कंचनान्यम्।
दारिद्रय हानाय स कल्पवृक्षं, निरस्य गृह्णाति विषद्रुमं हि ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी सुखके अर्थि संतोषकौं त्यागकैं अन्य कामभोगादिककौं इच्छे है सो दारिद्रयके नाशके अर्थि संतोषकौं त्यागकै विषवृक्षकौं ग्रहण करै है ॥ ९७ ॥

क्रोधलोभमदमत्सरशोका, धर्महानिपटवः परिहार्याः।
श्रावको न सुखघातपटिष्ठाः, पोषयंति कृतिनः सुखकांक्षाः ॥९८॥

अर्थ—क्रोध, लोभ, मान, मत्सर, शोक इत्यादिक धर्मकी हानि करनेमैं प्रवीण जे भाव ते त्यागने योग्य हैं जातैं सुखके वांछक जे भाग्यवान पुरुष हैं ते सुखके नाश करनेमैं प्रवीण जे रोग तिनहि पुष्ट न करै है।

भावार्थ—क्रोधादिभाव हैं ते आकुलतामय है तातैं सुखके घातक हैं ते त्यागने योग्य है अर सन्तोष है सो सुखमय है सो ही सुखार्थीनि करि सेवने योग्य है।। ९८ ॥

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभावो विपरीतदृष्टौ, सदा विधेया विदुषा शिवाय ॥ ९९ ॥

अर्थ—एकेंद्रियादि सर्व जीवनि विषैं मैत्रीभाव कहिए कोई भी जीव दुःखी मत होऊ ऐसी भावना, बहुरि सम्यग्दर्शनादि गुणसहित पुरुषनि विषैं अति हर्ष, अर रोगादि क्लेश करि सहित जीव हैं तिन विषैं करुणाभाव, अर विपरीत है श्रद्धा जाकी ऐसे पुरुष विषैं माध्यस्थ्यभाव कहिए विपरीत पुरुषकौं देखकै विचारना जो यहु उपदेश योग्य नाहीं यापैं रागद्वेष कहिकौं करना, या प्रकार चार भावना ज्ञानवान करि मोक्षके अर्थि सदा करना योग्य हैं ॥ ९९ ॥

अनश्वरश्रीप्रतिबन्धकेषु, प्रभूतदोषोपचितेषु नित्यम्।
विरागभावः सुधिया विधेयो, भवांगभोगेषु विनश्वरेषु ॥ १०० ॥

अर्थ—ज्ञानी जीवकरि संसार देह भोगनिविषैं सदा वैराग्यभाव करना योग्य है, कैसे हैं संसार देह भोग अविनाशी लक्ष्मीके रोकने-वाले हैं बहुरि अनेक दोषनिकरि युक्त हैं, विनाशीक हैं ॥ १०० ॥

श्रावकधर्मं भजति विशिष्टं, योऽनघचित्तोऽमिततगति दृष्टम्।
गच्छति सौख्यं विगलितकष्टं, स क्षपयित्वा कल्मषमिष्टम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—जो पुरुष अमितमति कहिए अनंत है, ज्ञान जाका ऐसा

जो जिनराज तानैं दिखाया अथवा अमितगति आचार्यनें दिखाया जो श्रावकका धर्म ताहि सेवै है सो पुरुष सब अनिष्टनिका नाश करकै नाहीं है कष्ट जहां ऐसा सुखरूप जो मोक्ष ताहि प्राप्त होय है, कैसा है धर्म विशिष्ट कहिए अन्य धर्मनितैं न्यारा है लक्षण जाका ऐसा है, बहुरि कैसा है सो पुरुष पाप रहित है चित्त जाका ऐसा है ॥१०१॥

सवैया ।

श्रावक धर्म कह्यो जिनराज, यथाविधि ताहि अखंडित धारै।
सो अतिनिर्मलचित्त सुधी, भवकष्ट अनिष्टसमूह निवारै ॥
स्वर्गनिके सुख भोगि तथा, नर होय महाव्रत भाव सम्हारै।
आतम ध्याय विभाव नसाय, महासुखसागर धाम सिधारै ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं त्रयोदशमा परिच्छेद समाप्त भया ।

चतुर्दश परिच्छेद ।

आगैं द्वादश अनुप्रेक्षाका वर्णन करै हैं, तहां प्रथम ही अनित्यानुप्रेक्षाका स्वरूप कहैं हैं—

यौवनं नगनदी स्पदोपमं, शारदांबुदविलासजीवितम् ।
स्वप्नलब्धधनविभ्रमं धनं, स्थावरं किमपि नास्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥

अर्थ—यौवन तो पर्वतकी नदीका चलना समान है, निरन्तर चल्या जाय है। बहुरि जीवना है सो शरदकालके मेघके विलास समान है, क्षण मात्रमैं विलय जाय है। बहुरि धन है सो स्वप्नमैं पाया जो धन तासमान झूंठा है, किछु भी निश्चयतैं थिर नाहीं ॥ १ ॥

विग्रहा गदभुजंगमालयाः, संगमा विगमदोषदूषिताः ।
संपदोऽपि विपदाकटाक्षिता, नास्ति किंचिदनुपद्रवं स्फुटम ॥ २ ॥

अर्थ—शरीर तौ रोगरूपी सर्पनिका घर है, अर मिलाप है सो वियोगरूपी दोषनिकरि दूषित है, बहुरि संपदा हैं ते विपदाकरि देखी है (सहित है), प्रगटपने किछू भी वस्तु उपद्रवरहित नाहीं ॥२॥

प्रीतिकीर्तिमतिकांति भूतयः, पाकशासनशरासनास्थिराः ।
अध्वनीनपथिसंगसंगमाः, संति मित्रपितृपुत्रबांधवाः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रीति अर कीर्ति अर बुद्धि अर कांति अर संपदा ये सर्व इंद्रधनुष समान अथिर हैं । बहुरि मित्र पिता पुत्र बांधव ये सर्व पंथीजननिका मार्गमैं संयोग होय तासमान है, सर्व शीघ्र ही बिछुरि जांय हैं ॥ ३ ॥

मोक्षमेकमपहाय कृत्रिमं, नास्ति वस्तु किमपीह शाश्वतम् ।
किंचनापि सहगामी नात्मनो, ज्ञानदर्शनमपास्य पावनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस लोकमैं एक मोक्ष सिवाय अन्य करी भई वस्तु किछू भी नित्य नाहीं । बहुरि निर्मल ज्ञान दर्शन सिवाय और किछू भी आत्माके साथ जानेवाला नाहीं, ज्ञानदर्शन ही सदा संग रहै है और शरीरादिक तौ तहांके तहां ही रहैं हैं ॥ ४ ॥

संति ते त्रिभुवने न देहिनो, ते न यांति समवर्तिमंदिरम् ।
शक्रचापखचिता हि कुत्र ते, ये भजंति न विनाशमंबुदाः ॥ ५ ॥

अर्थ—तीन भवन विषैं ते शरीरके धारी जीव नाहीं जे यमके मन्दिरकौं न जाय—सब ही मरणकौं प्राप्त होय हैं । जैसैं इंद्रधनुष करि रचे जे बादले ते ऐसे कहां हैं जे नष्ट न होय, सर्व ही नसैं हैं ॥५॥

देहपंजरमपास्य जर्जरं, यत्र तीर्थपतयोऽतिपूजिताः ।
यांति पूर्णसमये शिवास्पदं, तत्र के जगति नात्र गत्वराः ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस संसार विषैं अत्यंत पूजनीक जे तीर्थंकर देव ते भी आयुके पूर्णसमय जर्जरे देह पींजराकौं त्यागके सिद्धालयकौं पधारे हैं तहां इस जगत विषैं और कौन जानेवाले नाहीं, सर्व ही परलोककौं जाय हैं ॥ ६ ॥

ऐसैं अनित्यभावना कही । आगैं-अशरण भावनाकौं कहैं हैं—

यं करोति पुरतो यमराजा, भक्षणाय भुवने क्षुधितात्मा ।
कानने मृगमित्र द्विपवैरी, तस्य नास्ति शरणं भुवि कोऽपि ॥ ७ ॥

अथ—क्षुधा सहित है आत्मा जाका ऐसा जमराज सो जीवकौं भक्षण करनेके अर्थि आगै करै है ता जीवका लोक विषैं कोई भी शरण नाहीं । जैसें वनमें मृगकौं सिंह भक्षण करनेकौं होय तब ताकौं कोई शरण नाहीं तैसें ॥ ७ ॥

अंतकेन यदि विग्रहभाजः, स्वीकृतस्य समपत्स्यत पाता ।
रक्षितः सुखैरमरिष्यन्नो तदा सुखधूनिकुरंवः ॥ ८ ॥

अर्थ—कालतें ग्रह्या जो प्राणी ताकी मरणतें जो रक्षा होय तौ इंद्रादिक देवनिकरि रक्षित जो देवांगनानिका समूह सो न मरता ।

भावार्थ—मरणतें रक्षा होय तौ इंद्र अपनी देवांगनानिकौं न मरने देय तातें मरण होतें जीवकै शरण नाहीं ॥ ८ ॥

यं निहंतुममरा न समर्था, हन्यते न स परैः समवर्त्ती ।
यो द्विपैर्न समदैरपि भग्नो, भज्यते हि शशकैर्न स वृक्षः ॥ ९ ॥

अर्थ—जा जमराजके हनिवेकौं देव समर्थ नाहीं सो जीवनिकरि कैसैं हनिए ।

भावार्थ—जो इन्द्रादिक देव भी मरणकौं न निवारि सकै तौ औरनकी कहा कथा । जैसैं मतवारे हाथिन करि भी जो वृक्ष भग्न न भया तो सुस्सानि करि भग्न कैसें कीजिए ॥ ९ ॥

स्यन्दनद्विपदातितुरंगैर्मन्त्रितन्त्रजपपूजनहोमैः ।
शक्यते न खलु रक्षितुमङ्गी, जीवितव्यपगमे म्रियमाणः ॥ १० ॥

अर्थ—रथ हाथी प्यादे घोडेनिकरि तथा मन्त्र तन्त्र जप पूजन होम इन करि आयुके नाश भये जो मरता जीव सो राखनेकौं समर्थ न हूजिए है ॥ १० ॥

ये धरन्ति धरणीं सह शैलैर्ये क्षिपन्ति सकलं ग्रहचक्रम् ।
ते भवन्ति भुवने न स कश्चिद्यो निहन्ति तरसा यमराजम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जे जीव समस्त पर्वतनिसहित पृथ्वीकौं धारैं हैं अर सकल ग्रहचक्रकौं क्षेपैं हैं ऐसे पुरुष तौ लोकविषैं हैं परन्तु सो कोई पुरुष नाहीं जो वेगकरि यमराजकौं नाश करै है ॥

यो निहन्ति रभसेन बलिष्ठानिन्द्रचन्द्ररविकेशवरामान् ।
रक्षको भवति कश्चन मृत्योर्निघ्नतो भवभृतो न ततोऽत्र ॥ १२ ॥

अर्थ—जो यमराज वेगकरि बलवान जे इन्द्र चन्द्र सूर्य नारायण बलभद्र तिनहि हनै है तातें इस लोकविषैं जीवनिका नाश करता जो यम तातें बचावनेवाला कोऊ नाहीं ।

भावार्थ—अन्यमती यमको देव मानै हैं सो मिथ्या है अर आयुका जो पूर्ण भये कोऊ राखनेकौं समर्थ नाहीं, सम्यक्दर्शनादिक वा अरहंतादिक शरण हैं जातें वस्तुका स्वरूप जानै मरणका भय रहै नाहीं, अर सिद्धपद पावै तहां फेर मरण होय नाहीं, तातें पर कोऊ शरण नाहीं, आपका आप ही शरण है ॥ १२ ॥

या प्रकार अशरण भावना कही। आगै—संसार भावनाकौं कहै हैं—

चित्रजीवाकुलायां तनूभागिना, कुर्वता चेष्टितं सर्वदा मोहिना ।
गृह्णता मुँचता विग्रहं संभृतौ, नर्तकेनेव रङ्गक्षितौ भ्रम्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—इस मोही जीवकरि एकेंद्रियादि नाना जीवनिकरि भरी

नृत्य करनेकी भूमिसमान जो यह संसारपरिणति ताविषे नटवाकी ज्यौं भ्रमिए है। कैसा है संसारी जीव सदा अनेक चेष्टा करै है अर शरीरकौं ग्रहण करै है अर छोड़ै है ॥ १३ ॥

श्वसति रोदिति सीदति खिद्यते, स्वपिति रुष्यति तुष्यति ताम्यति ।
लिखति दीव्यति सीथति नृत्यति, भ्रमति जन्मवने कलिलाकुलः ॥१४

अर्थ—पापकर्मकरि व्याकुल यहु जीव संसारवनविषैं भ्रमै है, उछ्वास लेय है, रोवै है, पीडित होय है, खेदखिन्न होय है, सोवै है, रोष करै है, राग करै है, तप्तायमान होय है, लिखै है, क्रीड़ा करै है, व्यवहार करै है, सीवै है, नृत्य करै है, या प्रकार अनेक चेष्टा करै है ॥ १४ ॥

जनकस्तनयस्तनयो जनको, जननी गृहिणी गृहिणी जननी ।
भगिनी दुहिता दुहिता भगिनी, भवतीति बतांगिगणो बहुशः ॥१५॥

अर्थ—पिता पुत्र होय है पुत्र पिता होय है माता स्त्री होय है स्त्री माता होय है बहन पुत्री होय है पुत्री बहन होय है सो बड़े खेदकी बात है। यहु जीव पूर्वोक्त प्रकार अनेकवार भ्रमै है ॥ १५ ॥

कलिलजालवशः स्वयमात्मनो, भवति यत्र सुतो निजमातरि ।
किमपरं बत तत्र निगद्यते, विविधदुःखखनौ जननार्णवे ॥ १६ ॥

अर्थ—जा संसार समुद्र विषै पापके समूह करि वश भया सन्ता जीव आप आपका पुत्र अपनी माताके गर्भ विषैं होय बड़े खेदकी बात है, ता संसार विषैं और और व्यवस्था कहा कहिए, कैसा है भवसमुद्र, नाना दुःखनिके उपजायवेकी खानि है ॥ १६ ॥

किमपि वेत्ति शिशुर्न हिताहितं, विरहदुःखमुपैति युवा पर
विकलतां भजते स्थविरस्तरां, भवति शर्म कदा बत संसृतौ ॥१७॥

अर्थ—अहो संसार विषैं सुख कब होय है। बालक तो किछू

हिताहितकों न जानै है, बहुरि जवान तीव्र कामके दुःखकों प्राप्त होय है । बहुरि बूढ़ा हैं सो अतिशय करि विकलताकों भजे है शक्तिरहित हो जाय है इच्छा बढ़ जाय है ऐसैं सुख कोई अवस्थामें नाहीं, दुःख ही है ॥ १७ ॥

न सोऽस्ति सम्बन्धविधिर्जगत्त्रये, समं समस्तैरपि देहधारिभिः ।
अवापि यो न भ्रमता भवार्णवे, शरीरिणा कर्मनियंत्रितात्मना ॥ १८ ॥

अर्थ—तीन लोक विष सो सम्बन्धका विधान नाहीं जो जीवनैं समस्त देहधारीन करि सहित अनेकवार न पाया, कैसा है जीव संसार-समुद्र विषै भ्रमता है अर कर्मनिकरि बंध्या है आत्मा जाका ऐसा है ॥ १८ ॥

यत्र चित्रैर्विवर्त्तैः परावर्त्यते, कर्मणानारतं भ्रम्यमाणो जनः ।
दुःखदं दुर्वचं मानसं कायिकं, तत्र दुखं किं संसृतावश्नुते ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस संसारसमुद्र विषै कर्म करि निरन्तर भ्रमाया ऐसा जो जीव सो नाना प्रकार पर्यायनि करि उलट पलट कीजिए है ता संसार विषैं दुर्वचन सम्बन्धी मन सम्बन्धी शरीर सम्बन्धी दुःखद दुःख कहा न भोगिए है, भोगिए ही है । ऐसा संसारका स्वरूप जाणि मोक्षका यत्न करना ॥ १९ ॥

या प्रकार संसार भावना कही। आगैं–एकत्व भावनाकों कहैं हैं—

देहबांधवनिमित्तमंगिना, पापकर्म विविधं विधीयते ।
एककेन बृहति विषह्यते, नारकीं गतिमुपेयुषा व्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—शरीर अर बन्धुजननिके पोषणेके अर्थि जीव करि पाप कर्म नानाप्रकार कीजिए है । बहुरि ताके फलतें नरकगतिकों प्राप्त भया एक आप ताकरि ही पीड़ा सहिए है, शरीर कुटुम्बादिक कोऊ भेला होय नाहीं ॥ २० ॥

पद्मपत्रनयना मनोरमाः, कारयंति दुरितं दुरुत्तम्।
दुर्गतिं विकटदुःखसंकटा, मेककस्य शरणं न गच्छतः ॥ २१ ॥

अर्थ—कमलके पत्र समान है नेत्र जिनके ऐसी मनकों रमावने-वाली जे स्त्री हैं ते दुस्तर पापकौं करावें हैं। बहुरि दुःखनि करि व्याप्त जो दुर्गति ता प्रति अकेले जानेकौं शरण कोऊ नाहीं ॥ २१ ॥

मातृतातसुतदारबांधवाः, सर्वदा मम मुधेति तप्यते।
कर्म पूर्वमपहाय विद्यते, नात्र कोऽपि सुखदुःखकारकः ॥ २२ ॥

अर्थ—माता पिता पुत्र स्त्री बांधव ये सदा मेरे हैं ऐसी मानि करि सदा खेद करै है। बहुरि पूर्व कर्म विना इस लोक विषें सुख दुःखका करनेवाला कोऊ नाहीं ॥ २२ ॥

वेदनां गतवतः स्वकर्मजा–मत्र यो न विदधाति किंचन।
किं करिष्यति परत्र यत्नतो, देहजादिनिवहः स पालितः ॥ २३ ॥

अर्थ—जो पाल्या पोष्या ऐसा पुत्रादिकनिका समूह सो अपने कर्मोदयतें उपजी जो रोगादिककी वेदना ताकौं प्राप्त भया जो जीव ताका इस लोकमैं उपाय करि किछू न करै है सो परलोक विषें कहा करैगा, किछू भी करैगा नाहीं ॥ २३ ॥

एकको भ्रमति जन्मकानने, याति निर्वृतिनिवासमेककः।
एककः श्रयति दुःखमेककः, शर्म याति न परोऽस्य विद्यते ॥२४॥

अर्थ—यह जीव संसारवन विषें एकला भ्रमै है। बहुरि मोक्ष धामकौं एकला जाय है। बहुरि दुःखकौं अकेला भोगै है, सुखकौं अकेला प्राप्त होय है, इसका दूजा साथी नाहीं ॥ २४ ॥

जन्ममृत्युरतिकीर्तिसंपदा–मेकको भवति भाजनं सदा।
नास्ति कोऽपि केचिवः शरीरिणो, द्रव्यमुक्तिमपहाय तत्त्वतः ॥२५॥

अर्थ—जन्म मरण प्रीति यश सम्पदा इनका भाजन सदा

अकेला ही है, जन्मादिककौं अकेला ही पावै है, निश्चयतें मोक्ष अवस्था विना जीवका साथी कोऊ नाहीं ॥ २५ ॥

ऐसें एकत्व भावनाका वर्णन किया । आगैं—अन्यत्व भावनाकौं कहैं हैं:—

अनादिरात्माऽनिधनः सचेतनो, विधायकः कर्मफलस्य भोजकः ।
हिताहितादानविमोक्षकोविद, स्ततः शरीरं विपरीतमात्मनः ॥ २६ ॥

अर्थ—आत्मा अनादि है, अनंत है, चेतन सहित है, कर्त्ता है, कर्मफलका भोक्ता है, हितका ग्रहण करनेवाला अहितका त्यागनेवाला है तातैं ज्ञानस्वरूप आत्मातें शरीर विपरीत है ।

भावार्थ—शरीर नवीन उपज्या है, विनाशीक है, जड़ है, ताहीतें कर्मका कर्त्ता नाहीं अर भोक्ता नाहीं अर हित अहितका ग्रहण करनेवाला नाहीं, ऐसें आत्माका अर शरीरका लक्षण न्यारा है, एक नाहीं ॥ २६ ॥

सदापि यो यत्नशतैः प्रपाल्यते, न यत्र कायेऽपि निजः स देहिनः ।
परः स्वकीयं किमु तत्र विद्यते, प्रवर्त्तते यत्र ममेति मोहितः ॥२७॥

अर्थ—जिस संसार विषें जो शरीर अनेक उपायनिकरि सदा ही पालिए है सो शरीर भी जीवकै आपका नाहीं तहां और वस्तु आपकी कैसें होय जहां यहु मोहित भया "ये वस्तु मेरी है" ऐसें प्रवर्तै है ॥ २७ ॥

विमुच्य जन्तोरुपयोगमंजसा, न दर्शनज्ञानमयं निजं परम् ।
परत्र सर्वत्र ममेति शेमुषी, प्रवर्त्तते मोहपिशाचनिर्मिता ॥ २८ ॥

अर्थ—जीवका दर्शनज्ञानमय उपयोग विना निश्चयतें और पर पदार्थ आपका नाहीं, बहुरि सर्व पदार्थ विषें ये मेरे हैं ऐसी बुद्धि मोहरूप पिशाचकरि भई प्रवर्तै है ॥ २८ ॥

भवन्ति ये कार्मणयोगसम्भवाः, परेऽत्र भावा वपुरात्मजादयः ।
विहाय ते दुःख परम्परां परां, परं न किंचिद्विपरीतमीशते ॥२९॥

अर्थ—इस लोक विषैं कर्मनिके संयोगतैं निपजे शरीर पुत्रादिक जे पदार्थ हैं ते केवल दुःखकी परम्पराय विना और किछू दुःखतैं विपरीत जो सुख ताहि करवे समर्थ नाहीं।

भावार्थ—शरीरादिक परपदार्थमैं आपाकी बुद्धि है सो दुःखहीका कारण है सुखका कारण नाहीं ॥ २९ ॥

अनात्मनीना भवदुःखहेतवो, विनश्वराः कर्मभवा यतोऽखिलाः ।
ततो न बाह्येषु विशुद्धबुद्धयो, ममेति बुद्धिं मनसाऽपि कुर्वते ॥३०॥

अर्थ—जातैं कर्मणके उदयतें भये समस्त शरीरादिक पदार्थ हैं ते आत्माके अर्थि हितरूप नाहीं अर संसार दुःखके कारण हैं अर विनाशीक हैं तातें बाह्य पदार्थनि विषें "यह मेरे हैं" ऐसी बुद्धिकों मन करि भी न करे हैं ॥ ३० ॥

न विद्यते यत्रकलेवरं निजं, स्वकीयबुद्धया मनसि व्यवस्थितम् ।
तदीयसम्बन्धभवाः सुतादयः, परे कथं तत्र निजा निगद्यताम् ॥३१॥

अर्थ—जहां आपकी बुद्धि करि मन विषें तिष्ठया जो शरीर सो आपका नाहीं तहां तो शरीरके सम्बन्धतें उपजे जे अन्य पुत्रादिक ते कहो, आपके कैसें होय ? ॥ ३१ ॥

करोति बाह्येषु ममेति शेमुषीं, परेश्वयं यावदनर्थकारिणीम् ।
न निर्गमस्तावदमुष्य संसृते, रिति त्रिधा सा त्रिदुधा विमुच्यताम् ॥३२॥

अर्थ—जहां ताईं बाह्य पर पदार्थनि विषैं ये मेरे हैं ऐसी अनर्थ कारनेवाली बुद्धि है तहां ताईं इस जीवका संसारतें निकसना नाहीं, इस कारणतें सो बुद्धि मन वचन काय करि त्यागना ॥ ३२ ॥

ऐसें अन्यत्वभावना कही । आगे—अशुचित्वभावनाकों कहै हैं—

क्षणादमेध्या: शुचयोऽपि भावा:, संसर्गमात्रेण भवंति यस्य ।
शरीरत: सन्ततिपूतिगन्धेस्तत: परं किंचन नास्त्यचौक्ष्यम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जा शरीरके संसर्गमात्र करि क्षणमात्रमैं पवित्र पदार्थ भी अपवित्र होय है, तातें निरन्तर दुर्गंधरूप जो शरीर तातें अन्य किछू अपवित्र नाहीं ॥ ३३ ॥

बहुप्रकाराशुचिराशिपूर्ण, शुक्रासृजाते शुचिता क्व काये ।
अमेध्यपूर्ण: किममेध्यकुम्भो, दृष्टो हि मेध्यत्वमुपाददान: ॥ ३४ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार विष्टादिक अपवित्र वस्तुनि करि भऱ्या अर वीर्य अर रुधिरतें उपज्या ऐसा जो शरीर ताविषै पवित्रता कहूँ नाहीं, जातें विष्टा करि भऱ्या अपवित्र कुम्भ पवित्रताकौं धारता कहूँ देख्या नाहीं ॥ ३४ ॥

मज्जास्थि मेदोमलमांसखानिं, विगर्हणीयं कृमिजालगेहम् ।
देहं दधान: शुचिताभिमानं, मूर्खो विधत्ते न विशुद्धबुद्धि: ॥३५॥

अर्थ—मज्जा अर हाड अर मेद अर मल विष्टादिक इनके उपजनेकी खानि अर निन्दने योग्य अर कीडानिके समूहका घर ऐसा जो देह ताहि धारता सन्ता पवित्रपनेका अभिमान मूर्ख धारै है, निर्मल बुद्धि न धारै है ॥ ३५ ॥

स्रवन्नवद्वारविचित्रगूथं, यो वारिणा शोधयते शरीरम् ।
अहाय दुग्धेन निघृष्य मन्ये, विशुद्धमंगारममौ विधत्ते ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो झरै है नव द्वारानितैं नाना प्रकार मल जातें ऐसा जो शरार ताहि जल करि पवित्र करै है सो मैं ऐसा मानूं हूँ ये कोयलाकौं दूधतैं घिसकै जल्दी विशुद्ध करै है ॥ ३६ ॥

न हन्यते तेन जलेन पापं, विवर्द्धयते येन विवर्द्ध्य रागम् ।
यद्वस्य वर्णप्रभवे समर्थं, तत्तस्य दृष्टं न विनाशकारि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जा जलकरि रागादिभाव बढाय करि हिंसादिक पाप बढ़ाइए है ता जलकरि पाप कैसे नाश कीजिए, जातैं जो वस्तुका वर्ण उपजावे विषै समर्थ है सो ताका नाश करनेवाला न देख्या॥३७॥

विनाश्यते चेत्सलिलेन पापं, धर्मस्तदानीं क्रियते किमर्थम्।
आरोहणं कोऽपि करोति वृक्षे, फले हि हस्तेन न लभ्यमाने॥३८॥

अर्थ—जो जलकरि पाप नाशिए तौ तपश्चरणादि धर्म काहेके अर्थि करिए जातैं हाथमैं फल आये संते कोई वृक्षपै चढै नाहीं॥३८॥

माघेन तीव्रः क्रियते शशांको, ग्रीष्मेण भानुर्यदिनाम शीतः।
देहस्तदानीं पयसा विशुद्धो, विधीयते दुर्वचगूथयूथः॥ ३९॥

अर्थ—जो माघ मास करि चन्द्रमा तप्त कीजिए अर ग्रीष्म करि सूर्य शीतल कीजिए तौ जल करि शरीर विशुद्ध कीजिए। कैसा है शरीर निंदनीक विष्टादिक मलका पुंज है॥ ३९॥

सज्ञानसम्यक्त्वचरित्रतोयैर्विगाह्यमानैर्मनसाऽपि जीवः।
विशोध्य मानस्तरसा पवित्रैर्न शुद्धिमभ्येति भवांतरेऽपि॥ ४०॥

अर्थ—मन करि भी अवगाहे जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप पवित्र जल तिन करि शीघ्र निर्मल किया जो जीव सो जन्मांतर विषैं भी अशुद्धिताकौं प्राप्त नाहीं होय है।

भावार्थ—जलादि परद्रव्यनितैं मिथ्यादृष्टि शुद्धिता मानै है सो मिथ्या है तातैं जीव तौ सम्यग्दर्शनादि आत्मपरिणामहीतैं शुद्ध होय है॥ ४०॥

ऐसैं अशुचि भावना कही। आगैं—आश्रवभावनाकौं कहैं हैं—

रन्ध्रैरिवांबुविततैरुदधौ तरंडे, जीवे मनोवचनकायविशालजालैः।
जन्मार्णवे विशति कर्म विचित्ररूपं, सद्योनिमज्जनविधायि सुदुर्निवारम्॥४१

अर्थ—जैसैं समुद्रमैं नाव विषैं विस्ताररूप छिद्रनि करि जल

प्रवेश करै है तैसें संसार-समुद्र विषें मन, वचन, कायके विकल्प जालतें नानाप्रकार कर्म आश्रवें हैं ताकरि जीव दुःख करि निवारण करने योग्य जलदी डूबनेकौं प्राप्त होय है ॥ ४१ ॥

चित्रेण कर्मपवनेन नियोज्यमान, प्राणिप्लवो बहुविधोऽसुखभांडपूर्णः ।
संसारसागरमसारमलभ्यपारं, भूरिभ्रमं भ्रमति कालमनंतमानम् ॥४२॥

अर्थ—तीव्र मंदादि भेदनिसहित नानाप्रकार जो कर्मपवन ताकरि प्रेर्या भया यह जीवरूप नौका संसार-समुद्र विषैं अनंतकाल भ्रमै है। कैसा है जीवरूपी नावनाना प्रकार दुःखरूप भांडनि करि भरया है। बहुरि कैसा है संसार-समुद्र असार है जामैं आत्महित नाहीं पावने योग्य है पार जाका ऐसा अपार है अर बहुत हैं भौंर जा विषें ऐसा है ॥ ४२ ॥

कर्मादधाति यदयं भविनः कषायः, संसारदुःखमविधाय न तद्व्यपैति ।
यद्बंधनं हि विदधाति विपक्षवर्ग, स्तन्नाम कस्य विरचय्य सुखं प्रयाति ॥४३॥

अर्थ—जा यहु कषायभाव जीवकै कर्मबन्ध करै है सो कर्मबन्ध दुःख दिये विना नाश नाहीं होय है। जैसें वैरीनिका समूह जो बन्धन बांधै है सो बन्ध कौनकौं सुख करिकै जाय है, दुःख करिकै ही जाय है।

भावार्थ—कषायकरि बंध्या जो कर्म ताका छूटना महाकठिन है तामैं मुख्य आश्रवका कारण जो कषाय सो करना योग्य नाहीं ॥ ४३ ॥

भेदाः सुखासुखविधानविधौ समर्था, ये कर्मणो विविधबंधरसा भवंति । जन्तोः शुभाशुभमनः परिणामजन्या, स्तैर्भ्रम्यते भववने चिरमेष भीमे ॥ ४४ ॥

अर्थ—जीवके नाना प्रकार जे चित्तके परिणाम तिनकरि उपजे

जे सुख दुःख करनेकी विधि विषें समर्थ नाना प्रकार बन्धके अनुभागभेद तिन करि यहु जीव भयंकर संसार वन विषैं बहुत काल भ्रमाइए है ।

भावार्थ—कर्मनिका तीव्र मंद अनुभाग तीव्र मंद कषायतैं होय है ताकरि जीव नरकादि पर्यायनिमैं भ्रमै है ॥ ४४ ॥

गृह्णाति कर्म सुखदं शुभयोगवृत्त्या, दुःखप्रदायि तु यतोऽशुभयोगवृत्त्या । आद्या सुखार्थिभिरतः सततं विधेया, हेया परा प्रचुरकष्टनिधानभूता ॥ ४५ ॥

अर्थ—जातैं शुभ योगकी परणति करि जीव सुखदायक कर्मका ग्रहण करै है, बहुरि अशुभ योगकी परिणति करि दुःखदायक कर्मका ग्रहण करै है, इस कारणतैं सुखके अर्थी जे जीव तिनकरि आदिकी जो शुभ परणति सो निरन्तर करनी योग्य है । बहुरि प्रचुर दुःखके निधान समान जो अशुभ योगकी परणति सो त्यागनी योग्य है ॥ ४५ ॥

एकप्रकारमपि योगवशादुपेतं, कुर्वंति कर्म विविधं विविधाः कषायाः । एकस्वभावमुरगस्य जलं घनेभ्यः, प्राप्य प्रदेशमुपयाति न किं विभेदम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—योगनिके वशकरि एक प्रकार ग्रहण किया भी कर्म कषाय नाना प्रकार करै है ।

भावार्थ—योगद्वार समयप्रबद्ध ग्रहण कियौ सो तौ एक प्रकार ही है परन्तु जैसा तीव्र मंद कषाय होय तैसा ही नाना प्रकार तीव्र मंद शक्ति लिये होय है । जैसैं मेघनितैं जल है सो एक स्वभावकौं प्राप्त होयके निंब आदि प्रदेशकौं प्राप्त होय करि कहा विचित्र भेदकौं नाहीं प्राप्त होय है, होय ही है ॥ ४६ ॥

मिथ्यात्वदौर्वृत्त्यकषाययोग, प्रमाददोषा विविधप्रकाराः ।
कर्माश्रवाः संति शरीरभाजां, जलाश्रवा वा सरसां प्रवाहाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अर अविरत अर कषाय अर योग अर प्रमाद ये दोष स्वरूप नाना प्रकार जीवनिकै कर्माश्रवके कारण हैं, जैसे सरोवरनिके जलके आश्रवके कारण प्रवाह हैं तैसें।

भावार्थ—मिथ्यात्वादिक भाव कर्मबन्धके कारण हैं तातें इनकों त्यागना, यहु तात्पर्य है ॥ ४७ ॥

संवरणं तरसा दुरितानां, माश्रवरोधकरेषु नरेषु।
आगमनस्य कृते हि निरोधे, कुत्र विशंति चलानि सरःसु ॥ ४८ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वादिक आश्रवनिकों जे सम्यक्त्वादि भावनि करि रोकनेवाले पुरुष हैं तिनकै शीघ्र कर्मनिका रुकना रूप संवर होय है। जैसें जलनिके आवनेका द्वार रोके सन्तें सरोवरनि विषैं जल कहांतें आवै कहूतें भी न आवै है ॥ ४८ ॥

नश्यति कर्म कदाचन जन्तोः, संवरणेन विना न गृहीतम्।
शुष्यति कुत्र जलं हि तडागे, संगमने बहुधाऽभिनवस्य ॥ ४९ ॥

अर्थ—जीवकैं ग्रहण किया भया जो कर्म है सो संवर विना कदाच नाश न होय है, जैसैं सरोवर विषैं बहुत प्रकार नवीन जलका आगम होतसंतैं जल कहांतें सूखै, अपि तु नाहीं सूखै है तैसैं जानना ॥ ४९ ॥

योगनिरोधकरस्य सुदृष्टे, रस्तकषायरिपोर्विरतस्य।
यत्नपरस्य नरस्य समस्तं, संवृतिमृच्छति नूतनमेनः ॥ ५० ॥

अर्थ—मन वचन कायका रोकनेवाला अर सम्यग्दृष्टि अर नाश किये हैं कषाय वैरी जानें अर हिंसादिकतैं विरक्त अर यत्नाचारमैं तत्पर ऐसा जो पुरुष ताकै समस्त नवीन कर्म रुकै है।

भावार्थ—मिथ्यात्वादिके प्रतिपक्षी जे सम्यक्त्वादि भाव तिन-करि संवर होय है ॥ ५० ॥

धर्मधरस्य परीषहजेतु—, र्वृत्तवत: समितस्य सुगुप्ते: ।
आगमवासितमानसवृत्ते:, संगतिरस्ति न कर्मरजोभि: ॥ ५१ ॥

अर्थ—उत्तम क्षमादि दश प्रकार धर्मका धरनेवाला अर क्षुधादि परीषहनिका जीतनेवाला अर सामायिकादि चारित्रका धारी अर यत्नाचार रूप समितिनिकरि युक्त अर भले प्रकार योगनिका निग्रहरूप है गुप्ति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै कर्मरूपी रजनी करि संगति नाहीं होय है।

भावार्थ—इनिके होतसंतैं द्रव्यसंवर होय है, ऐसा जानना ॥५१॥

दर्शनबोधचरित्रतपोभिश्चेतसिकल्मषमेति न जुष्टे।
शूरतरै: पुरुषै: कृतरक्षे, शत्रुबलं विशति क्व पुरे हि ॥ ५२ ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनकरि सहित जो चित्त ता विषें पापकर्म नाहीं प्राप्त होय है! जैसें शूरवीर पुरुषनिकरि करी है रक्षा जाकी ऐसा जो नगर ताविषें शत्रुकी सेना कहां प्रवेश करै, अपितु नाहीं करै है ॥ ५२ ॥

पातकमाश्रवति स्थिररूपं, संभूतिमात्मवतां न यतीनाम्।
वर्मधरान्न नरान् रणरंगे, क्वापि भिनत्ति शिलीमुखजालम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—स्थिररूप आत्माका अनुभव करते जे आत्मज्ञानी यतीश्वर तिनके कर्म नहीं आश्रवै है। जैसें रणभूमि विषें वक्त बकतरके धरनेवाले पुरुष तिनहि बाणनिका समूह कहूँ भी भेदै नाहीं ॥ ५३ ॥

कामकषायहृषीकनिरोधं, यो विदधाति परैरसुसाध्यम्।
केवललोकविलोकितलोको, याति स मुक्तिपुरीं दुरापाम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—ज्यो पुरुष काम अर कषाय अर इंद्रिय इनिका निरोध करै है सो पुरुष मुक्तिपुरीकों प्राप्त होय है, कैसा है कामादिकका निरोध और सामान्य पुरुषनि करि असाध्य है। बहुरि कैसा है वह

पुरुष केवलज्ञान रूपी प्रकाश करि देख्या है लोक जानें । कैसी है मुक्तिपुरी दुःख करि है पावना जाका बड़े बड़े मुनीश्वर जाके अर्थि खेद करैं हैं तौ भी न पावै हैं ।

भावार्थ—जे कामादिकका संवर करैं हैं ते केवली होय मुक्तिपुरीकौं पावैं हैं इस विना कोटि कष्टनै भी मुक्ति न होय है ऐसा तात्पर्य है ॥ ५४ ॥

दृढीकृतो याति न कर्मपर्वतः, शरीरिणां निर्जरया विना क्षयम् ।
न धान्यपुंजः प्रलयं प्रपद्यते, व्ययं विना क्वापि विवर्द्धितश्चिरम् ॥५५॥

अर्थ—जीवनीकै दृढ़ किया जो कर्मरूपी पर्वत सो निर्जरा विना क्षयकौं प्राप्त न होय हैं । जैसैं बहुत कालनैं वृद्धिकौं प्राप्त किया जो धान्यका समूह सो खरच करे विना कहूं भी नाशकौं प्राप्त न होय है तैसैं ।

भावार्थ—जितना कर्म बन्धै तितना ही उदय देय खिरै तौ अनादिकालके संचयरूप कर्म नसैं नाहीं । बहुरि जब तपश्चरणादिक अनेक कालके बांधे कर्म एक कालमें खिरैं तब कर्मका नाश होय तातें तपश्चरणादिकमें प्रवर्त्तना योग्य है, यहु तात्पर्य है ॥ ५५ ॥

निरन्तरानेकभवार्जितस्य या, पुरातनस्य क्षतिरेकदेशतः ।
विपाकजापाकजभेदतो द्विधा, यतीश्वरास्तां निगदंति निर्जराम् ॥५६

अर्थ—निरन्तर अनेक भवनि विषैं उपार्ज्या जो कर्म ताकी एकदेश जो हानि ताहि यतीश्वर निर्जरा कहै हैं सो निर्जरा सविपाक अविपाक भेदतें दोय प्रकार है ॥ ५६ ॥

आगें सविपाक निर्जराका स्वरूप कहै हैं—

अनेहसा या कलिलस्य निर्जरा, विपाकजां तां कथयंति सूरयः ।
अपाकजां तां भवदुःखखर्विणीं, विधीयते या तपसा गरीयसा ॥५७॥

अर्थ—जो अपनी स्थिति पूर्ण रूप उदय काय करि कर्मकी निर्जरा है ताहि आर्य हैं ते विपाकजा निर्जरा कहै है। बहुरि जो उग्र तपश्चरण करि करिए है ताहि संसार-दु:खकी नाश करनेवाली अपाक निर्जरा कहै हैं ॥ ५० ॥

विपाकजायामुदितस्य कर्मणो, मता परस्यामखिलस्य विच्युतिः ।
यतो द्वितीयाऽत्र ततो विधानतः, सदा विधेया कुशलेन निर्जरा ॥५८॥

अर्थ—जातें सविपाकजा निर्जरा विषें तौ उदयकौं प्राप्त भया जो कर्म ताकी हानि होय है। बहुरि अविपाकजाविषें उदय आया अर विना उदय आया ऐसा सर्व ही कर्मका नाश होय है तातें प्रवीण पुरुष करि दूसरी जो अविपाक निर्जरा सो तपश्चरणादि विधानतें सदा करनी योग्य है ॥ ५८ ॥

तपोभिरुग्रैः सति संवरे रजो, निपूयमानं सकलं पलायते ।
निराश्रवं वारि विवस्वदंशुभि र्न शोष्यमाणं सरसोऽवतिष्ठते ॥५९॥

अर्थ—आगामी कर्मनिका संवर होत सन्तें उग्र तपश्चरण करि नाश किया जो कर्म सो समस्त नाशकौं प्राप्त होय है। जैसें नवीन जलके आश्रव रहित जो सरोवरका जल सो सूर्यकी किरणनि करि सोष्या भया न तिष्ठै है तैसें जानना ॥ ५९ ॥

परेण जीवस्तपसा प्रतापितो, विनिर्मलत्वं रभसा प्रपद्यते ।
सुवर्णशैलस्य मलोऽवतिष्ठते, प्रताप्यमानस्य कृशानुना कथम् ॥६०॥

अर्थ—उत्कृष्ट तप करि तपाया जो जीव है सो शीघ्र निर्मलपनेकौं प्राप्त होय है। जैसें अग्निकरि तपाया जो सुवर्णका गद्दा ताकै मैल कैसें तिष्ठै, अपितु नाहीं तिष्ठै है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानादिकतें जीवका मलिन भाव मिटै तब सिद्धपदकौं प्राप्त होय तातें सम्यग्दर्शनादि आराधना योग्य है ॥ ६० ॥

ऐसें निर्जरा भावना कही । आगें लोकभावनाकौं कहै हैं—

व्योममध्यगमकृत्रिमं स्थिरं, लोकमंगिनिवहेन संकुलम् ।
सप्तरज्जुघनसम्मितं जिना, वर्णयंति पवमानवेष्टितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जिनराज हैं ते लोककौं ऐसा वर्णन करै हैं, कैसा है लोक अनंतानंत जो आकाश ताके मध्य प्राप्त है, बहुरि काहूका करया भया नाहीं । बहुरि जीवनिके समूहनिकरि भरया है । बहुरि सात राजूका घन जो तीनसै तेतालीस राजू ता प्रमाण है । बहुरि वातवलयनि करि वेष्टित है, ऐसा है । ६१ ॥

जन्ममृत्युकलितेन जन्तुना, कर्मवैरिवशवर्तिना सता ।
यो न यत्र बहुशो विगाहितो, विद्यते न विषयः स कश्चन ॥६२॥

अर्थ—या लोक विषैं सो क्षेत्र नाहीं जो जीवनें बहुत बार नाहीं अवगाह्या । कैसा है जीव जन्म मरणकरि व्याप्त है । बहुरि कर्म वैरीके वशवर्त्ती है अर अस्तित्वरूप है ।

भावार्थ—तीनसै तेतालीस राजूमें ऐसा क्षेत्र नाहीं जहां यह जीव न उपज्या अर न मरया ऐसा वैराग्यके अर्थि विचारना ॥६२॥

भूरिशोऽत्र सुखदुःखदायिनीः, भूतिजातिगतियोनिसम्पदाः ।
यन्त्रितो विविधकर्मशृंखलैः, का न निर्विशति चेतनश्चिरम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—नाना प्रकार कर्मरूप सांकलनि करि बंध्या यहु जीव है सो बारबार सुखदुःखकी देनेवाली विभूति जाति देवादिक गति योनि सम्पदा कौनसीकौं प्राप्त न होय है ? सबहीकौं प्राप्त होय है ।

भावार्थ—इस लोकमें या जीवकौं सुखदुःखके कारण अनेकवार प्राप्त होय है तिनमें हर्ष विषाद करना वृथा है, ऐसा विचारना ॥६३॥

बांधवा भवति शत्रवोऽपि वा, कोऽत्र कस्य निजकार्यवर्जितः ।
बंधुरेष मम शत्रुरेष वा, शेमुषीमिति करोति मोहितः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस लोकमैं कार्य करि रहित कौन किसीका भाई बंधु वा शत्रु होय है? कोई भी न होय है, तातैं यहु मेरा भाई है, यहु मेरा वैरी है ऐसी बुद्धिकौं मोही जीव करै है यहु बुद्धि मिथ्या है ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

देवमर्त्यपशुनारकेष्वयं, दुःखजालकलितेष्वनारतम्।
कामकोपमदलोभवासितो, वर्त्तते भवविपर्ययाकुलः ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुःखनिके समूह करि भरे जे देव मनुष्य तिर्यंच नारकी तिन विषैं यहु काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि विभावनि करि वासित जीव निरन्तर प्रवर्त्तै है। कैसा है यहु संसार विषैं विपर्यय बुद्धि करि आकुल है, संसारमैं तो इष्टानिष्ट वस्तु नाहीं अर यहु काहूकौं इष्ट मानैं है काहूकौं अनिष्ट मानें है तातैं दुःखी है ॥ ६५ ॥

जन्मवर्तिनिवहो वियुज्यते, योज्यते स्वकृतकर्मभिः पुनः।
शुष्कपत्रनिकरः परस्परं, मारुतैरिव विभीमवृत्तिभिः ॥ ६६ ॥

अर्थ—आप करि किए जे कर्म तिनकरि संसारी जीवनिका समूह कहूँ परस्पर वियोगरूप कीजिए है कहूँ संयोगरूप कीजिए है। जैसें उग्रवेगसहित जो पवन तिनकरि पत्तानिका समूह कहूँ मिलाइए है कहूँ विछुराइए है सूखे "संयोग वियोगका कारण कर्म है कोऊ परवस्तु नाहीं" ऐसा विचारना ॥ ६६ ॥

एष वेष्टयति भोगकांक्षया, कोशकार इव लालया स्वयम्।
कर्मबीजभवया विनिंद्यया, घोरमृत्युभयदानदक्षया ॥ ६७ ॥

अर्थ—जैसें कोशकार जो कुसेरा सो अपनी लीला करि आपहीकौं बांधे है तैसें यहु जीव भोगनिकी बांछाकरि आप ही आपकौं बांधै है। कैसी है भोगनिकी वांछा कर्मबीज करि उपजी , मोहोदय जनित है, स्वभावतें नाहीं। बहुरि विशेषपनें निंद्य हैं अर भयानक

मृत्युके देनेमैं प्रवीण हैं अनन्तवार मरण करावै है ऐसी है ॥६७॥

चेतसीति सततं वितन्वतो, लोकरूपमुपजायते परा ।
राक्षसीव इव संसृते: स्फुटं, धर्मकर्मजननी विरक्तता ॥ ६८ ॥

अर्थ—या प्रकार जा लोकका स्वरूप चित्तविषें विचारै है ताकै धर्म कर्मकी उपजावनेवाली संसारतें परम उदासीनता प्रगट उपजै है, जैसें राक्षसीतें भय उपजै तैसे संसारतें भय उपजै है ॥ ६८ ॥

या प्रकार लोकभावना कही । आगे–बोधिदुर्लभभावनाकौं कहै हैं:—

देशजातिकुलरूपकल्पता, जीवितव्यबलवीर्यसम्पद: ।
देशनाग्रहणबुद्धिधारणा:, संति देहिनिवहस्य दुर्लभा: ॥ ६९ ॥

अर्थ—मुक्ति होने योग्य भरतादिक्षेत्र अर क्षत्रियादि जाति अर कुल, बहुरि सुन्दर रूप अर नीरोगता । बहुरि दीर्घ आयु अर शरीर सम्बन्धी बल अर आत्मा सम्बन्धी वीर्य अर सम्पदा अर जिनवाणीका उपदेश अर ताके जाननेकी बुद्धि । बहुरि जानकरि ताकी धारणा राखनी यह वस्तु जीवनिके समूहकौं पावना दुर्लभ है बड़े भाग्यके उदयतें मिलै है ॥ ६९ ॥

हंत ! तासु सुखदानकोविदा, ज्ञानदर्शनचरित्रसंगतिः ।
लभ्यते तनुपताऽतिकृच्छ्रत:, कामिनीष्विव कृतज्ञता सती ॥७०॥

अर्थ—आचार्य खेदकरि कहैं हैं–अहो तिन पूर्वोक्त सामग्रीनि विषैं भी सुखदेनमैं प्रवीण ऐसी जो ज्ञानदर्शन चारित्रकी संगति सो जीवकरि कष्टतैं पाइए है। जैसैं स्त्रीनि विषें सुन्दर कृतज्ञता कष्टतें पाइए तैसें पूर्वोक्त सामग्रीनिमैं बोध पावना दुर्लभ है ॥ ७० ॥

साधुलोकमहिता प्रमादतो, बोधिरत्र यदि जातु नश्यति ।
प्राप्यते न भविना तदा पुन, नीरधाविव मनोरमो मणि: ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस लोकमैं साधु पुरुषनिकरि पूजित ऐसी सम्यक्तादिककी प्राप्ति रूप जो बोधि सो कदाचित् प्रमादतें नसि जाय तौ फेरि जीवनि करि न पाइए है। जैसें समुद्र विषै पड़ी सुन्दर मणि न पाइए तैसें बोधि पावना दुर्लभ है॥ ७१॥

हंत ! बोधिमपहाय शर्मणे, योऽधमो वितनुते धनार्जनम्।
जीविताय विषवल्लरीं स्फुटं, सेवतेऽमृतलतामपास्य सः॥ ७२॥

अर्थ—अहो बड़े खेदकी बात है ! जो अधम पुरुष सम्यक्तादिककी प्राप्ति रूप बोधिकौं छोड़ करि सुखके अर्थि धन उपार्जन करै है सो जीवनेके अर्थि अमृतवेलकौं छोड़कै प्रगटपनें विषवेलिकौं सेवै है॥ ७२॥

योऽत्र धर्ममुपलभ्य मुंचते, क्लेशमेष लभतेऽतिदारुणम्।
यो निधानमनघं व्यपोहते, खिद्यते स नितरां किमद्भुतम्॥७३॥

अर्थ—जो पुरुष धर्मकौं पायकरि छोड़ै है सो यहु अति भयानक क्लेशकौं पावै है। जैसें जो निर्मल भण्डारकौं छोड़ै सो अत्यन्त खेदखिन्न होय ही होय, यामें कहा आश्चर्य है॥ ७३॥

मुंचता जननमृत्युयातनां, गृह्णता च शिवतातिमुत्तमाम्।
शाश्वती मतिमता विधीयते, बोधिरद्रिपतिचूलिका स्थिरा॥ ७४॥

अर्थ—जो जीव जन्म मरणकी तीव्र वेदनाकौं त्यागता है। बहुरि शाश्वती कल्याणकी संततिकौं ग्रहण करता है ता बुद्धिमान पुरुष करि दर्शनादिककी प्राप्ति रूप जो बोधि सो सुमेरुकी चूलिका समान स्थिर कीजिए है।

भावार्थ—जो जीव दुःखकौं त्यागि सुखी भया चाहै सो सम्यग्दर्शनादिककौं दृढ़ राखै यहु तात्पर्य है॥ ७४॥

ऐसें बोधि भावना कही। आगें—धर्म भावनाका वर्णन करें हैं—

निरुपमनिरवद्यशर्ममूलं, हितमभिपूजितमस्तसर्वदोषम।
भजति जिननिवेदितं स धर्मं, भवति जनः सुखभाजनं सदा यः॥७५॥

अर्थ—जो पुरुष जिनभाषित धर्मकौं सेवै है सो सदा सुखका भाजन होय है, कैसा है जिनभाषित धर्म उपमा रहित अर पाप रहित सुखका मूल है। बहुरि हितस्वरूप है अर सबनिकरि पूजित है अर नष्ट भये हैं पूर्वापर विरुद्ध आदि दोष जाके ऐसा है॥ ७५॥

व्यपनयति भवं दुरन्तदुःखं, वितरति मुक्तिपदं निरामयं यः।
भवति कृतधिया त्रिधा विधेयः, सकलसमीहितसाधनः स धर्मः॥७६॥

अर्थ—पूर्ण है बुद्धि जाकी ऐसे पुरुष करि सो धर्म मन वचन कायकरि करना योग्य है, कैसा है धर्म सकल वांछित वस्तुका साधन है जातैं समस्त इष्ट पदार्थ मिलैं हैं। बहुरि जो धर्म-दूर है, अन्त जाका ऐसा है दुःख जामें ऐसा जो संसार ताहि दूर करै है, अर निर्दोष मुक्तिपदकौं देय है॥ ७६॥

मनुजभवमवाप्य यो न धर्मं, विषयसुखाकुलितः करोति पथ्यम्।
मणिकनकनगं समेत्य मन्ये, पिपतिषति स्फुटमेष जीवितार्थी॥७७॥

अर्थ—मनुष्य जन्मकौं पायकर विषयनिसे सुखनि विषैं आकुलित जो पुरुष हितरूप धर्मकौं न करै है सो मैं ऐसा मानूं हूँ कि यहु रत्न सुवर्णके पर्वतकौं प्राप्त होय करि प्रगटपने जीवनेका अर्थी पड़नेकौं इच्छै है, मनुष्यभव पाय करि तौ धर्म करना ही योग्य है॥ ७७॥

कलुषयति कुधीर्निरस्तधर्मा, भवशतमेकभवस्य कारणं यः।
अभिलषितफलानि दातुमीशं, त्यजति तृणार्थितया स कल्पवृक्षम्॥७८॥

अर्थ—जो त्यागा है धर्म जानें ऐसा कुबुद्धि पुरुष एक भवके अर्थ अनेक भव बिगाड़ै है सो फलनिके देवे समर्थ जो कल्पवृक्ष ताहि त्यागे है अर तृणके अर्थि अभिलाषा करै है।

भावार्थ—जो एक भव सम्बन्धी किंचित् विषय सुखके अर्थ

धर्म छोडै है सो अनेकवार निगोदादि पर्यायनिमें भ्रमै है, तातें अनेक भव विगाडना कह्या है, ऐसा जानना ॥ ७८ ॥

शमयमनियमव्रताभिरामं, चरति न यो जिनधर्ममस्तदोषम्।
भवमरणनिपीडितो दुरात्मा, भ्रमति चिरं भवकानने स भीमे ॥७९॥

अर्थ—जो पुरुष दूर किये है हिंसादि दोष जानें ऐसा जो जिन-धर्म ताहि नाहीं आचरण करै है सो जन्म मरण करि दुःखित दुरात्मा बहुत काल ताईं भयानक संसारवन विषैं भ्रमै है, कैसा है जिनधर्म कषायके अभावरूप शमभाव अर यावज्जीव त्यागरूप यम अर कालकी मर्यादारूप नियम अर अहिंसादि व्रत इनकरि सुंदर है युक्त है ॥७९॥

विगलितकलिलेन येन युक्तो, भवति नरो भुवनस्य पूजनीयः।
शुचिवचनमनःशरीरवृत्त्या, भजति बुधो न कथं तमत्र धर्मम् ॥८०॥

अर्थ—जो पापरहित धर्म करि युक्त मनुष्य है सो लोकके पूज-नीक होय है ता धर्मकौं इसलोकमैं पवित्र मन वचन कायकी परणति करि कौन पंडित जन न सेवै है? सेवै ही है ॥ ८० ॥

क्षांतिर्मार्दवमार्जवं निगदितं सत्यं शुचित्वं तपस्त्यागोऽकिंचनता मुमुक्षुपतिभिर्ब्रह्मव्रतं संयमः। धर्मस्येति जिनोदितस्य दशधा निर्दूषणं, कुर्वाणो भवयंत्रणाविरहितो मुक्त्यंगनां श्लिष्यति ॥ ८१ ॥

अर्थ—क्रोधकषायके अभावरूप क्षमा अर मानके अभावरूप मार्दव अर मायाके अभावरूप आर्जव अर सत्य वचन अर लोभके अभावरूप शुचिपना अर अनशनादि तप अर शक्तिमाफ त्याग अर निष्परिग्रहता अर ब्रह्मचर्य अर संयम ऐसें दशप्रकार लक्षण जिनधर्मकौं मुनीश्वरनि करि कह्या ताहि जो आचरण करै है सो संसारबंधनकरि रहित भया सन्ता मुक्तिस्त्रीकौं आलिंगै है ॥ ८१ ॥

ऐसे धर्मानुप्रेक्षा कही। आगें अधिकारकौं संकोचै है—

योऽनुप्रेक्षा द्वादशापीति नित्यं, भव्यो भक्त्या ध्यायति ध्यानशीलः।
हेयादेयाशेषतत्त्वावबोधी, सिद्धिं सद्यो याति स ध्वस्तकर्मा ॥ ८२ ॥

अर्थ—या प्रकार जो पुरुष द्वादश अनुप्रेक्षानिकौं ध्यान रूप है स्वभाव जाका ऐसा भव्य भक्ति करि नित्य ही ध्यावै है विचारै है सो हेय उपादेय तत्वका जाननेवाला शीघ्र ही मुक्तिपदकौं प्राप्त होय है कैसा है सो नाश किये हैं कर्म जानें ऐसा है।

भावार्थ—जो द्वादश अनुप्रेक्षा भावै है सो मुक्तिकौं प्राप्त होय है ऐसा भावनाका फल दिखाया है ॥ ८२ ॥

सूचिततत्त्वं ध्वस्तकुनत्वं, भवभयविदलनदमयमकथनम्।
यो हृदि धत्ते पापनिवृत्ते, शुचिरुचिचिरं जिनपतिवचनम् ॥ ८३ ॥
केवललोकालोकितलोकोऽमितगतियत्तिरतिसुरपतिमहिताम्।
याति स सिद्धिं पावनशुद्धिं, सकलितकलिमलगुणमणिमहिताम् ॥ ८४॥

अर्थ—जो पुरुष जिनराजके वचनकौं पापरहित हृदयविषैं धारै है सो पुरुष मोक्षकौं प्राप्त होय है, कैसा है जिनराजका वचन सूचित किया है (बताया है) वस्तुका स्वरूप जानें। बहुरि नाश किया है अन्यथा वस्तुका स्वरूप जानैं (वस्तु तौ जैसा अनेकांत स्वरूप है तैसा ही है परन्तु अन्यथा मानने रूप मिथ्या अभिप्रायका जानें नाश किया है ऐसा है) बहुरि संसार भयका नाश करनेवाला है इन्द्रियनिका दमन अर संयमका कथन जाविषैं, बहुरि पवित्र रुचिकरि सुन्दर है रुचिकारी है, बहुरि कैसा है सो जिन वचनकौं हृदयमें धारनेवाला पुरुष केवलज्ञान दर्शनरूपी प्रकाश करि देख्या है लोक जानें।

भावार्थ—जिन वचनके अभ्यासतें केवली होय है, कैसी है मुक्ति अनन्त है महिमा जिनकी ऐसे जे गणधरादिक अर देवनिके इन्द्र तिन करि पूजित है। बहुरि रागादि दोषरहित अत्यंत पवित्र है।

बहुरि खण्डित किये हैं पापरूप मैल जिननें ऐसे सम्यक्त्वादि गुण रत्न करि पूजित है युक्त है, ऐसा जानना ॥ ८३-८४ ॥

सवैया इकतीसा।

जग है अनित्य तामैं सरन न वस्तु कोय,
तातें दुःखरासि भववासकौं निहारिए।
एक चित्त चिह्न सदा भिन्न परद्रव्यनितें,
अशुचि शरीरमैं न आपाबुद्धि धारिए॥
रागादिक भाव करै कर्मको बढ़ाव तातें,
संवरस्वरूप होय कर्मबन्ध डारिए।
तीन लोक मांहि जिनधर्म एक दुर्लभ है,
तातें जिनधर्मकौं न छिनहू विसारिए॥

दोहा।

ऐसें द्वादश भावना, भाषी अमितगतीस।
जो भावैं सो सुख लहै, कर्म महागिरि पीस॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं चतुर्दशमा परिच्छेद समाप्त भया।

पञ्चदशः परिच्छेदः।

नियम्य करणग्रामं व्रतशीलगुणादितः। सर्वो विधीयते भव्यैर्विधिरेष विमुक्तये॥ १॥ न सा संपद्यते जंतोः सर्वकर्मक्षयं विना। रजोपहारिणा दृष्टिर्वलाहकमिवार्जिता॥ २॥ समस्तकर्मविश्लेषो ध्यानेनैव विधीयते। न भास्करं विनाऽन्येन हन्यते शार्वरं तमः॥ ३॥ यत्नः कार्यो बुधैर्ध्याने कर्मभ्यो मोक्षकांक्षिभिः। रोगेभ्यो दुःखकारिभ्यो व्याधितैरिव भेषजम्॥ ४॥

अर्थ—व्रत अर शील अर गुणनिमैं किया है आदर जिननैं ऐसे भव्य जीवनि करि इंद्रियनिके समूहकौं रोकि करि यह सर्व पूर्वोक्त व्रतादि आचरण मुक्तिके अर्थि कीजिए है ॥ १ ॥

सो मुक्ति सर्व कर्मनिके क्षयविना जीवकै न होय है जैसैं मेघविना रजकी उपशमावनेवाली वृष्टि न होय तैसैं ॥ २ ॥

बहुरि समस्त कर्मका नाश ध्यान ही करि करिए है जैसैं सूर्य विना और करि रात्रि सम्बन्धी अन्धकार न निवारिए तैसें ॥ ३ ॥

तातैं कर्मनतैं मोक्षके वांछक जे पंडितजन तिनकरि ध्यान विषैं यत्न करना योग्य है। जैसें रोगनतैं छूटनेके वांछक जे रोगी तिनिकरि औषधका यत्न करना योग्य है तैसें ॥ ४ ॥

आगै ध्यानका सामान्य लक्षण कहैं हैं:—

आद्यत्रिसंहतेः साधेरांतर्मौहूर्तिकं परम्।

वस्तुन्येकत्र चित्तस्य, स्थैर्यं ध्यानमुदीर्यते ॥ ५ ॥

अर्थ—आदिके वज्रवृषभनाराच वज्रनाराच अर्द्धनाराच ये तीन संहनन जिनकैं पाइए ऐसे जे ध्यानके साधनेवाले पुरुष तिनि करि एक वस्तु विषैं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मनकी थिरता कीजिए सो ध्यान कहिए है ॥ ५ ॥

तदन्येषां यथाशक्ति, मनोरोधविधायिनाम्।

एकद्वित्रिचतुः पंच, षडादिक्षणगोचरम् ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुरि सो ध्यान, मनके रोकनेवालेनिकैं यथाशक्ति एक दोय तीन च्यार पांच छह आदि समयनिके गोचर है।

भावार्थ—उत्कृष्ट ध्यान उत्तम संहननवालेकै अन्तमुहूर्तका है औरनिकै यथाशक्ति एक आदि समय भी ध्यान होय है, ऐसा जानना ॥ ६ ॥

साधकः साधनं साध्यं, फलं चेति चतुष्टयम्।
विबोद्धव्यं विधानेन, बुधैः सिद्धिं विवित्सुभिः ॥ ७ ॥

अर्थ—मोक्षके जानने वा प्राप्त होनेके वांछक जे पंडित जन तिनकरि साधन करनेवाला साधक, अर जाकरि साधिए सो साधन, बहुरि साधनेयोग्य होय सो साध्य, अर साधनाका फल यह च्यार बात विधान सहित जानना योग्य है ॥ ७ ॥

सो ही कहैं हैं—

संसारी साधको भव्यः, साधनं ध्यानमुज्वलम्।
निर्वाणं कथ्यते साध्यं, फलं सौख्यमनश्वरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—संसारी भव्य जीव तौ साधनेवाला साधक है। बहुरि निर्मल ध्यान है सो साधन है। बहुरि मोक्ष साधने योग्य साध्य है। बहुरि अविनाशी सुख है सो ध्यानका फल है ऐसा जानना ॥ ८ ॥

आगैं ध्यानके भेद कहैं हैं—

आर्त्तं रौद्रं मतं धर्म्यं, शुक्लं चेति चतुर्विधम्।
ध्यानं ध्यानवतां मान्यैर्भवनिर्वाणकारणम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ध्यानवान जे मुनीश्वर तिनि करि मानने योग्य जे गणधरादिक तिनि करि आर्त्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल ऐसैं च्यार प्रकारका ध्यान संसारका अर निर्वाणका कारण कह्या है ॥ ९ ॥

संसारकारणं पूर्वं, परं निर्वृतिकारणम्।
इत्याद्यं द्वितयं त्याज्यमादेयमपरं बुधैः ॥ १० ॥

अर्थ—पहले आर्तरौद्र तौ संसारके कारण हैं। बहुरि पर जे धर्म शुक्ल ते मोक्षके कारण हैं इस हेतुतैं पंडितनिकरि आदिके आर्त, रौद्र दोनौं त्यागने योग्य हैं। बहुरि और जे धर्म शुक्ल ते ग्रहण करना योग्य हैं ॥ १० ॥

तहां प्रथम ही आर्त्तध्यानके भेद कहैं हैं—

प्रिययोगाऽप्रियायोगपीडालक्ष्मीविचिंतनम् ।
आर्त्तं चतुर्विधं ज्ञेयं, तिर्यग्गतिनिबन्धनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—इष्ट वस्तुका वियोग अर अनिष्ट वस्तुका संयोग अर रोगादिककी पीड़ा अर लक्ष्मीकी अभिलाषारूप जो विचार सो च्यार प्रकार आर्तध्यान तिर्यंच गतिका कारण जानना ॥ ११ ॥

आगें रौद्रध्यानका स्वरूप कहैं हैं—

रौद्रं हिंसानृतस्तेयभोगरक्षणचिंतनम् ।
ज्ञेयं चतुर्विधं शक्तं, श्वभ्रभूमिप्रवेशने ॥ १२ ॥

अर्थ—हिंसा अर झूँठ अर चोरी अर विषयनिकी रक्षा इनिविषैं हर्षरूप जो चितवन सो च्यार रौद्रध्यान नरकभूमि विषें प्रवेश करावने विषें समर्थ जानना योग्य है ॥ १२ ॥

आगैं धर्मध्यानके भेद कहैं हैं—

आज्ञापायविपाकानां, चिंतनं लोकसंस्थितेः ।
चतुर्धाऽभिहितं धर्म्यं, निमित्तं नाकशर्मणः ॥ १३ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञा अर संसार दुःखका नाश अर कर्मनिका उदय इनका विचारना अर लोकके आकारका विचारना ऐसें च्यार प्रकार धर्मध्यान स्वर्गसुखका कारण कह्या है ॥ १३ ॥

आगैं शुक्लध्यानके भेदनिकौं कहैं हैं—

शुक्लं पृथक्त्ववीतर्कवीचारं प्रथमं मतम् ।
जिनैरेकत्ववीतर्काऽवीचारं च द्वितीयकम् ॥ १४ ॥
अन्यत्सूक्ष्मक्रियं तुर्यं, समुच्छिन्नक्रियं मतम् ।
इत्थं चतुरविधं शुक्ले, सिद्धिसौधप्रवेशकम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जिनदेवनि करि पृथक्त्ववितर्कवीचार पहला शुक्लध्यान

कह्या है पृथक्त्व कहिये भिन्न भिन्नपनै करि वितर्क जो श्रुत ताका विचार कहिए अर्थ शब्द अर योगकी पलटना ताकौं पृथक्त्ववितर्क विचार कहिये। बहुरि एक पनांकरि श्रुतका जामैं चिंतवन होय पलटन न होय सो एकत्ववितर्क वीचार कह्या है। बहुरि योगनिकी क्रिया जामैं सूक्ष्म होय सो सूक्ष्मक्रिया तीसरा है। बहुरि नष्ट भई है योगनिकी क्रिया जामैं सो समुच्छिन्नक्रिय है, ऐसैं च्यार प्रकार शुक्लध्यान मुक्ति महलके प्रवेश करावनेवाला कह्या है ॥ १५ ॥

आगें ध्यानके स्वामी कहैं हैं—

आर्त्तं तनूमतां ध्यानं, प्रमत्तांतगुणाश्रितम् ।
संयतासंयतांतानां, रौद्रं ध्यानं प्रवर्त्तते ॥ १६ ॥

अर्थ—जीवनकै आर्त्तध्यान है सो छट्ठा प्रमत गुणस्थान पर्यंत तिष्ठै है अर संयतासंयत जो पंचम गुणस्थान तहां ताईं रौद्रध्यान प्रवर्त्तैं है ॥ १६ ॥

अनपेतस्य धर्मस्य, धर्मतो दशभेदतः ।
चतुर्थः पंचमः षष्ठः, सप्तमश्च प्रवर्त्तकः ॥ १७ ॥

अर्थ—आज्ञादिक दश प्रकार धर्म जो स्वभाव ताकरि युक्त जो धर्मध्यान ताका प्रवर्त्तावनेवाला ध्यावनेवाला चतुर्थ षष्ठव सप्तम गुणस्थानवर्त्ती जीव जानना।

भावार्थ—यद्यपि चतुर्थादि गुणस्थाननिमैं परिणामनिकी निर्मलता वा वस्तु विचारमैं लीनता अधिक अधिक है तथापि सामान्यपनें सर्व धर्मध्यान ही कह्या है ॥ १७ ॥

समर्थं निर्मलीकर्तुं, शुक्लं रत्नशिखास्थिरम् ।
अपूर्वकरणादीनां, मुमूक्षूणां प्रवर्त्तते ॥ १८ ॥

अर्थ—निर्मल करनेकौं समर्थ ऐसा जो शुक्ल ध्यान है सो

अपूर्वकरण आदि सात गुणस्थानवाले मोक्षके वांछक जे आत्मा तिनकै प्रवर्तै है। कैसा है शुक्ल ध्यान रत्नकी शिखा समान स्थिर है, जैसें रत्नकी शिखा पवनादिकतें न चलै तैसें शुक्ल ध्यान रागादिकतें न चलै है॥ १८॥

अह्नायोद्धूयते सर्वं, कर्म ध्यानेन संचितम्।
वृद्धं समीरणेनेव, वलाहककदंबकम्॥ १९॥

अर्थ—संचय किया जो सर्व कर्म है सो ध्यानकरि शीघ्र उडाइए है तैसें॥ १९॥

ध्यानद्वयेन पूर्वेण, जन्यंते कर्मपर्वताः।
वज्रेणेव विभिद्यंते, परेण सहसा पुनः॥ २०॥

अर्थ—पहले दोय ध्यान जे आर्तरौद्र तिनकरि कर्मरूपी पर्वत उपजाइए है। बहुरि पीछले जे दोय धर्मध्यान शुक्ल ध्यान तिन करि कर्म-पर्वत शीघ्र ही भेदिए है।

भावार्थ—आर्तरौद्रतैं कर्म बंधै हैं अर धर्म शुक्लनितैं कर्मनिका नाश होय है, ऐसा जानना॥ २०॥

यो ध्यानेन विना मूढः, कर्मच्छेदं चिकीर्षति।
कुशिलेन विना शैलं, स्फुटमेष विभित्सति॥ २१॥

अर्थ—जो मूढ ध्यान विना कर्मनिका नाश करनेकौं इच्छै है सो प्रगट यहु वज्रविना पर्वतके छेदनेकौं इच्छै है॥ २१॥

ध्यानेन निर्मलेनाऽऽशु, हन्यते कर्मसंचयः।
हुताशनकणेनापि, प्लुष्यते किं न काननम्॥ २२॥

अर्थ—निर्मल ध्यान करि शीघ्र कर्मनिका समूह नाश कीजिए है। जैसें अग्निके कण करि भी कहा वन न जलाइए हैं, जलाइए ही है॥ २२॥

ध्यानं विधित्सता ज्ञेयं, ध्याता ध्येयं विधिः फलम् ।
विधेयानि प्रसिद्ध्यंति, सामग्रीतो विना न हि ॥ २३ ॥

अर्थ—ध्यान करनेकौं इच्छता जो पुरुष ताकरि ध्याता कहिए ध्यानका करनेवाला अर ध्येय कहिए ध्यावने योग्य वस्तु विधि कहिए ध्यानका विधान अर ध्यानका फल ये जानने योग्य हैं, ते सामग्री विना सिद्ध होय नाहीं । ध्याता आदिका स्वरूप जानें तौ ध्यानकी सिद्धि होय ॥ २३ ॥

आगै ध्याताका स्वरूप कहैं हैं—

निसर्गमार्दवोपेतो, निष्कषायो जितेंद्रियः । निर्ममो निरहंकारः, पराजितपरीषहः ॥ २४ ॥ हेयोपादेयतत्वज्ञो, लोकाचारपराङ्मुखः । विरक्तः कामभोगेषु, भवभ्रमणभीलुकः ॥ २५ ॥ लाभेऽलाभे सुखे दुःखे, शत्रौ मित्रे प्रियेऽप्रिये । मानापमानयोस्तुल्यो मृत्युजीवितयोरपि ॥ २६ ॥ निरालस्यो निरुद्वेगो जितनिद्रो जितासनः । सर्वव्रतकृताभ्यासः सन्तुष्टो निष्परिग्रहः ॥ २७ ॥ सम्यक्त्वालंकृतः शांतो रम्यारम्यनिरुत्सुकः । निर्भयो भाक्तिकः श्राद्धो, वीरो वैरागिकोऽशठः ॥ २८ ॥ निर्निदानो निरापेक्षो विभंक्षुर्देहपंजरम् । भव्यः प्रशस्यते ध्याता यियासुः पदमव्ययम् ॥ २९ ॥

अर्थ—स्वभाव करि ही कोमल परिणाम करि युक्त होय, कषाय-रहित होय (तीव्र कषायी न होय) अर जीते हैं इंद्रिय जानें ऐसा होय, बहुरि परद्रव्यनिमैं ममकार रहित होय, अहंकार रहित होय (परद्रव्य मेरे हैं ऐसी बुद्धि सो तो ममकार कहिये, पर हैं सो ऐसी बुद्धिकौं अहंकार कहिए इन करि रहित होय) अर जीते हैं क्षुधादि परिषह जानें ऐसा होय ॥ २४ ॥

अर त्यागने योग्य अर ग्रहण करने योग्य जे तत्व तिनका ज्ञाता

होय अर लौकिक आचारतैं अपूठो होय, अर काम भोगने विषै विरक्त होय, अर संसार-भ्रमणतें भयभीत होय ।। २५ ।।

लाभ अलाभ, सुख दुःख, शत्रु मित्र, प्रिय वस्तु अप्रिय वस्तु, मान अपमान, अर मरण जीवन विषै भी समान होय ।

भावार्थ—सर्वकौं ज्ञेयपना करि समान जानि इष्टानिष्टबुद्धि नाहीं करै ॥ २६ ॥

निरालसी होय, उद्वेग रहित होय, जीती हैं इंद्रियां जानें, अर जीत्या है आसन जानें, आसन बांधनेमें हलै चलै नाहीं, अर सर्व अहिंसादि व्रतनिका कराया है अभ्यास जानें, अर सन्तोष सहित प्रसन्न-चित्त होय, अर परिग्रह रहित होय है ॥ २७ ॥

अर सम्यग्दर्शनकरि शोभित होय, शांतपरिणामी होय, अर सुन्दर चित्तकौं रमावनेवाली वस्तु तिनमैं उत्साहरहित होय, निर्भय होय, देव गुरु धर्म विषैं भक्त होय, कर्म वैरीके जीतनेकौं सुभट होय, वैरागी होय, पण्डित होय ॥ २८ ॥

निदान रहित होय, काहूकी अपेक्षा लिये न होय, देहरूपी पींजरेके भेदनेका इच्छुक होय, भव्य होय ऐसा अविनाशी स्थानके जानेका इच्छुक ध्याता सराहिये है ॥ २९ ॥

ऐसें ध्याताका स्वरूप कह्या । आगैं–ध्येयकौं कहै हैं—

ध्येयं पदस्थपिण्डस्थरूपस्थरूपभेदतः ।
ध्यानस्यालम्बनं प्राज्ञैश्चतुर्विधमुदाहृतम् ।। ३० ।।

अर्थ—ध्यानका आलम्बन कहिए जाकौं ध्यानविषैं चिन्तिए ऐसा ध्येय, पदस्थ १ पिण्डस्थ २ रूपस्थ ३ अरूप ४ इन भेदनि-करि बुद्धिमाननिनैं च्यार प्रकार कह्या है ॥ ३० ॥

तहां प्रथम ही पदस्थका स्वरूप कहै हैं:—

यानि पंचनमस्कारपददादीनि मनीषिणा ।
पदस्थं ध्यातुकामेन तानि ध्येयानि तत्वतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जे पंचनमस्कारपद आदि अक्षरनिके समूह रूप पद हैं ते पदस्थ ध्यावनेका वांछक जो बुद्धिमान पुरुष ताकरि निश्चयतैं ध्यावने योग्य है ।

भावार्थ—पदस्थमैं पंचनमस्कार मंत्र आदि पद ध्यावना ॥३१॥
आगे मंत्रनिका विधान कहै हैं—

मरुत्सखशिखो वर्णो भूतांतः शशिशेखरः ।
आद्यध्यादिको ज्ञात्वा ध्यातुः पापं निषूदते ॥ ३२ ॥

स्थितो ऽ सि उ सा मन्त्रश्चतुष्पत्रे कुशेशये ।
ध्यायमानः प्रयत्नेन कर्मोन्मूलयतेऽखिलम् ॥ ३३ ॥

तन्नाभौ हृदये वक्रे ललाटे मस्तके स्थितम् ।
गुरुप्रसादतो बुद्ध्वा चिन्तनीयं कुशेशयम् ॥ ३४

*अयुयविस्यमी वर्णाः स्थिताः पद्मे चतुर्दले ।
विश्राणयंति पंचापि सम्यग्ज्ञानानि चिन्तिताः ॥ ३५ ॥

स्थितपंचनमस्काररत्नत्रयपदैर्दलैः ।
अष्टभिः कलिते पद्मे स्वरकेसरराजिते ॥ ३६ ॥

यंत्रः

* अ इ उ य उ ।

स्थितोऽर्ह मित्ययं मन्त्रो ध्यायमानो विधानतः।
ददाति चिन्तितां लक्ष्मीं कल्पवृक्ष इवोर्जिताम्॥ ३७॥
इषतीं कारस्तोमः सोऽर्हं मध्यस्थितो विगतमूर्द्धा।
पार्श्वेप्रणवचतुष्को ध्येयो द्विप्रांतकृतमायः॥ ३८॥
सहस्रा द्वादश प्रोक्ता जपहोमविचक्षणैः।
ॐ जोगेत्यादिमन्त्रस्य तद्भागो दशमः पुनः॥ ३९॥

ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिणपार्स्से स्वाहा। अयं मंत्रः, जाप्यं द्वादशसहस्रं १२०००, होमः द्वादशशतं १२००।

चक्रस्योपरि जापेन जातीपुष्पैर्मनोरमैः।
विद्या सूचयते सम्यक् स्वप्ने सर्वं शुभाशुभम्॥ ४०॥
ॐ ह्रीं कारद्वयांतस्था ह्रंकारो रेफभूषितः।
ध्यातव्योऽष्टदले पद्मे कल्मषक्षपणक्षमः॥ ४१॥
सप्ताक्षरं महामंत्रं ॐ ह्रीं कारपदानतम।
विदिग्दलगतं तत्र स्वाहांतं विनिवेशयेत्॥ ४२॥
×दिशि स्वाहांतमों ह्रीं ह्रँ नमो ह्रीं ह्र पदोत्तमम्।
तत्र स्वाहांतमों ह्रीं ह्रं कर्णिकायां विनिक्षिपेत्॥ ४३॥
तत्पद्मं त्रिगुणीभूत मायावीजेन वेष्टयेत्।
विचिंतयेच्छुचीभूतः स्वेष्टकृत्यप्रसिद्धये॥ ४४॥
पद्मस्योपरि यत्नेन देयोपादेयलब्धये।
मंत्रेणानेन कर्तव्यो जपः पूर्वविधानतः॥ ४५॥

× दूसरी संस्कृत प्रतिमें यह श्लोक इस प्रकार है—
दिशि स्वाहांतमों ह्रीं ह्राँ नमों ह्रीं हँ पदोत्तमम्।
तत्र स्वाहा नमो ह्रीं हँ कर्णिकायां विनिक्षिपेत्॥

ॐ ह्रीं ह्रं नमो ह्रं णमो अरहंताणं ह्रीं नमः इति मूलमंत्रः। जाप्य १०००० होमः १००० ।

सव्येनाप्रतिचक्रेण झडिति प्रत्येकमक्षरम् ।
कोणषट्के विचक्राय स्वाहा बाह्येऽपसव्यतः ॥ ४६ ॥
निविश्य विधिना दक्षो मध्ये तस्य निवेशयेत् ।
भूतांतं बिंदुसंयुक्तं चिंतयेच्च विशुद्धधीः ॥ ४७ ॥
विधाय वलयं बाह्ये तस्य मध्ये विधानतः ।
णमो जिणाणमित्याद्यैः पूरयेत्प्रणवादिकैः ॥ ४८ ॥

ॐ णमो जिणाणं १—ॐ णमो परमोधि जिणाणं २—ॐ णमो सव्वोधि जिणाणं ३—ॐ णमो अणंतोधि जिणाणं ४—ॐ णमो कोट्ठ-बुद्धीणं ५—ॐ णमो बीजबुद्धीणं ६—ॐ णमो पादानुसारीणं ७—ॐ णमो संभिण्णसोदराणं ८—ॐ णमो उज्जुमदीणं ९—ॐ णमो विउल-मदीणं १०—ॐ णमो दसपुव्वीणं ११—ॐ णमो चौदसपुव्वीणं १२—ॐ णमो अठ्ठंगणिमित्तकुसलाणं १३—ॐ णमो विगुव्वणइड्ढिपत्ताणं १४—ॐ णमो विज्जाहराणं १५—ॐ णमो चारणाणं १६—ॐ णमो पण्णसमणाणं १७—ॐ णमो आगासगामीणं १८—ॐ ज्रों झ्रौं श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी स्वाहा इति पदैर्वलयं पूरयेत्। एवं पंचनमस्का-रेण पंचांगुलीन्यस्तेन सकली क्रियते; ॐ णमो अरहंताणं ह्राँ स्वाहा अंगुष्ठे, ॐ णमो सिद्धाणं ह्रीं स्वाहा तर्जन्यां, ॐ णमो आयरियाणं ह्रू स्वाहा मध्यमायां, ॐ णमो उवज्झायाणां ह्रौं स्वाहा अनामिकायां, ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं कनिष्ठकायां, एवं वारत्रयमंगुलीषु विन्यस्य मस्तकस्योपरि पूर्वदक्षिणापरोत्तरेषु विन्यस्य जपं कुर्यात् ।

इहां ताईं यहु मन्त्रविधान वा यन्त्ररचना वा क्रिया-विशेष आदि वर्णन किया, सो याका अर्थ हमकौं यथार्थ सर्व प्रतिभास्या नाहीं

तातैं न लिख्या है, विशेष बुद्धि जिनकौं मन्त्र शास्त्रका ज्ञान होय ते यथार्थ समझ लेज्यो ।

अभिधेया नमस्कारपदैर्ये परमेष्ठिनः ।

पदस्थास्ते विधीयंते, शब्देऽर्थस्य व्यवस्थितेः ॥ ४९ ॥

अर्थ—जे अर्हतादि परमेष्ठी नमस्कार पदनिकरि कहने योग्य हैं ते पदस्थ कहिए है, जातैं शब्द विषैं पदार्थकी व्यवस्थिति है ।

भावार्थ—शब्दके अर अर्थके वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध है, तातैं शब्दमैं अर्थ तिष्ठे है इस हेतुतैं नमस्कार आदि शब्दनिके ध्यानकौं पदस्थ कह्या है ॥ ४९ ॥

आगैं पिंडस्थ ध्यानकौं कहैं हैं—

अनंतदर्शनज्ञानसुखवीर्यैरलंकृतम् । प्रातिहार्याष्टकोपेतं नरामरनमस्कृतम् ॥ ५० ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशशरीरमुरुतेजसम् । घातिकर्मक्षयोत्पन्न नवकेवल लब्धिकम् ॥ ५१ ॥ विचित्रातिशयाधारं लब्ध कल्याणपंचकम् । स्थिरधीः साधुरर्हंतं ध्यायत्येकाग्रमानसः ॥ ५२ ॥

अर्थ—स्थिर धी बुद्धि जाकी ऐसा एकाग्रचित्त साधु है सो अर्हंतदेवकौं ध्यावै है, कैसा है अर्हंत देव अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य करि शोभित है । बहुरि अशोकवृक्ष पुष्पवृष्टि दिव्यध्वनि चमर सिंहासन भामंडल देवदुंदुभि छत्र इनि अष्ट प्रातिहार्यनिकरी युक्त है । बहुरि मनुष्य देवनिकरि किया है नमस्कार जाकौं ऐसा है । बहुरि निर्मल स्फटिकमणि समान है परमौदारिक शरीर जाका, बहुरि घातिकर्मके क्षयतैं उपजी है नव केवल लब्धि जाकै, बहुरि नानाप्रकारके अतिशय कहिए जिनकौं देखि लौकिक जीवनिके चित्तकौं आश्चर्य उपजै ऐसे अतिशयनि करि युक्त है । बहुरि पाया है पंचकल्याणक जानैं ऐसा है ॥ ५०-५१-५२ ॥

पिंडस्थो ध्यायते यत्र, जिनेन्द्रो हृतकल्मषः।
तत्पिंडपंचकध्वंसि, पिंडस्थं ध्यानमिष्यते ॥ ५३ ॥

अर्थ—नाश किया है कल्मष कहिए पाप जानें ऐसा जो जिनेन्द्र सो पिंड जो परमौदारिक शरीर ताविषें तिष्ठ्या ध्याइए सो पिंडस्थ ध्यान कहिए। बहुरि कैसा है पिंडस्थ ध्यान औदारिकादि पंच शरीरनिका नाश करनेवाला है, सिद्धपदकौं देनेवाला है ॥ ५३ ॥

आगें रूपस्थ ध्यानकौं कहैं हैं—

प्रतिमायां समारोप्य, स्वरूपं परमेष्ठिनः।
ध्यायतः शुद्धचित्तस्य, रूपस्थं ध्यानमिष्यते ॥ ५४ ॥

अर्थ—परमेष्ठिका स्वरूप प्रतिमा विषें भले प्रकार आरोपण करकें ध्यान करता शुद्ध है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकें रूपस्थ ध्यान कहिए है ॥ ५४ ॥

आगें अरूपस्थ ध्यानकौं कहैं हैं—

सिद्धरूपं विमोक्षाय, निरस्ताशेषकल्मषम्। जिनरूपमिव ध्येयं, स्फटिकप्रति विंवितम् ॥ ५५ ॥ अरूपं ध्यायति ध्यानं, परं संवेदनात्मकम्। सिद्धरूपस्य लाभाय, नीरूपस्य निरेनसः ॥ ५६ ॥

अर्थ—दूर भये हैं समस्त कर्म जाके ऐसा सिद्ध भगवानका स्वरूप जैसा स्फटिक विषें प्रतिविंवित जिनराजका स्वरूप,

भावार्थ—स्फटिकमणि जैसा जिनविंब होय तैसा ध्यावना; वर्ण गंध रस स्पर्श रहित ऐसा अमूर्तीक अर सर्व कर्म रहित ऐसा जो सिद्धभगवानका स्वरूप ताकी प्राप्तिके अर्थि केवलज्ञान स्वरूप अरूप ध्यानकौं ध्यावै है ॥ ५५-५६ ॥

आगें परमात्माका ध्यान कैसें करना, सो कहैं हैं—

बहिरंतः परश्चेति, त्रेधात्मा परिकीर्तितः।
प्रथमं द्वितीयं हित्वा, परात्मानं विचिंतयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा ऐसे आत्मा तीन प्रकार कह्या है। तहां बहिरात्मा अर अन्तरात्माकौं छोड़कैं परमात्माका चितवन करै ॥ ५७ ॥

बहिरात्मात्मविभ्रांतिः, शरीरे, मुग्धचेतसः ।
या चेतस्यात्मविभ्रांतिः, सोऽन्तरात्मा विधीयते ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो मूढ़बुद्धिकै शरीर विषैं आत्माकी भ्रांति है शरीरमैं आपौ मानै है सो बहिरात्मा है। बहुरि चैतन्यके विकार जे रागादिक तिन विषैं आपौ मानै है सो अन्तरात्मा कहिए है ॥

इहां प्रश्न—जो और ग्रंथनिमैं तौ मिथ्यादृष्टिकौं बहिरात्मा कह्या है अर सम्यग्दृष्टिकौं अन्तरात्मा कह्या है इहां ऐसा कैसें कह्या।

ताका उत्तर—देहमैं आपा मानना सो बहिरात्मा अर रागादिकमैं आपा मानना सो अन्तरात्मा ऐसैं इहां तौ दोऊ त्यागने योग्य कहे। अर जहां अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टिकौं कह्या तहां उपादेय कह्या, किछू आशयमैं विरोध नाहीं वक्ताकी इच्छातैं अर्थभेद ही है, ऐसा जानना ॥

आगैं बहिरात्माका स्वरूप कहैं हैं:—

श्यामोगौरःकृशःस्थूलःकाणःकुंठोऽबलो कली ।
वनिता पुरुषः षंढा विरूपो रूपवानहम् ॥ ५९ ॥
जातदेहात्मविभ्रांतेरेषा भवति कल्पना ।
विवेकं पश्यतः पुंसो न पुर्नदेहदेहिनोः ॥ ६० ॥

अर्थ—मैं काला हूँ, गोरा हूँ, पतला हूँ, मोटा हूँ, काणा हूँ, हीन हूँ, बलवान हूँ, निर्बल हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, नपुंसक हूँ, विरूप हूँ, रूपवान हूँ, ऐसी यहु कल्पना है सो उपजा है शरीरमैं आत्माकी भ्रांति जाकै जो शरीर ही आत्मा है ऐसें मिथ्यादृष्टिकै होय है जातें

काला गोरा आदि देहके धर्म हैं आत्माके नाहीं, बहुरि जो पुरुष शरीरका अर आत्माका भेद देखै है श्रद्धा करै है ताकै यह कल्पना न होय है ॥ ५९-६० ॥

शत्रुमित्रपितृभ्रातृमातृकांतासुतादयः ।
देहसम्बन्धतः संति, न जीवस्य निसर्गजाः ॥ ६१ ॥

अर्थ—देहका अपकार करनेवाला सो शत्रु अर देहका उपकार करनेवाला सो मित्र अर देहका उपजावनेवाला सो पिता अर जहां देहकी उत्पत्ति तहां ही जाकी उत्पत्ति होय सो भाई अर देहकौं उपजावै सो माता अर देहकौं रमावै सो स्त्री, देहतैं उपज्या सो पुत्र इत्यादि सर्व जीवकै शत्रु आदिक देहके सम्बंधतें है, स्वभाव जनित नाहीं ॥ ६१ ॥

श्वाभ्रस्तिर्यङ्नरो देवो, भवामीति विकल्पना ।
श्वाभ्रातिर्यङ्नृदेवांगसंगतो न स्वभावतः ॥ ६२ ॥

अर्थ—मैं नारकी हूँ, तिर्यंच हूँ, मनुष्य हूँ, देव हूँ ऐसी यहु कल्पना है सो नारक तिर्यंच मनुष्य देवनिके शरीरके सगतैं हैं स्वभावतें नाहीं ॥ ६२ ॥

बालकोऽहं कुमारोऽहं, तरुणोऽहमहं जरी ।
एता देहपरिणामजनिताः, संति कल्पनाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—मैं बालक हूँ, मैं कुमार हूँ, मैं तरुण हूं, मैं वृद्ध हूँ ऐसी जे कल्पना हैं ते शरीरके परिणाम करि उपजी हैं ॥ ६३ ॥

विदग्धः पंडितो मूर्खो, दरिद्रः सधनोऽधनः ।
कोपनोऽसूयको मूढो, द्विष्टस्तुष्टा शठोऽशठः ॥ ६४ ॥
सज्जनो दुर्जनो दीनो, लुब्धो मत्तोऽपमानितः ।
जातचित्तात्मसंभ्रांतेरेषा भवति शेमुषी ॥ ६५ ॥

अर्थ—मैं चतुर हूँ, पंडित हूँ, मूर्ख हूँ, दरिद्री हूँ, धनवान हूँ, निर्धन हूँ, क्रोधी हूँ ईर्षायुक्त हूँ, मंही हूँ, द्वेषी हूँ, रागी हूँ, अज्ञानी हूँ, ज्ञानी हूँ, सज्जन हूँ, दुर्जन हूँ, दीन हूँ, लोभी हूँ, प्रमादी हूँ, अपमान सहित हूँ ऐसी यहु बुद्धि उपजै है रागादिक भावनिमें आपेकी भ्रांति जाके ऐसा जो पुरुष ताकै होय है ॥ ६४–६५ ॥

आगैं मिथ्याबुद्धि सम्यक् बुद्धिका फल कहैं हैं—

देहे यात्ममतिर्जंतोः सा, वर्द्धयति संस्थितिम् ।
आत्मन्यात्ममतिर्या सा, सद्यो नयति निर्वृतिम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो देह विषैं आपेकी बुद्धि है सो जीवकै संसार बढ़ावै। बहुरि जो आत्मा विषैं आत्म बुद्धि है सो शीघ्र मुक्तिकौं प्राप्त करै हैं ॥ ६६ ॥

यो जागर्त्यात्मिनः कार्ये, कायकार्यं स मुंचति ।
यः स्वपित्यात्मनः कार्ये, कायकार्यं करोति सः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जो पुरुष आत्माके कार्यमें जागै है अपने हितमैं सावधान है सो पुरुष शरीरके कार्यकौं त्यागै है, शरीर सम्बन्धी क्रियामैं उदासीन रहैं है। बहुरि जो आत्माके कार्य विषै सोवै है आत्माके हितमैं उद्यमी नाहीं सो शरीर सम्बन्धी क्रियाकौं करै है ॥ ६७ ॥

ममेदमहमस्यास्मि, स्वामी देहादिवस्तुनः ।
यावदेषा मतिर्बाह्ये, तावद्ध्यानं कुतस्तनम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—ये शरीरादि परद्रव्य मेरा है अर मैं शरीरादि परवस्तुका स्वामी हूँ ऐसी बुद्धि जहां ताईं बाह्य परद्रव्य विषैं है तहां ताईं ध्यान कहांतें होय ॥ ६८ ॥

नाहं कस्यापि मेकश्चिन्न, भावोऽस्ति बहिस्तनः ।
यदैषा शेमुषी साधोः, शुद्धध्यानं तदा मतम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—मैं कोई बाह्य पदार्थका नाहीं अर बाह्य पदार्थ मेरा कोई नाहीं ऐसी यहु बुद्धि जब साधुकै होय तब शुद्ध ध्यान कहा है ॥ ६९ ॥

रागद्वेषमदक्रोधलोभमन्मथमत्सराः ।
न यस्य मानसे संति, तस्य ध्यानेऽस्ति योग्यता ॥ ७० ॥

अर्थ—जाके मन विषैं राग अर द्वेष अर मान अर क्रोध अर लोभ अर मत्सर अर काम अर ईर्षाभाव ये नाहीं ता पुरुषकै ध्यान विषैं योग्यता है ॥ ७० ॥

*रागद्वेषादिभिः क्षिप्तं, मनः स्थैर्यं प्रचाल्यते ।
कांचनस्येव काठिन्यं, दीप्यमानैर्हुताशनैः ॥ ७१ ॥

अर्थ—रागद्वेषादि करि आक्षिप्त ऐसी मनकी स्थिरता चलायमान हो जाय है। जैसें देदीप्यमान अग्निकरि सुवर्णका कठिनपना चलायमान हो जाय तैसें ।

भावार्थ—मन चाहे जेता स्थिर होय परन्तु रागद्वेषादि करि चलायमान हो हो जाय है ॥ ७१ ॥

विद्यमाने कषायेऽस्ति, मनसि स्थिरता कथम् ।
कल्पांतपवनैः स्थैर्यं, तृणं कुत्र प्रपद्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसें प्रलयकालकी पवन विषैं तृण है सो थिरताकौं कैसैं प्राप्त होय तैसें कषाय भाव विद्यमान होत सन्तैं मनकी थिरता कैसैं होय ॥ ७२ ॥

अक्षय्यकेवलालोकविलोकितचराचरम् ।
अनन्तवीर्यशर्माणममूर्तमनुपद्रवम् ॥ ७३ ॥

---

* यह श्लोक वचनिकाकी प्रतिमें नहीं है, संस्कृत प्रतिसे लिख कर वचनिका कर दी है ।

निरस्तकर्मसम्बन्धं, सूक्ष्मं नित्यं निरास्रवम् ।
ध्यायतः परमात्मानमात्मनः कर्मनिर्जरा ॥ ७४ ॥

अर्थ—अविनाशी जो केवल दर्शन केवल ज्ञान तिनकरि देखे वा जाने हैं चराचर समस्त वस्तु जानें । बहुरि अनंत है स्वरूपतैं न चलने रूप वीर्य अर निराकुलतारूप आनंद जाकैं, अर वर्णादि रहित अमूर्तिक है, अर रोगादि उपद्रव रहित है, अर दूर किया है समस्त कर्मका सम्बन्ध जानैं, बहुरि जाकों मनः पर्ययज्ञानी भी देख सकै नाहीं ऐसा सूक्ष्म है, नित्य है, अर रागादिकके अभावतैं निराश्रव है ऐसा जो परमात्मा सिद्ध भगवान ताहि ध्यावता जो पुरुष ताकैं आपके कर्मनिकी निर्जरा होय है ॥ ७३-७४ ॥

आत्मानमात्मना ध्यायन्नात्मा भवति निर्वृतः ।
घर्षयन्नात्मनाऽऽत्मानं, पावको भवति द्रुमः ॥ ७५ ॥

अर्थ—जैसैं वृक्ष है सो वृक्षकरि घिस्या संता अग्निके भावकौं प्राप्त होय है तैसैं आत्मा है सो आपकरि आपकौं ध्यावता संता सुखी होय है, सिद्ध स्वरूप होय है ॥ ७५ ॥

न यो विविक्तमात्मानं, देहादिभ्यो विलोकते ।
स मज्जति भवांभोधौ, लिंगस्थोऽपि दुरुत्तरे ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो पुरुष देहादि परद्रव्यनितैं आपकौं न्यारा नाहीं देखै है नाहीं श्रद्धान करै है सो पुरुष मुनि श्रावकके बाह्य लिंगमैं तिष्ट्या भी दुस्तर संसार-समुद्र विषैं डूबै है, द्रव्यलिंगी मुनि श्रावक भी संसारी ही रहै है तब और जीवनिकी कहा कथा है ॥ ७६ ॥

सविज्ञानमविज्ञानं, विनश्वरमनश्वरम् ।
सदानात्मीयमात्मीयं, सुखदं दुःखकारणम् ॥ ७७ ॥
अनेकमेकमंगादि, मन्यमानो निरस्तधीः ।
जन्ममृत्युजरावर्त्ते, बंभ्रमीति भवोदधौ ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी पुरुष शरीरादि जे अचेतन पदार्थ तिनकौं चेतन मानता अर विनाशीककौं अविनाशी मानता अर सदा आपका नाहीं ताकौं आपका मानता अर दुःखका कारण ताकौं सुखदायी मानता अर एक नाहीं ताकौं एक मानता सो जीव संसार-समुद्र विषैं अतिशयकरि भ्रमै है। कैसा है संसार-समुद्र जन्म मरण जरारूप हैं मोरे जा विषैं ॥ ७७-७८ ॥

आत्मनो देहतोऽन्यत्वं, चिंतनीयं मनीषिणा।
शरीरभारमोक्षाय, सायकस्येव कोशतः ॥ ७९ ॥

अर्थ—जैसैं तरकशतैं तीरकौं न्यारा देखिए तैसें बुद्धिवान पुरुष करि शरीरका भार त्यागनेके अर्थि मोक्ष होनेके अर्थि शरीरतें आत्माका भिन्नपना चितवना योग्य है। ७९ ॥

या देहात्मैकताबुद्धिः, सा मज्जयति संसृतौ।
सा प्रापयति निर्वाणं, या देहात्मविभेदधीः ॥ ८० ॥

अर्थ—जो देहमैं अर आत्मामें एकताकी बुद्धि है सो संसारमैं डुबावै है अर जो शरीरकी अर आत्माकी भिन्न बुद्धि है सो मोक्षकौं प्राप्त करै है ॥ ८० ॥

यः शरीरात्मनोरैक्यं, सर्वथा प्रतिपद्यते।
पृथक्त्व शेमुषी तस्य, गूथमाणिक्ययोः कथम् ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो देह अर आत्मा विषैं सर्वथा एकपना मानै है ताकै विष्टा अर माणिक्यरत्न विषै भिन्नपनेकी बुद्धि कैसें होय।

भावार्थ—आत्मा तौ रत्न समान पवित्र है अर देह विष्टा समान अपवित्र है सो कारणवश विष्टामैं तिष्ठता जो रत्न ताहि जैसें मूर्ख एक मानै तैसें कर्मोदयके वश शरीरमैं तिष्ठता जो आत्मा ताहि मिथ्यादृष्टि एक मानै है ऐसा जानना ॥ ८१ ॥

देहचेतनयोर्भेदो, भिन्नज्ञानोपलम्भतः।
सर्वदा विदुषा ज्ञेयश्चक्षुः घ्राणार्थयोरिव ॥ ८२ ॥

अर्थ—ज्ञानवान करि देहका अर चेतनका भेद जानना योग्य है जातैं भिन्न ज्ञान करि जाननेमैं आवै है। जैसैं नेत्र इंद्रिय अर नासिका इंद्रियके विषय जे रूप गंध ते भिन्न ज्ञान करि जाननेमैं आवैं हैं तातैं भिन्न ही हैं।

भावार्थ—देहतौ इंद्रिय ज्ञानकरि दीसै है अर आत्मा स्वसंवेदन करि दीसै है, इन्द्रिय ज्ञानकरि आत्मा न दीसै है अर स्वसंवेदन करि शरीर न आवै है, ऐसैं न्यारे ज्ञानकरि जाने जाय हैं तातैं शरीर अर आत्मा भिन्न है; जैसैं रूप नेत्र करि जान्या जाय है, गंध नासिका करि जानिए है, रूप नासिका करि न जानिए है अर गंध नेत्रकरि न जानिए है; तातैं गंध रूप भिन्न भिन्न है ऐसा अनुमान दिखाया है ॥ ८२ ॥

न यस्य हानितो हानिर्न वृद्धिर्वृद्धितो भवेत्।
जीवस्य सह देहेन, तेनैकत्वं कुतस्तनम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—जा शरीरकी हानितैं जीवकै हानि नाहीं अर जा शरीरकी वृद्धितैं जीवकी वृद्धि नाहीं होय है, तातैं जीवकै देहके साथ एकपना काहेका? ॥ ८३ ॥

तत्वतः सह देहेन, यस्य नानात्वमात्मनः।
किं देहयोगजैस्तस्य, सहैकत्वं सुतादिभिः ॥ ८४ ॥

अर्थ—परमार्थतैं जिस आत्माकै देहके साथ भिन्नपना है ताकै देहके संयोगतैं उपजे जे पुत्रादिक तिनकरि एकपना कैसैं होय ॥ ८४ ॥

ममत्वधिषणा येषां, पुत्रमित्रादिगोचरा।
साऽऽत्मस्वरूपपरिच्छेदच्छेदिनी मोहकल्पिता ॥ ८५ ॥

अर्थ—जिनक पुत्र मित्रादि विषें जो ये मेरे हैं ऐसी ममत्व बुद्धि है तिनके ऐसी बुद्धि आत्म ज्ञानकी नाश करनेवाली मोह-करि भई ।

भावार्थ—मिथ्यात्वके उदयकरि कल्पना मात्र है सत्यार्थ नाहीं ॥

पत्तनं काननं सौधमेषा नात्मधियांमतिः ।
निवासो दृष्टतत्वानामात्मै वास्त्यक्षयोऽमलः ॥ ८६ ॥

अर्थ—मैं नगरमैं बसूं हूँ बनमैं बसूं हूँ ऐसी यह बुद्धि आत्म-ज्ञान रहित मिथ्यादृष्टीनिकै होय है । बहुरि देख्या है तत्व जिननें ऐसे सम्यग्दृष्टीनिके अविनाशी, नित्य, निर्मल ऐसा जो आत्मा सो ही निवास है ॥ ८६ ॥

शुद्धस्य जीवस्य निरस्तमूर्तेः सर्वे विकाराः परकर्मजन्याः ।
मेघादिजन्या इव तिग्मरश्मेर्विनश्वराः संति विभास्वरस्य ॥ ८७ ॥

अर्थ—अमूर्तीक जो शुद्ध आत्मा ताकै समस्त विकार हैं ते कर्मोदयतें उपजे हैं ।

भावार्थ—द्रव्यदृष्टि करि देखिए तौ विकार कर्मजनित है किछू आत्माके स्वभाव नाहीं; जैसें देदीप्यमान जो सूर्य ताके विनाशीक जे विकार (कहूँ थोड़ा प्रकाश होना कहूँ बहुत प्रकाश होना इत्यादिक) बादला आदिके निमित्तसें होय है, स्वभावजनित नाहीं ॥ ८७ ॥

दृष्टात्मतत्वो द्रविणादिलक्ष्मीं, न मन्यते कर्मभवां स्वकीयाम् ।
विपक्षलक्ष्मीं भुवने विवेकी, प्रपद्यते चेतसि कः स्वकीयाम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—देख्या है आत्माका स्वरूप जानैं ऐसा पुरुष है सो कर्मोदय करि उपजी जे धनधान्यादिकी लक्ष्मी ताहि आपकी न मानै है । लोक विषैं ऐसा कौन विवेकी है जो शत्रुकी लक्ष्मीकौं चित्त विषें आपकी मानै ॥ ८८ ॥

ज्ञानदर्शनमयं निरामयं, मृत्युसंभवविकारवर्जितम् ।

आमनंति सुधियोऽत्र चेतनं, सूक्ष्ममव्ययमपास्तकल्मषम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—लोक विषें पंडित हैं ते आत्माकौं ऐसा मानें हैं:—आत्मज्ञानदर्शनमयी है अर रोग रहित है अर मरण उपजने आदि विकार रहित है अर नष्ट भया है पाप जाका ऐसा निर्मल है अविनाशी है सूक्ष्म है ॥ ८९ ॥

विग्रहं कृमिनिकायसंकुलं, दुःखदं हृदि विचिंतयंति ये ।

गुप्तिवद्धमिव ते सचेतनं, मोचयंति तनुयंत्रमंत्रितम् ॥ ९० ॥

अर्थ—कीड़ानिके समूह करि भरया दुःखदायी ऐसा जो शरीर ताहि हृदय विषें जे पुरुष भिन्न विचारें हैं ते पुरुष शरीर रूप यंत्र करि बंध्या ऐसा जो आत्मा ताका मानौं गुप्ति बन्धन खोलैं हैं ।

भावार्थ—जे शरीर अर आत्माकौं भिन्न भावें हैं तिनकै कर्म-बन्धकी निर्जरा होय है ॥ ९० ॥

स्थित्वा प्रदेशे विगतोपसर्गे, पर्यंकबंधस्थितपाणिपद्मः ।

नासाग्र संस्थापित दृष्टिपातो, मन्दीकृतोच्छ्वासविवृद्धवेगः ॥ ९१ ॥

विधाय वश्यं चपल स्वभावं, मनोमनीषी विजिताक्षवृत्तिः ।

विमुक्तये ध्यायति ध्वस्तदोषं, विविक्तमात्मानमनन्यचित्तः ॥ ९२ ॥

अर्थ—नाहीं अन्य वस्तु विषें चित्त जाका ऐसा ज्ञानी पुरुष मुक्तिके अर्थि रागादि दोष रहित समस्त परद्रव्यनितें भिन्न जो आत्मा ताहि ध्यावै है। कैसा है सो पुरुष दंशमशकादिकी बाधा रहित क्षेत्र विषें तिष्ठ करि पर्यंकासन विषें धरे हैं हस्तकमल जानें। बहुरि नासिकाके अग्र विषें थाप्या है दृष्टिका पड़ना जानें बहुरि वृद्धिकौं प्राप्त भया ऐसा श्वासोच्छ्वासका वेग सो मन्द किया है। बहुरि चञ्चल है स्वभाव जाका ऐसा जो मन ताहि वश करिक जीती है इन्द्रियनिकी परणति जानें ऐसा पुरुष आत्माकौं ध्यावै है ॥ ९१-९२ ॥

अभ्यस्यतो ध्यानमनन्यवृत्तेरित्थं विधानेन निरन्तरायम् ।
व्यपैति पापं भवकोटिबद्धं, महाशमस्येव कषायजालम् ॥ ९३ ॥

अर्थ—या प्रकार पूर्वोक्त विधान करि अन्तराय रहित निरन्तर ध्यानकौं अभ्यास करता अर नाहीं है पर परणति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै कोटि भवकरि बांध्या जो पाप सो नाशकौं प्राप्त होय है, जैसें उपशम भाव सहित पुरुषकै कषायनिका समूह नाश होय तैसें ॥९३॥

ध्यानं पटिष्ठेन विधीयमानं, कर्माणि भस्मीकुरुते विशुद्धम् ।
किं प्रेर्यमाणाः पवनेन नाग्निश्चितानि सद्योदहतींधनानि ॥ ९४ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषकरि करया भया निर्मल ध्यान है सो कर्मनिकौं भस्म करै है । जैसें पवनकरि प्रेर्या भया अग्नि है सो संचयरूप जे ईंधन तिनहि शीघ्र कहा नाहीं दग्ध करै है ? करै ही है ॥ ९४ ॥

त्यागेन हीनस्य कुतोऽस्ति कीर्तिः, सत्येन हीनस्य कुतोऽस्ति पूजा ।
न्यायेन हीनस्य कुतोऽस्ति लक्ष्मी, ध्यानेन हीनस्य कुतोऽस्ति सिद्धिः ॥९५॥

अर्थ—दानकरि हीन जो पुरुष ताकी कीर्ति कैसें होय, अर सत्य करि हीन पुरुषकी पूजा कैसें होय, अर न्यायकरि हीन पुरुषकै लक्ष्मी कैसें होय, अर ध्यान करि हीन जो पुरुष ताकै सिद्धि जो मोक्ष सो कैसें होय ॥ ९५ ॥

तपांसि रौद्राण्यनिशं विधत्तां, शास्त्राण्यधीतामखिलानि नित्यम् ।
धत्तां चरित्राणि निरस्ततन्द्रो, न सिध्यति ध्यानमृते तथाऽपि ॥९६॥

अर्थ—घोर तपनिकौं निरन्तर धारै है तो धारो । बहुरि समस्त शास्त्रनिकौं पढ़ै है तो पढ़ो, आलस्य रहित चारित्रनिकौं आचरै है तो आचरो, तौ भी ध्यान बिना सिद्धि न पावै है । सर्व धर्मके अंगनिमैं ध्यान मुख्य है ॥ ९६ ॥

ध्यानं यदह्नाय ददाति सिद्धिं, न तस्य खेदः परमर्द्धिदाने ।
क्षयानलं हंति यदभ्रवृंदं, न तस्य खेदः परवह्निघाते ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो ध्यान शीघ्र ही सिद्धपदकौं देय है ता ध्यानकै और अहमिंद्रादि पदके देनेमैं खेद नाहीं, जैसे जो मेघका समूह प्रलय-कालकी अग्निका नाश करै ताकै और अग्नि बुझायवे विषै खेद नाहीं ॥ ९७ ॥

तपोऽन्तरानन्तरभेदभिन्ने, तपोविधाने द्विविधे कदाचित् ।
समस्तकर्मक्षपणे समर्थ, ध्यानेन शुद्धेन समं न दृष्टम् ॥ ९८ ॥

अर्थ—अन्तरंग बहिरंग भेद करि भिन्न जो दोय प्रकार तपका विधान ता विषैं निर्मल ध्यान समान सकल कर्मनिके नाश करनेमैं समर्थ और तप न देख्या ।

भावार्थ—और तप तो ध्यानके साधन हैं अर ध्यान मोक्षका साधन है, तातैं ध्यान सबनिमैं मुख्य है ॥ ९८ ॥

ध्यानस्य दृष्टेति फलं विशालं, मुमुक्षुणाऽऽलस्यमपास्य कार्यम् ।
कार्ये प्रमाद्यंति न शक्तिमन्तो, विलोकमानाः फलभूरिलाभम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—या प्रकार ध्यानका बड़ा फल देखिकै मुक्तिका वांछक जो पुरुष ता करि आलस्यकौं छोड़िकै ध्यान करना योग्य है, जातैं अधिक फलरूप लाभकौं देखते जे सामर्थ्यवान पुरुष हैं ते कार्य विषैं आलस्य नाहीं करैं हैं ॥ ९९ ॥

तपोविधानैर्बहुजन्मलक्षैर्यो दह्यते संचितकर्मराशिः ।
क्षणेन स ध्यानहुताशनेन, प्रवर्त्तमानेन विनिर्मलेन ॥ १०० ॥

अर्थ—अनेक लाख जन्मनिमैं उपवासादि तपनि करि जो संचयरूप कर्मनिका समूह नाश कीजिए सो कर्मनिका समूह वर्त्या जो निर्मल ध्यानरूप अग्नि ता करि क्षण मात्रमैं दग्ध कीजिए है ॥ १०० ॥

निर्वाणहेतोर्भवपातभीतैर्ध्याने प्रयत्नः परमो विधेयः।
थियासुभिर्मुक्तिपुरीमबाधामुपायहीना न हि साध्यसिद्धिः॥ १०१॥

अर्थ—संसारमैं पडनेतैं भयभीत अर बाधा रहित अर मुक्ति-पुरीके जानेके इच्छुक ऐसे जे पुरुष तिनकरि मोक्षके अर्थि ध्यान विर्षे उद्यम करना योग्य है, जातैं उपाय विना कार्यकी सिद्धि नाहीं। मोक्षका उपाय ध्यान ही है॥ १०१॥

देहात्मनोरात्मवता वियोगो, मनः स्थिरीकृत्य तथा विचिंत्यः।
हेतुर्भवानर्थ परंपरायाः, स्वप्नेऽपि योगो न यथाऽस्ति भूयः॥ १०२॥

अर्थ—आत्मज्ञानी पुरुषकरि चित्तकौं थिर करकै देहका अर आत्माका वियोग कहिये भिन्नपना तैसैं चितवना योग्य है जैसैं संसार दुःखकी परंपराका कारण जो देहका संयोग सो स्वप्न विषै भी फेर न होय॥ १०२॥

निरस्तसर्वेन्द्रियकार्यजातो, यो देहकार्यं न करोति किंचित्।
स्वात्मीय कार्योद्यतचित्तवृत्तिः, स ध्यानकार्यं विदधाति धन्यः॥१०३॥

अर्थ—नाश किया है स्पर्शनादि सर्व इंद्रियनिके कार्यनिका समूह जानें।

भावार्थ—जानें स्पर्शादि विषयनिमैं इंद्रियनिका राग सहित परिणमन रोक्या है। बहुरि अपने आत्माके कार्य विषै उद्यम सहित है चित्तकी परणति जाकी ऐसा जो धन्य पुरुष है सो ध्यानरूप कार्यकौं करै है॥ १०३॥

यद्धिक्रमातं जगदंतराले, धर्तुं न शक्यं मनुजामरेंद्रैः।
सम्मानसं यो विदधाति वश्यं, ध्यानं स धीरो विदधात्यवश्यम्॥१०४॥

अर्थ—जो जगत विषै हीडता डोलता नरेन्द्र देवेंद्रनिकरि न

रोकने योग्य ऐसा जो मन ताहि वश करै है सो धीर पुरुष निश्चयसेती ध्यानकों करै है।

भावार्थ—जाके वशीभूत मन है सो ही ध्यान करनेकों समर्थ है ॥ १०४ ॥

बाणैः समं पंचभिरुग्रवेगैर्विद्धत्रिलोकस्थितजीववर्गः।
न मन्मथस्तिष्ठति यस्य चित्ते, विनिश्चलस्तिष्ठति तस्य योगः ॥१०५॥

अर्थ—तीन लोकमैं तिष्ठया जो जीवनिका समूह सो जानैं उग्र है वेग जिनका ऐसे जे पंच बाण तिन करि एकैं काल वेध्या ऐसा जो काम सो जाके चित्त विषें न तिष्ठै है ताके ध्यान निश्चल तिष्ठै है ॥ १०५ ॥

न रोषो न तोषो न मोषो न दोषो,
न कामो न कम्पो न दम्भो न लोभः।
न मानो न माया न खेदो न मोहः,
यदीयेऽस्ति चित्ते तदीयेस्ति योगः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जा पुरुषके चित्तमें क्रोध नाहीं, राग नाहीं, चोरी नाहीं अन्यायादि दोष नाहीं, काम नाहीं, भय नाहीं, दम्भ नाहीं, लोभ नाहीं, मान नाहीं, माया नाहीं, खेद नाहीं, मोह नाहीं ता पुरुषकै ध्यान होय है। जाके रागादि विकार हैं ताकै ध्यान न होय है ॥ १०६ ॥

प्रवर्द्धमानोद्धतसेवनायां, जीवस्य गुप्ताविव मन्यते यः।
शरीरकुट्यां वसति महात्मा, हानाय तस्या यतते स शीघ्रम् ॥१०७॥

अर्थ—वर्द्धमान है तीव्र दुःखरूप परणति जा विषैं ऐसा जो शरीररूप कुटी ताविषैं बन्दीखानेकी वसती समान वसतीकों जो मानै है सो महात्मा तिस शरीरकुटीके नाशकैं अर्थि शीघ्र ही यत्न करै है, मोक्ष होनेका उपाय करै है ऐसा जानना ॥ १०७ ॥

समाधिविध्वंसविधौ पटिष्ठं, न जातु लोकव्यवहारपाशम्।
करोति यो निस्पृहचित्तवृत्तिः, प्रवर्तते ध्यानममुष्य शुद्धम् ॥१०८॥

अर्थ—जो पुरुष एकाग्रचित्तके नाश करनेमें प्रवीण जो निंद्य लोकव्यवहार ताहि कदाचित् नाहीं करै है अर वांछारहित है चित्तकी परणति जाकी ऐसे पुरुषके निर्मल ध्यान प्रवर्तै है ॥ १०८ ॥

विधीयते ध्यानमवेक्षमाणैर्यद्भूतबोधैरिह लोककार्यम्।
रौद्रं तदार्त्तं च वदन्ति सन्तः, कर्मद्रुमच्छेदनबद्धकक्षाः ॥ १०९ ॥

अर्थ—जो इस लोकसम्बन्धी कार्यकौं वांछते जे अज्ञानी पुरुष तिनकरि ध्यान करिए है तौ ध्यानकौं सन्तपुरुष रौद्र या आर्त्त कहै है। कैसे है संत पुरुष कर्मवृक्षके छेदनेकौं बांधी है कमर जिननें ॥१०९

सांसारिकं सौख्यमवाप्तुकामैर्ध्यानं विधेयं न विमोक्षकारि।
न कर्षणं सस्यविधायि लोके, पलाललाभाय करोति कोऽपि ॥११०॥

अर्थ—मोक्षका कर्ता जो ध्यान सो संसारके सुखकी वांछा करि करना योग्य नाहीं, जातें लोकमैं धान्यकी उपजावनेवाली जो खेती सा पलालके लाभके अर्थि कोई भी करै नाहीं। धान्यके अर्थि जो खेती करेगा ताकै पलाल तौ स्वयमेव ही होयगा। तैसें मोक्षके अर्थि जो ध्यान करै है ताकै संसारसुख तौ यावत् शुभ राग है तावत् स्वयमेव होय है। बहुरि विषयसुखकी वांछा करै तौ उलटा रौद्रध्यान होय तातें संसारसुखकी वांछा सहित ध्यान करना युक्त नाहीं ॥ ११० ॥

अभ्यस्यमानं बहुधा स्थिरत्वं, यथैति दुर्बोधमपीह शास्त्रम्।
नूनं तथा ध्यानमपीति मत्वा, ध्यानं सदाऽभ्यस्यतु मोक्तुकामः ॥१११

अर्थ—जैसे दुःखतें है जानना जाका ऐसा कठिन शास्त्र भी बहुत अभ्यास किया भया स्थिरताकौं प्राप्त होय है। तैसे ध्यानाभ्यास